पं० सोहनलाल द्विवेदी के काव्य का सांस्कृतिक मूल्यांकन

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी

की

पी-एच० डी० उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध

शोधकर्ता
अम्बिका प्रसाद शुक्ल
एम० ए० हिन्दी

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय
हिन्दी विभाग
झांसी

निदेशक
डा० चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित'
प्रवक्ता
पं० जवाहरलाल नेहरू महा विद्यालय, बांदा (उ०प्र०)
एवं
निदेशक
चन्ददास साहित्य शोध संस्थान
सिविल लाइन, बांदा

निर्देशक - दि० ६-२-१९८८ ।

डा० चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित'
स्नातकोत्तर, हिन्दी विभाग,
पं० जवाहर लाल नेहरू महाविद्यालय,
बांदा.

प्रमाण-पत्र

मैं प्रमाणित करता हूं कि श्री अम्बिका प्रसाद शुक्ल ने मेरे निर्देशन में 'पं० सोहन लाल द्विवेदी के काव्य का सांस्कृतिक मूल्यांकन' विषय पर मौलिक शोध-प्रबन्ध विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित अवधि में रहकर पूरा किया है ।

६.२.८८

डा० चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित'

प्राक्कथन

आधुनिक राष्ट्रीय काव्य धारा का ऐतिहासिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक महत्व हिन्दी कविता के विकास में मील के पत्थर की भांति ही नहीं, राष्ट्रीयता एवं वीर पूजा की प्रेरक शक्ति के रूप में अत्यन्त विशिष्ट है। राष्ट्रीय काव्य धारा के कवियों में सर्व श्री मैथिलीशरण गुप्त, बालकृष्ण शर्मा ''नवीन'' रामधारी सिंह ''दिनकर'' माखन लाल चतुर्वेदी, सोहन लाल द्विवेदी आदि प्रमुख कवि रहे हैं। राष्ट्रीय काव्य धारा का सर्वाधिक ओजस्वी एवं तेजस्वी स्वर ''भैरवी'' के गायक पं० सोहन लाल द्विवेदी का रहा है। उनकी कविताओं ने जहां एक ओर गांधी संस्कृति को आत्मसात करके युग को प्रेरित किया है, वहीं उनकी ''भैरवी'' राष्ट्रप्रेम का राग जागृत करती रही है। द्विवेदी जी का काव्य परिमाण एवं गुणात्मकता, दोनों दृष्टियों से अत्यन्त मूल्यवान एवं अनुसंधान के लिये स्थाई मूल्यों वाला रहा है। खेद है कि राष्ट्रीय धारा के इतने जीवन्त कवि के काव्य के सांस्कृतिक मूल्यांकन पर शोधकार्य की दिशा में वैसा कार्य नहीं हुआ जैसा अपेक्षित था।

हिन्दी के इतिहास ग्रन्थों एवं विविध सन्दर्भ ग्रन्थों में द्विवेदी जी का उल्लेख होता चला आया है किन्तु उनके सार्वभौम महत्व वाले साहित्य को अनुसंधान के क्षेत्र में उतनी गहरी अन्तर्दृष्टि से नहीं देखा गया। कवि का इस प्रकार का अनुशीलन न केवल कवि के काव्य का सांस्कृतिक मूल्यांकन का न केवल आधार बनेगा बल्कि सम्पूर्ण राष्ट्रीय काव्यधारा के विकास को समझने में सहायक सिद्ध होगा। इसी दृष्टिकोण से मैंने ''सोहनलाल द्विवेदी, के काव्य का सांस्कृतिक मूल्यांकन'' सन्दर्भ में शोध के लिये चुनना उचित समझा।

वस्तुत: देश प्रेम की भावना जागृत करने वाले कवियों में पं० सोहन लाल द्विवेदी प्रथम पंक्ति के कवि हैं। राष्ट्रीय प्रेम की गांधी वादी धारा के सर्वाधिक महत्वपूर्ण कवि के रूप में द्विवेदी जी का स्थान निर्विवाद है। उन्होंने समसामयिक परिस्थितियों के सन्दर्भ में राष्ट्र की विविध समस्याओं को अपने काव्य का विषय

बनाया है। फलतः उनके काव्य में राष्ट्र की विविधमुखी समस्याओं के साथ-२ उनके निदान तथा स्वाधीन राष्ट्र-दर्शन का अन्तर्भाव होता रहा है। जब मैंने अपने शोध-कार्य के लिये प्रस्तुतविषय का चयन किया तब तक द्विवेदी जी का सम्पूर्ण साहित्य तो विपुल परिमाण में प्रकाशित हो चुका था किन्तु उनके काव्य में प्रतिपादित सांस्कृतिक चेतना के सन्दर्भ में कोई उल्लेखनीय काम नहीं हुआ था। इस विषय में अनुसंधान की पर्याप्त दिशाएँ एवं सम्भावनाएँ उपादेयता एवं आवश्यकता प्रतीत हुई।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध आठ अध्यायों में विभक्त है। इनका विवेचन किसी न किसी रुप में कवि की राष्ट्रीय भावना से सम्बद्ध है। प्रथम अध्याय सांस्कृतिक अवधारणा से सम्बन्धित है। संस्कृति का स्वरुप, संस्कृति के तत्व संस्कृति और देशकाल तथा संस्कृति और राष्ट्रीय एकता चार उपअध्यायों में विभक्त है।

द्वितीय अध्याय में सोहन लाल द्विवेदी की कृतियों में सांस्कृतिक चेतना का स्वरुप है। ये चार उप अध्यायों में विभक्त है। कि
कवि एवं कृतित्व, कृतित्व में सांस्कृतिक चेतना के तत्व, संस्कृति के तत्वों का प्रयोजन एवं दिशा, तथा प्रयोजन की सफलता एवं असफलता।

यद्यपि द्विवेदी जी का जीवन वृत्त प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का विषय नहीं है, तथापि उनके जीवन वृत्त और व्यक्तित्व का निरुपण गवेषणात्मक रुप से किया गया है। उनके जीवन और व्यक्तित्व काविस्तृत एवं प्रामाणिक वृत्त प्रस्तुत करने के लिये उनके यात्रा साहित्य संस्मरण साहित्य उनकी डायरी, विभिन्न पत्र - पत्रिकाओं में प्रकाशित द्विवेदी विषयक लेखों एवं विशेषांकों तथा उनके परिवार जनों द्वारा प्रदत्त विवरणों को आधार बनाया गया है। कृतित्व के अन्तर्गत उनकी रचनाओं का संक्षिप्त परिचय देने का प्रयास किया गया है।

तृतीय अध्याय द्विवेदी जी के काव्य में सांस्कृतिक तत्वों से उभरता हुआ उनके राष्ट्रीय दर्शन के विविध रुपों में नियोजित है। इसके अन्तर्गत द्विवेदी युगीन संकट ,राजनैतिक सांस्कृतिक संकट , आर्थिक संकट तथा तत्कालीन राजनैतिक एकता के किये गये प्रयासों को प्रदर्शित किया गया है।

चतुर्थ अध्याय की योजना - कवि की रचना यात्रा में सांस्कृतिक चेतना का क्रमबद्ध विकास को चित्रित किया गया है।

पंचम अध्याय में द्विवेदी जी के काव्य के सांस्कृतिक काव्य की सम्भावित कसौटी और मूल्यांकन चित्रित किया गया है।

षष्टम्, अध्याय - सांस्कृतिक अनुशीलन में भाव एवं शिल्प की भूमि की मीमांसा की गई है।

सप्तम अध्याय - राष्ट्रीय काव्य धारा के अन्य कवियों से द्विवेदी जी की तुलना की गई है।

अष्टम् अध्याय - द्विवेदी जी का हिन्दी साहित्य में स्थान निश्चित किया गया है। परिशिष्ट के अन्तर्गत द्विवेदी जी से सम्बन्धित पत्रों को रखा गया है। तत्पश्चात सहायक एवं संदर्भ ग्रन्थ सूची दी गई है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध शोध निर्देशक परम श्रद्धेय डा० चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित ललित ' (प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, पं० जवाहर लाल नेहरु महाविद्यालय, बांदा) के विद्वतापूर्ण एवं स्नेहित निर्देशन में लिखा गया है। प्रवक्ता-जीवन के अत्यन्त व्यस्त क्षणों में भी उन्होंने जो अमूल्य योग प्रदान किया वही मेरे शोध जीवन का संबल बना। उनके सहयोग के बिना तो आलोच्य विषय की शोध प्रबन्ध के रुप में परिणति असम्भव

प्राय थी । उनके प्रति शब्दों में कृतज्ञता ज्ञापित करना औपचारिकता मात्र होगी ।

श्रद्धेय श्री सोहन लाल द्विवेदी, डा० विद्या निवास मिश्र, डा० मोहन अवस्थी, डा० रणजीत, डा० भागीरथ मिश्र डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित, डा० सरयू प्रसाद अग्रवाल डा० विश्वम्भर दयाल अवस्थी आदि विद्वानों का विशेष आभारी हूं। जिन्होंने समय -२ पर परामर्श लाभान्वित किया है । नागरी प्रचारिणी पुस्तकालय, हिन्दी साहित्य सम्मेलन , चन्ददास साहित्य शोध संस्थान, राजकीय पुस्तकालय, बांदा आदि संस्थाओं के प्रति आभारी हूँ जहां से विभिन्न प्रकार के ग्रन्थों की सहायता मुझे प्राप्त हुई । माननीय कुलपति महोदय का भी बहुत आभारी हूं जिन्होंने समय की अवधि एक वर्ष बढ़ाकर उसे पूरा करने में योगदान दिया ।

मुझ में न तो आत्मीय जनों के अपरिमित सहयोग को विस्मृत कर देने की सामर्थ्य ही है और न ही उसे व्यक्त करने में सक्षम शब्दशक्ति ही मेरे पास है । विशेष रूप से श्रद्धेय पं० रामचन्द्र शुक्ल (दादाजी) पं० बद्री प्रसाद शुक्ल शास्त्री (दादाजी) एवं पिता जी (पं० चन्द्रिका प्रसाद शुक्ल) अपने बहन-भाइयों से जो निरन्तर प्रेरणा और प्रोत्साहन मिला उसी का सुफल है प्रस्तुत शोध -प्रबन्ध । ऐसे में प्रिय विष्णु नारायण की जो सहज ही कुछ उपेक्षा हुई उसका भी स्मरण आता है ।

अन्त में मैं श्री हरी शंकर श्रीवास्तव, स्टेनो-टाइपिस्ट, पं० जवाहर लाल नेहरू महाविद्यालय, बांदा का भी आभार व्यक्त करता हूं जिन्होंने अल्प समय में इस शोध को टंकित कर अन्तिम रूप प्रदान किया है । साथ ही साथ उन सभी महानुभावों का जिन्होंने इस शोध प्रबन्ध को पूरा करने में प्रत्यक्ष एवं अप्र परोक्ष रूप से सहयोग प्रदान किया है , हार्दिक अभिनन्दन करता हूं ।

अन्त में इस कथन के साथ इस भूमिका को समाप्त करता हूं कि प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध की शक्ति मेरे गुरुजनों की है और सीमाएं मेरी ।

--- अम्बिका प्रसाद शुक्ल ।

अ नु क्र म णि का

अध्याय - प्रथम

सांस्कृतिक - अवधारणा

संस्कृति का स्वरूप

संस्कृति शब्द सम उप सर्गपूर्वक 'डुकृ करणे' धातु से क्तिन प्रत्यय का योग करने पर निष्पन्न होता है।[1] सम् और परि उपसर्गपूर्वक 'डुकृ' धातु से भूषण एवं संघात अर्थ अभीष्ट होने [illegible] सुट का आगम होता है।[1/2] अस्तु संस्कृति का अर्थ है, भूषण भूत सम्यक कृति। इस प्रकार संस्कृति से परिष्करण या परिमार्जन की क्रिया अथवा सम्यक रूपेण निर्माण का अर्थ ग्रहण किया जाता है।[2]

ऋग्वेद में संस्कृत[3], यजुर्वेद में संस्कृत[4] और संस्कृति[5] तथा ऐतरेय ब्राह्मण में संस्कृति[6] शब्द का प्रयोग मिलता है। डा० पी०वी० काणे का मत है कि ऋग्वेद (५।७६।२) में प्रयुक्त संस्कृत शब्द का अर्थ धर्म (बर्तन) है।[7] सायण ने धर्म का अर्थ यज्ञ माना है।[8] इस प्रकार सायण के मत से ऋग्वेद (५।७६।२) में संस्कृत शब्द संस्कार युक्त यज्ञ के लिये प्रयुक्त हुआ है।[9]

१- वैदिक साहित्य, संस्कृति और दर्शन से उद्धृत (संस्कृति के स्वरूप का विवेचन) डा० विश्वम्भर दयाल अवस्थी पृ०सं० १००

१/२- सं परिभ्यां करोतौ भूषणे अष्टाध्यायी ६।१।१३७ समवाये च - अष्टाध्यायी ६।१।१३८

२- सं परिपूर्वस्य करोतेः सुट्स्याद भूषणे संघाते चार्थे।
भट्टोजि दीक्षित कृत सूत्रवृत्ति।

२- संस्कारैः आत्मधर्मादिभिः जीवनं संस्करोतीति संस्कृतिः।

३- न संस्कृतं प्रमिमीतो गमिष्ठान्ति नूनमश्विनोपस्तुतेह। - ऋग्वेद ५।७६।२

४- तन्नो संस्कृतम् - - यजुर्वेद - ४।३४

५- सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा। - यजुर्वेद - ७।१४

६- आत्म संस्कृतिर्वावशिल्पानि एतर्यजमान आत्मानं संस्कुरुथ -
- ऐतरेय ब्राह्मण - ६।५।१

७- धर्मशास्त्र का इतिहास - प्रथम भाग - डा०पी०वी० काणे, पृ०सं०१७६

८- धर्मन्तः - - ऋग्वेद ५।७६।१
परिवृद्ध धर्म प्रदीवृं यज्ञं - - ऋग्वेद ५।७६।१ का सायण भाष्य

९- अश्विनौ संस्कृतं धर्मं न प्रमिमीतः। धर्म समीपे नूनमिदानीमिह यज्ञे।
- ऋग्वेद ५।७६।२ का सायण भाष्य

यजुर्वेद (७।१४) में संस्कृति शब्द का प्रयोग भाष्यकार उवट के मत से सत्कार [1] के अर्थ में और भाष्यकार महीधर के मत से संस्कार [2] के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। अस्तु संस्कृति शब्द को कल्चर के आधार पर गढ़ा हुआ तथा आधुनिक युग में नवप्रयुक्त मानना आयुक्तिपूर्ण है। इस शब्द का वैदिक युग से प्रयोग होता रहा है। हां, अर्थ विस्तार के द्वारा आधुनिक युग में संस्कृति शब्द से पहले की अपेक्षा अधिक अर्थ-गाम्भीर्य की अभिव्यक्ति होती है : यह कहना समुचित है। बाबू गुलाबराय ने लिखा है कि ''संस्कृति शब्द का सम्बन्ध संस्कार से है, जिसका अर्थ है संशोधन करना, उत्तम बनाना, परिष्कार करना। संस्कार व्यक्ति के भी होते हैं और जाति के भी। जातीय संस्कारों को ही संस्कृति कहते हैं।[3] डा० मनमोहन शर्मा के अनुसार ''संस्कृति शब्द की व्युत्पत्ति संस्कार शब्द से मानना अधिक युक्ति संगत होगा : क्योंकि संस्कार का अभिप्राय किसी वस्तु के मल (दोषों) को दूर कर उसको सिद्धि साधक बनाना है। मलापनयन और अति शयाधान, संस्कारों के ये दो रूप हैं, जिनसे न केवल शरीर किन्तु आत्मा या अन्त:करण भी शुद्ध होता है। सम्यक संस्कारों से युक्त कृतियां ही संस्कृति हैं।''[4]

संस्कृति का समानार्थी अंग्रेजी शब्द कल्चर (Culture) है, जिसका अर्थ है - कृषि, परिष्कार, सभ्यता की स्थिति।[5] आक्सफोर्ड डिक्शनरी

१- सा प्रथमा संस्कृति: स: प्रथम: सोमसत्कार: क्रियते सोम क्रये।
यजुर्वेद ७।१४ का उवट भाष्य।

२- सा प्रथमा मुख्या संस्कृति: सोमसंस्कार:
यजुर्वेद ७।१४ का महीधर भाष्य।

३- भारतीय संस्कृति की रूप रेखा - - बाबू गुलाब राय,पृ०सं०१

४- भारतीय संस्कृति और साहित्य - - डा०मनमोहन शर्मा, पृ०सं०२४

५- कल्चर, कल्टीवेशन, दि स्टेट आफ बीइंग कल्टीवेटेड रिफाइनमेन्ट आफ् एक्सपेरीमेन्टली ग्रीन बैक्टीरिया आर दि लाइक टू कल्टीवेट आर टू इम्प्रूव,
चैम्बर्स ट्वेन्टीथ सेन्चरीज डिक्शनरी रिवाइज्ड एडीशन,
१९६२ पृ०सं० - २५७।

में कल्चर शब्द की परिभाषा करते हुये कहा गया है कि मन का शिक्षण तथा परिष्करण, जिनसे रुचि तथा व्यावहारिक आचरण का निर्माण होता है, संस्कृति के उपादान हैं। संस्कृति सभ्यता का बौद्धिक पार्श्व है, जिससे हम सर्वोत्तम के साथ अपना सम्पर्क स्थापित करते हैं।[१] इन्साइक्लोपीडिया में कहा गया है कि संस्कृति मानव के सभी प्रकार के आन्तरिक जीवन- बौद्धिक, नैतिक और धार्मिक को व्यक्त करती है। आधुनिक मनोविज्ञान ने इस तथ्य पर अधिक जोर दिया है कि बुद्धि और कर्म में बड़ी समानता है। संस्कृति भावनात्मक और क्रियात्मक पद्धतियों के द्वन्द के परिहार का प्रयत्न है। मन और कर्म में अन्तरंग और बहिरंग जीवन में सामंजस्य ही संस्कृति का मूलाधार है।[२] टाइलर के अनुसार ''संस्कृति वह संश्लिष्ट अभियोजन है, जिसमें समाजगत ज्ञान, विश्वास, कला, नैतिकता, विधि, रस्म-रिवाज तथा लोगों की सभी प्रकार की क्षमतायें तथा आदतें सम्मिलित रहती है।[३] मैकाइवर के मत से ''संस्कृति हमारे दैनिक व्यवहार में कला, साहित्य, धर्म मनोरंजन और आनन्द में पाये जाने वाले रहन-सहन और विचार के तरीकों में हमारी प्रकृति की अभिव्यक्ति है।[४]

१- आक्सफोर्ड डिक्शनरी।

२- इन्साइक्लोपीडिया आफ ह्यूमैनिटीज लिटरेचर -
- सम्पादक डा० नगेन्द्र पृ० -७।

३- Culture is that complex whole which includes, knowledge belief, Art, morals, law, custom and any other capabilities, and habits acquired by man as a member of society.
... E.B.Tailor Primitive Culture, Page -- 1.

4. Culture is the expression of our nature in our modes of living, thinking, in our everyday inter course in art, in literature, in Religion, in recreation & enjoyment.
समाजशास्त्र के मूल तत्व पृ०सं० १७४ पर उद्धृत

ए०डब्लू० ग्रीन के अनुसार "संस्कृति ज्ञान, व्यवहार तथा विकास की उन आदर्श पद्धतियाँ एवं ज्ञान और व्यवहार से उत्पन्न उन साधनों कोकहते हैं जो सामाजिक रूप से पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होते हैं।"[१]

गोल्डेन वाइजर के शब्दों में हमारी प्रवृत्तियां, विश्वास और विचार हमारे निर्णय और मूल्य, हमारी संस्थाएँ राजनीतिक, वैधानिक, धार्मिक और आर्थिक- हमारी नैतिक संहितायें और शिष्टाचार के नियम, हमारी पुस्तकें और यंत्र हमारे विज्ञान, दर्शन एवं दार्शनिक ये सब और दूसरी बहुत सी चीजें संस्कृति में सम्मिलित हैं।"[२]

डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने लिखा है कि "विचार और कर्म के क्षेत्र में राष्ट्र का जो सृजन है, वही उसकी संस्कृति है।"[३] डा० मंगलदेव शास्त्री का मत है कि "देश या समाज के विभिन्न जीवन व्यापारों में या सामाजिक सम्बन्धों में मानवता की दृष्टि से प्रेरणा प्रदान करने वाले उन उन आदर्शों की समष्टि को ही संस्कृति समझना चाहिये।"[४] डा० प्रभू दयाल मीतल के मत से -

"संस्कृति का सम्बन्ध संस्कार या संस्करण से है, जिसका अभिप्राय शुद्धि, सुधार, संशोधन, परिमार्जन अथवा अभ्यन्तर के रूप के प्रकाशन से होता है। इस प्रकार

१- Culture is the socially transmitted system of idealized weighs in knowledge, practice and belief alongwith the autficts that knowledge and practice produce and maintain the change in type-
-A.W.Green - समाजशास्त्र के मूल तत्वपृ०सं०-१७५ ।

२- Our attitude, beliefs and ideas. Our judgements and values, our institutions,Political and legal, religious and economice, our ethical codes and codes of etiquette, our books and machine our sciences,Philosophies and Philosophers all of these and many other things constitute culture.
- A.A.Golden Wiser- समाजशास्त्र के मूलतत्व पृ०सं०१७५ पर उद्धृत-

३- कला और संस्कृति- डा० वासुदेवशरण अग्रवाल भूमिका,पृ०सं० ३ ।

४- कस्यापि देशस्य समाजस्य वा विभिन्न जीवन व्यापारेषु समाजिक सम्बन्धेषु वा मानवीयत्व दृष्ट्या प्रेरणा प्रदानं तत्तदादर्शानां समष्टि रे व संस्कृति ।।
भारतीय संस्कृति का विकास - प्रथम खण्ड - डा० मंगलदेव शास्त्री, पृ० सं० - ४ ।

मानव समाज के वे सब संस्कार जो लौकिक और पारलौकिक उन्नति के मार्ग को प्रशस्त करते हुये उसके सर्वांगीण जीवन का निर्माण करते हैं, उसकी संस्कृति कहे जाते हैं। संस्कृति के अन्तर्गत देश, जाति या समाज के चिन्तन, मनन, आचार विचार, रहन-सहन, बोली, भाषा, वेश-भूषा, कला कौशल आदि सभी तत्वों का समावेश है।

संस्कृति का प्रतिबिम्ब धर्मोपासना में झलकता है और वह कला एवं साहित्य के माध्यम से अपनी अभिव्यक्ति करती है।''[1] चतुरसेन शास्त्री के अनुसार ''आध्यात्मिक और अधिभौतिक शक्तियों को सामाजिक जीवन के लिये उपयोगी तथा अनुकूल बनाने की कला संस्कृति है।''[2] डा० देवराज के मत से ''नृ-विज्ञान में संस्कृति का अर्थ समस्त सीखा हुआ व्यवहार होता है, अर्थात वे सब बातें जो हम समाज के सदस्य होने के नाते सीखते हैं। इस अर्थमेंसंस्कृति शब्द 'परम्परा' का पर्याय है।''[3] ''संस्कृति मानवीय व्यक्तित्व की वह विशेषता या विशेषताओं का समूह है जो उस व्यक्तित्व को एक खास अर्थ में महत्वपूर्ण बनाता है।''[4] ''संस्कृति का दार्शनिक विवेचन'' नामक ग्रन्थ में डा० देवराज ने लिखा है कि संस्कृति का अर्थ है ''सृजनात्मक अनुचिन्तन। उसका निर्माण उन क्रियाओं द्वारा होता है, जिनके द्वारा मनुष्य यथार्थ की सार्थक किन्तु निरुपयोगी छवियों की सम्बद्ध चेतना प्राप्त करता है। संस्कृति उन क्रियाओं कासमुदाय है, जिनके द्वारा मनुष्य को आत्मिक (मानसिक) जीवन में विस्तार, समृद्धि और गुणात्मक उच्चता आती है। समान्य रुप से हम कह सकते हैं कि संस्कृति मानव जाति के सर्वग्राह्य

१- ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास - डा० प्रभू दयाल मीतल, पृ०सं० ४।

२- भारतीय संस्कृति का इतिहास - चतुरसेन शास्त्री, पृ०सं० १।

३- भारतीय संस्कृति - डा० देवराज, पृ०सं० २०।

४- भारतीय संस्कृति - डा० देवराज, पृ०सं० २१।

आत्मिक जीवन रुपों की सृष्टि और उनकाउपभोग है।"[1] डा० देवराज एक अन्य प्रसंग में लिखते हैं कि "संस्कृति उन समस्त क्रियाओं को कहते हैं, "जिनके द्वारा मनुष्य अपने को विश्व की निरुपयोगी किन्तु अर्थवती छवियों से चाहे वे छवियां प्रत्यक्ष हों अथवा कल्पित, सम्बन्धित करता है।"[2]

डा० मुंशीराम शर्मा का मत है कि संस्कृति का अर्थ है संस्करण, परिमार्जन, शोधन, परिष्करण, अर्थात ऐसी क्रिया, जो व्यक्ति में निर्मलता का संचार करे। जब हम किसी देश, प्रदेश अथवा प्रान्त की संस्कृति की चर्चा करते हैं, तब हमारा उद्देश्य उस प्रदेश के विकसित आचार -विचार, रीत-रिवाज, पर्व-उत्सव, संस्कार, कला-कौशल, ज्ञान-विज्ञान, पूजा आदि के विधि-विधान, एवं अनुक्रम का ही उल्लेख करना होता है। एक व्यक्ति और समग्र समाज का भी विकसित एवं संस्कृत जीवन इन्हीं रुपों में प्रकट होता है।[3]

प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति के मत से "किसी देश की आध्यात्मिक, सामाजिक और मानसिक विभूति को उस देश की संस्कृति कहते हैं। संस्कृति शब्द में देश के धर्म, साहित्य, रीतिरिवाज, परम्पराओं, सामाजिक संगठन आदि आध्यात्मिक और मानसिक तत्वों का समावेश होता है। इन सबके समुदाय का नाम संस्कृति है।"[4] डा० भगवतशरण उपाध्याय के अनुसार "संस्कृति, जिस रुप में हम उसे आज मानने लगे हैं, इन विकास की मंजिलों की ओर उतना संकेत न कर, अधिकतर उन सूक्ष्म तत्वों से सम्बन्ध रखती है, जो विचार, विकास, रुचि, कला, आदर्श आदि की दुनिया है।[5]"

१- संस्कृति का दार्शनिक विवेचन - डा० देवराज, पृ०सं०३० ।

२- संस्कृति का दार्शनिक विवेचन - डा०देवराज, पृ०१७३ ।

३- वैदिक संस्कृति और सभ्यता - डा०मुंशीराम शर्मा, पृ०सं०११-१२ ।

४- भारतीय संस्कृति का प्रवाह, पृ० सं० १ ।

५- सांस्कृतिक भारत, पृ०सं० ११ ।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार "संस्कृति मनुष्य की विविध साधनाओं की सर्वोत्तम परिणति है। ...... भारतीय जनता की विविध साधनाओं की सबसे सुन्दर परिणति को ही भारतीय संस्कृति कहा जा सकता है।"[१]

डा० बलदेव प्रसाद मिश्र का मत है कि "संस्कृति का अर्थ हुआ, क्रिया अथवा वह अवस्था, जो समूचे मानव जीवन को अपवित्रता की ओर से हटाकर पवित्रता की ओर तथा अशुद्धि की ओर से हटाकर शुद्धि की ओर ले जायें।"[२] "सजी-संवारी जीवन-वृत्ति तथा जीवनचर्या का ही नाम संस्कृति है।"[३] डा० राम जी उपाध्याय ने लिखा है कि प्राकृतिक जीवन को व्यवस्थित और शालीन बनाकर संवारना तथा जीवन में आध्यात्मिक, कलात्मक और सेवात्मक पक्षों की प्रतिष्ठा और विकास करना संस्कृति है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि संस्कृति मानव व्यक्तित्व के विकास की प्रक्रिया है। संस्कृति का मौलिक अर्थ सुधारना अथवा सुन्दर या पूर्ण बनाना है।"[४]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मनुष्य की सुन्दर कृतियाँ स्थूल एवं सूक्ष्म और चिन्तन की अभिव्यक्ति का नाम संस्कृति है।

"सभ्यता का अर्थ है, सभा में बैठने की योग्यता। सभा या साधुरिति सभ्य:, सभ्यस्य भाव: सभ्यता। सभ्य + तल + टाप्। सभ्यता सामाजिक विधि (कर्तव्य) तथा निषेध (प्रतिबन्ध) पर जोर देती है। सभा में शिष्टाचार के नियमों का पालन किया जाता है और सामाजिक भावना का अनुभव किया जाता है।

१- अशोक के फूल, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ०सं० ६३।

२- भारतीय संस्कृति- डा० बलदेव प्रसाद मिश्र, पृ० सं० ३।

३- भारतीय संस्कृति- डा० बलदेव प्रसाद मिश्र, पृ०सं० ५।

४- भारतीय संस्कृति का उत्थान - डा०राम जी उपाध्याय, पृ०सं० ४।

अतएव 'सभ्यता' शब्द शिष्टाचार के नियमों के साथ ही सामाजिक,, उत्तरदायित्व, सामाजिक प्रतिबन्ध और सामाजिक आचरण का भी निर्देश करता है।''[१]

''सभ्यता मानव समाज की बाह्य और भौतिक सिद्धियों का मापदण्ड है और संस्कृति उसकी आन्तरिक तथ्य मानसिक सिद्धियों का। ज्ञान और विद्या के उपार्जन, धार्मिक और नैतिक विचारों के विकास, कला - कौशल के क्षेत्र में उन्नति, सामाजिक रहन सहन और परम्परागत योग्यताओं तथा विशिष्टताओं के विचार से किसी जाति या देश की जो पूर्व पीठिका होती है, वही उसकी संस्कृति कहलाती है।[२] डा० देवराज के मत से ''कला कौशल के तन्त्रों और तरीकों, जिसके द्वारा मनुष्य अपनी मूल क्षुधाओं तथा जरूरतों को सरलता पूर्वक पूरा करता है, की समष्टि का नाम सभ्यता है।''[३] सभ्यता का सम्बन्ध उपयोगिता के क्षेत्र से है और संस्कृति का मूल्यों के क्षेत्र से। सभ्यता तथा संस्कृति, दोनों मनुष्य की सृजनात्मक क्रिया के कार्य या परिणाम हैं। जब यह क्रिया उपयोगी लक्ष्य की ओर गतिमान होती है, तब सभ्यता का जन्म होता है और जब वह मूल चेतना को प्रबुद्ध करने की ओर अग्रसर होती है, तब संस्कृति का उदय होता है।''[४] ''सभ्यता को मानव के विकास की समस्त चेष्टाओं का बाह्य रूप कहा जाता है और संस्कृति उनका आन्तरिक रूप।''[५]

''संस्कृति का सम्बन्ध आत्मा से है और सभ्यता का सम्बन्ध मानवीय कार्य कलापों से है। इस प्रकार संस्कृति शब्द बौद्धिक उन्नति का पर्यायवाची है और सभ्यता शब्द भौतिक विकास का समानार्थक है। सभ्यता, सांस्कृतिक विचारधारा का बाह्य क्रियात्मक रूप है। संस्कृति या बौद्धिक विचारधारा सभ्यता अर्थात विकास

१-भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता डा० प्रसन्न कुमार आचार्य, पूर्वाभास, पृ०सं० ३।
२-शब्द साधना श्री रामचन्द्र वर्मा पृ०सं० ३४३-३४४।
३-संस्कृति का दार्शनिक विवेचन - डा० देवराज पृ०सं० १६७।
४-संस्कृति का दार्शनिक विवेचन - डा० देवराज पृ०सं० १८८।
५-कामायनी में काव्य संस्कृति और दर्शन पृ०सं० ३०७।

में परिणत हो जाती है।''[१]

डा० कमला प्रसाद पाण्डेय का मत है कि ''संस्कृति जीवन बोध का पर्याय है, और सभ्यता उसको कर्मरूप में परिणत करने का माध्यम।''[२] डा० रामरतन भटनागर के अनुसार ''संस्कृति भावमय और ज्ञानमय है और सभ्यता कर्ममय।''[३] सभ्यता का सम्बन्ध सामाजिक शिष्ट व्यवहारों से होता है, जबकि संस्कृति हार्दिक गुणों के प्रकाशन में दृष्टिगोचर होती है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि यदि सभ्यता शरीर है तो संस्कृति उसकी आत्मा। बोलचाल, वेशभूषा और व्यवहार में साधुता सभ्यता को सूचित करती है और पर-दु:ख कातरता, पर सेवा, करुणा और पर-स्वार्थ साधन आदि हार्दिक गुणों के रूप में संस्कृति की अभिव्यक्ति होती है।[४]

संस्कृति की सामाजिक संवेदना को उद्घाटित करते हुये हिन्दी के कवि डा० ललित दीक्षित ने उसे इस प्रकार विवेचित किया है -

''यह विचार की विधि ही तो संस्कृति है अपनी।
संस्कार की निधि ही तो संस्कृति है अपनी।
उदय - अस्त होता रहता सभ्यता सूर्य का।
किन्तु ज्योति संस्कृति की अस्त नहीं होती।
सो जाता है एक फूल मरघट में लेकिन।
गन्ध फूल की घ्राण भर त्रस्त नहीं होती है।
संस्कृति का यह फूल, डाल पर नहीं विचारों में खिलता है।
और सुमन यह अन्तर में विकसित होता है।
यह समाज के लिये एक संगठन,
सदाचार सहयोग स्नेह का अजिर सन्तुलन।''[५]

भारतीय संस्कृति आध्यात्मिक संस्कृति है। भारतवर्ष में

१- भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता - पूर्वाभास, पृ०सं० ३-४।
२- छायावादोत्तर हिन्दी काव्य की सामाजिक और सांस्कृति पृष्ठ भूमि, डा० कमला प्रसाद पाण्डेय, पृ०सं० ४२।
३- सामुदायिक जीवन और साहित्य, पृ० सं० ३४१।
४- अभिशप्त शिला कम सर्ग ८ पृ०सं० ८५, डा० चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित ललित।

आध्यात्मिकता के अन्तर्गत जीव, ईश्वर, जगत और माया के स्वरूप का ज्ञान तथा परमात्मा की प्राप्ति के साधनों पर विचार किया जाता है। मानव जीवन के लक्ष्य अर्थात पुरुषार्थ चार माने गये हैं, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष।

धर्म का भारतीय जन-जीवन में सर्वोपरि महत्त्व है। जन्म से लेकर मृत्यु तक और घर से लेकर समाज तक सर्वत्र धर्म का शासन रहा है। भारतवर्ष में सम्पूर्ण मानव समाज और सम्पूर्ण मानव-जीवन को क्रमशः चार वर्णों एवं चार आश्रमों में विभक्त कर पृथक-पृथक वर्ण, धर्म तथा आश्रम-धर्म का विधान किया गया है। धर्म से अस्तित्व-भाव जागृत होता है। ईश्वर का चिन्तन करते हुये सांसारिक क्लेशों से विमुक्त अर्थात मोक्ष की प्राप्ति के लिये प्रयास करना मानव जीवन का लक्ष्य है। वस्तु ज्ञान के क्षेत्र में अद्वैत भाव और साधना के क्षेत्र में उपासना तथा मूर्तिपूजा को प्रश्रय मिला।

हम देखते हैं कि कोई व्यक्ति जन्मतः सुखोपभोग करता है और कोई जन्म से ही दुःखमय जीवन व्यतीत करता है। इस सुख-दुःख के मूल में हमारे पूर्व जन्म के कर्मों (प्रारब्ध) का हाथ होता है। अतएव हमारे यहां पुनर्जन्म, परलोक और कर्म-वाद पर दृढ़ आस्था पाई जाती है। भारतीय संस्कृति में अधिकार से अधिक कर्तव्य पर जोर दिया गया है।[१]

भारतीय संस्कृति का विकास प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण में हुआ है। गुरुकुलों के संचालक और आश्रमों के प्रतिष्ठापक ऋषियों ने भारतीय संस्कृति को दिव्य स्वरूप प्रदान किया है। इसीलिये भारतीय संस्कृति में ग्राम्य और आरण्यक जीवन को गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है। आश्रम व्यवस्था के अन्तर्गत ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और सन्यास आश्रम का सम्बन्ध आश्रमों एवं अरण्यों से ही रहा है।

१- आधुनिक काव्यधारा का सांस्कृतिक स्रोत- डा० केशरी नारायण शुक्ल, पृ०सं०१७।

भारत में लौकिक अभ्युदय की उपेक्षा नहीं हुई तथापि वरीयता निःश्रेयस अर्थात पारलौकिक कल्याण को ही प्राप्त हुई। यही कारण है कि आध्यात्मिकता को भारतीय संस्कृति का केन्द्र बिन्दु कहा गया है।[१]

१-ब- संस्कृति के तत्व :-

विद्वानों ने भारतीय संस्कृति के भिन्न-भिन्न तत्वों का उल्लेख किया है। यहां कतिपय विद्वानों के मतों का उल्लेख निम्नवत् है।

बाबू गुलाबराय ने भारतीय संस्कृति के निम्नलिखित तत्व स्वीकार किये हैं।[२]

।१। आध्यात्मिकता -
।२। परलोक और आवागमन में विश्वास -
।३। समन्वय- बुद्धि
।४। वर्णाश्रम- विभाग
।५। बाह्य और आन्तरिक शुद्धि -
।६। अहिंसा, करुणा, मैत्री और विनय -
।७। प्रकृति प्रेम -
।८। उत्सव-प्रियता -

डा०रामजी उपाध्याय के अनुसार संस्कृति के मुख्य तत्व निम्नलिखित है।[३]

।१। सार्वजनीनता -
।२। सर्वांगीणता
।३। दैवपरायणता
।४। धर्मपरता
।५। आश्रम- व्यवस्था

१- भारतीय संस्कृति और कला - डा० राधाकमल मुकर्जी, पृ०सं० २३।

२- भारतीय संस्कृति की रूप रेखा- बाबू गुलाबराय, पृ०सं० ६-१२।

३- भारतीय संस्कृति का उत्थान - डा०रामजी उपाध्याय, पृ०सं० ११-१३।
भारत की संस्कृति-साधना - डा०रामजी उपाध्याय - पृ०सं० १५-१६।

।६।	आध्यात्मिकता

।७।	कर्मफल और जन्मान्तर वाद

।८।	सर्वेभा(भ)वन्ति सुखिन: सन्तु

।९।	नि:सीमता

।१०।	सनातनता

।११।	कृषि एवं ग्राम की प्रधानता

।१२।	उपरिस्थायिता -

डा०मुंशीराम शर्मा ने निम्नांकित तत्वों के आधार पर वैदिक संस्कृति समालोचन किया है ।[१]

।१।	संस्कृति और संस्कार

।२।	योग और संस्कृति

।३।	संस्कृति और चतुर्वर्ग

।४।	संस्कृति और काण्डत्रय

।५।	संस्कृति और विकास पद्धति

इसी प्रकार डा० मंगलदेव शास्त्री ने वैदिक संस्कृति का निरूपण करते समय निम्नांकित तत्वों को आधार बनाया है ।[२]

(१)	समष्टि भावना

(२)	चातुर्वर्ण्य व्यवस्था

(३)	चतुराश्रम्य व्यवस्था

(४)	राजनीतिक आदर्श

(५)	वैयक्तिक जीवन

(६)	संस्कार

(७)	धर्म

१- वैदिक संस्कृति और सभ्यता - डा० मुंशीराम शर्मा , पृ०सं० ४६-२३५ ।

२- भारतीय संस्कृति का विकास (प्रथमखण्ड) डा० मंगलदेव शास्त्री, पृ० १२५ ।

भक्ति एवं दर्शन के आचार्य डा०विश्वम्भर दयाल अवस्थी ने संस्कृति के तत्वों का विवेचन निम्नवत किया है [१]

१- संस्कार

२- अवतारवाद

३- आचार और धर्म

४- वर्णाश्रम -व्यवस्था

५- पुनर्जन्म और परलोक

६- आध्यात्मिकता

१-स- **संस्कृति और देशकाल :-**

१६वीं शताब्दी में जब भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति पाश्चात्य संस्कृति के सम्पर्क में आयी तो प्रभावित हुये बिना नहीं रह सकी । इस समय भारतीय लोग पश्चिमी विचार वेश भूषा,खान-पान, समाज एवं धर्म आदि की आंख-मूंद कर नकल करने लगे । इसमें वे अपना गौरव समझते थे । कुछ लोगों ने भारतीय भूमि पर नवीन यूरोप बसाने का प्रयत्न किया परन्तु उन्हें असफलता का मुंह देखना पड़ा, क्योंकि भारत में पुर्नजागरण प्रारम्भ हो गया था । इस समय कुछ ऐसे महापुरुष हुये उन्होंने धर्म एवं समाज में व्याप्त दोषों को दूर करने का प्रयास किया । इसके लिये सुधारवादी आन्दोलन प्रारम्भ हुये । भारत में पश्चिमी संस्कृति के प्रचार कारण बुद्धिवादी विचारधारा का तीव्रगति से प्रचार हुआ । अब वे तर्क के आधार पर ही किसी बात को स्वीकार करते थे जिससे भारतीयों के जीवन के सभी क्षेत्रों में परिवर्तन करने की भावना जागृत हुई । इस प्रकार पुर्नजागरण के कारण आधुनिक

१- वैदिक साहित्य, संस्कृति और दर्शन - डा०विश्वम्भर दयाल अवस्थी, पृ०सं०१०४ ।

भारत का निर्माण सम्भव हो सका, फिर भी पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति से हमारी संस्कृति पर स्थाई प्रभाव पड़े जो निम्नलिखित है -

इस्लाम के आगमन का सम्पूर्ण हिन्दू समाज पर प्रभाव पड़ा परन्तु यह केवल नगरों तक ही व्याप्त था । इसके विपरीत पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव न केवल नगरों पर अपितु ग्रामों पर भी पड़ा । इसने भारत के समस्त वर्गों को प्रभावित किया । आधुनिक यातायात के साधनों के कारण पाश्चात्य प्रभाव का शीघ्रता से सर्वत्र प्रसार हो गया ।

पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति ने भारतीय शिक्षा को काफी प्रभावित किया । ईसाई धर्म प्रवर्तक भारत में अंग्रेजी शिक्षा में समर्थक थे । अत: लार्ड मैकाले के सुझाव पर १८३५ ई० में भारतीयों की शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी भाषा को घोषित किया गया । शिक्षा की इस पाश्चात्य पद्धति के कारण अंग्रेजी पढ़े लिखे लोग पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति की ओर आकर्षित होने लगे । अब अपने धर्म एवं संस्कृति से विश्वास उठता जा रहा था । पश्चिमी ढंग से शिक्षा प्राप्त हुये व्यक्ति मानसिक रूप से अंग्रेजों के गुलाम बन चुके थे । इस शिक्षा के कारण भारत के लोग अपनी सभ्यता तथा संस्कृति को भूलकर पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति का गुणगान करने लगे । इससे देश में नवीन मध्यम वर्गों का प्रादुर्भाव हुआ तथा शिक्षित एवं अशिक्षित वर्गों के बीच की दूरी बढ़ती गई ।

पाश्चात्य सभ्यता तथा शिक्षा का देशी भाषाओं के साहित्य पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा । भारतवासियों ने अंग्रेजी के माध्यम से शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात पाश्चात्य साहित्य का अध्ययन किया जिनका उन पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा । अंग्रेजी साहित्य से उन्हें नई प्रेरणा मिली । इस प्रकार पाश्चात्य साहित्य के अध्ययन के पश्चात भारतीयों का दृष्टिकोण उदार तथा व्यापक हो

गया । १६१६ ई० के पूर्व भारतीय नेताओं ने अपने व्याख्यानों एवं लेखों में अंग्रेज नेताओं की नकल की । अंग्रेजी ग्रन्थों तथा पुस्तकों ने हमारे देश में नवीन विचार धारायें प्रस्तुत कीं । भारतीय साहित्यकारों ने पाश्चात्य साहित्य की नकल करना प्रारम्भ कर दिया ।

भारत के गद्य साहित्यकारों ने अपने लेखों एवं निबन्धों में पाश्चात्य शैली का अनुसरण किया था । भारतीय नाटकों पर भी पाश्चात्य शैली तथा प्रवृत्तियों का प्रभाव स्पष्ट रुप से दृष्टिगोचर होता है । भारतीय साहित्य में एकांकी नाटक एवं समस्या नाटक का प्रादुर्भाव पाश्चात्य नाटक साहित्य के प्रभाव के कारण हुआ । श्री लक्ष्मी नारायण मिश्र श्री गोविन्द बल्लभ पन्त, श्री कैलाश नाथ भटनागर आदि नाटककारों पर पाश्चात्यसाहित्य का प्रभाव स्पष्ट रुप से दिखाई देता है । छोटी-२ कहानियाँ, उपन्यासों, निबन्धों एवं प्रेम की कविताओं एवं छायावादी कविताओं पर पाश्चात्य साहित्य की गहरी छाप है ।

पाश्चात्य विद्वानों ने देशी भाषाओं के कोष और व्याकरण को बनाने में सराहनीय योगदान दिया । ईसाई पादरियों ने देशी भाषाओं के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त करने के लिये उन भाषाओं के शब्द कोष और व्याकरण का निर्माण किया , मुद्रणालय खोले ताकि जनसाधारण में ईसाई धर्म का प्रचार हो । पश्चिमी विद्वानों ने देशी भाषाओं के इतिहास भी लिखे हैं । ईसाई धर्म प्रचारकों ने मराठी भाषा के शब्द कोष तथा व्याकरण ग्रन्थ निर्मित किये जिससे उसका नया विकसित रुप उभर कर सामने आया ।

पाश्चात्य प्रभाव के अन्तर्गत देशी भाषाओं के समाचार पत्र एवं अखबार निकाले गये । भारतीयों द्वारा पहला अंग्रेजी भाषा में समाचार पत्र १८१६ ई० में 'बंगाल गजट' के नाम से प्रकाशित हुआ इसमें धर्म से सम्बन्धित विषयों

पर समाचार होते थे । १८२२ ई० में गुजराती 'बम्बई समाचार' प्रकाशित होने लगा । १८४५ ई० में हिन्दी का पहला पत्र 'बनारस अखबार' प्रकाशित हुआ । इन समाचार पत्रों से भारतीय लोगों को विश्व के अन्य देशों के बारे में जानकारी प्राप्त होती थी तथा उन देशों के साहित्य की विशेषताओं को समझने का अवसर भी प्राप्त हुआ ।

१८वीं शताब्दी के अन्त में कई अंग्रेज विद्वानों ने संस्कृत भाषा का अध्ययन करने के पश्चात हिन्दुओं के धर्म ग्रन्थों का अंग्रेजी में अनुवाद किया । ऐसे विद्वानों में - चार्ल्स विल्किन्स, मैक्समूलर एवं सर विलियम जोन्स के नाम विशेष रुप से उल्लेखनीय हैं । अंग्रेजों द्वारा संस्कृत साहित्य को प्रोत्साहन देने से संस्कृत भाषा का पुनरुद्धार सम्भव हुआ था तथा भारतीयों का अध्ययन संस्कृत की ओर आकृष्ट हुआ ।

जब सम्पूर्ण भारतवर्ष में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी घोषित कर दिया तब अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त भारतीय विद्वानों ने पश्चिमी देशों का भ्रमण किया तो उन्हें पता चला कि किस प्रकार से वहां के लोग स्वतन्त्रता एवं समानता के अधिकार का उपभोग कर रहे हैं । पश्चिमी साहित्य से भारतीयों को यह भी पता चला कि किस प्रकार से मेजिनी तथा गेरी बाल्डी ने इटली में एवं नैपोलियन ने फ्रांस में राष्ट्रीयता की भावना का प्रसार किया था । अब भारतीय भी एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में भ्रमण करने लगे एवं अंग्रेजी भाषा में एक दूसरे के समक्ष अपने विचार व्यक्त करने लगे । इससे देश में राष्ट्रीय आन्दोलन तीव्रगति से प्रारम्भ हो गया और लोग स्वतन्त्रता तथा स्वशासन की मांग करने लगे ।

पश्चिमी सभ्यता एवं संस्कृति के प्रभाव के कारण भारतीय समाज में एक क्रान्ति उत्पन्न हो गई है । एक ओर अनुदार प्रतिक्रिया वादियों का उदय हुआ

जो समाज की प्राचीन संस्थाओं में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं चाहते थे। उन्होंने पश्चिमी प्रभाव तथा सभी प्रकार की प्रगति का विरोध किया। दूसरी ओर प्रगतिशील वादियों का प्रादुर्भाव हुआ जो भारतीय समाज में व्याप्त छुआ-छूत, बाल विवाह, सती प्रथा, पर्दा प्रथा, बहुविवाह एवं कन्या वध आदि बुराइयों को दूर करना चाहते थे तथा पश्चिम की अच्छी बातों को ग्रहण करने के पक्ष में थे। इस प्रकार समाज में नई चेतना जागृत हुई और नवीन मध्यम वर्गों का जन्म हुआ जिन्होंने पश्चिमी संस्कृति की अनेक बातें अपना लीं।

भारतीय वेश भूषा, खान पान, रहन-सहन, आचार-विचार, शिष्टाचार व्यवहार आदि पर पाश्चात्य प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टि गोचर होता है। पश्चिमी प्रभाव के कारण भारत में जाति व्यवस्था अब धीरे धीरे समाप्त होती जा रही है एवं सामाजिक कुरीतियों की अन्त्येष्टि हो रही है। इसके अतिरिक्त व्यक्तिवादी दृष्टिकोण का विकास हुआ है जिसके अनुसार एक परिवार में मां-बाप,भाई बहन के अतिरिक्त अन्य सदस्यों का साथ रहना अच्छा नहीं माना जाता है। पाश्चात्य देशों के इस आदर्श को आज की युवा पीढ़ी भी अपना रही है जिसके कारण भारत में संयुक्त परिवार प्रथा को गहरा आघात पहुंचा है। पहले व्यक्ति समाज के हित के लिये अपना सब कुछ बलिदान कर देता था परन्तु अब उसकी दृष्टि में समाज का स्थान गौण हो गया है।

पश्चिमी प्रभाव के कारण भारत में १९ वीं शताब्दी में धार्मिक तथा सामाजिक सुधार आन्दोलन प्रारम्भ हुये जिसके द्वारा समाज में व्याप्त बुराइयों को दूर करने के प्रयास किये गये। भारतीय स्त्रियों की दशा में सुधार हुआ, अखिल भारतीय महिला परिषद की स्थापना हुई। महिलाओं के उत्थान तथा प्रगति के लिये इसने देश व्यापी सफल आन्दोलन किया। वर्तमान समय में स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त हैं। वे पुरुषों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर निरन्तर आगे बढ़ती जा रही हैं और जीवन के किसी भी क्षेत्र में वे पुरुषों

से पीछे नहीं हैं ।

१६ वीं शताब्दी में भारतीय धर्म में अनेक दोष उत्पन्न हो गये थे । इस समय ईसाई पादरियों ने ईसाई धर्म की प्रशंसा कर जोर शोर के साथ उसका प्रचार किया और दूसरी ओर हिन्दू धर्म की बहुदेव वाद, मूर्तिपूजा एवं अवतार वाद आदि बुराइयों की कटु आलोचना की । इस प्रकार उन्होंने हिन्दुओं के अन्ध विश्वासों का मजाक उड़ाया । ईसाई धर्म के प्रचार के कारण लोग इस धर्म की ओर आकर्षित होने लगे । उनकी हिन्दू धर्म से आस्था हटती जा रही थी । तब हिन्दू धर्म के विद्वानों की आंखें खुलीं , उन्होंने अपने धर्म के अस्तित्व को बनाये रखने के लिये इसमें सुधार करने का निश्चय किया । आर्य समाज की स्थापना इसी का परिणाम था । इसके संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती ने ईसाई धर्म की कमियों पर प्रकाश डाला और हिन्दुत्व के महत्त्व का बखान कर भारतीयों का ध्यान भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति की ओर आकर्षित किया ।

भारतीयों को पश्चिमी विद्वानों की कृतियों से प्राचीन ललित कलाओं और अतीत के गौरव के बारे में ज्ञान प्राप्त हुआ । हैवेल,फर्ग्युसन आदि यूरोपियन विद्वानों ने अपनी रचनाओं में भारतीय ललित कलाओं की विशेषताओं को विश्व के सम्मुख प्रदर्शित किया । कनिंघम, मार्शल, पर्सी ब्राउन वी०ए० स्मिथ, कर्नल टाड तथा मैक्समूलर आदि विद्वानों ने अपनी कृतियों में भारत के गौरवशाली इतिहास का सजीव वर्णन किया । भारतीय तथा यूरोपियन विद्वानों ने भारत के अतीत का गौरवमयी इतिहास हमारे सामने रखा । परिणामस्वरूप हम अपने अतीत के गौरव को समझ सके और अपने पूर्वजों की देन को पुन: प्राप्त कर सके ।

पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव भारतीयों के आर्थिक जीवन पर भी पड़ा । ब्रिटिश सरकार की नीति के कारण भारतीय उद्योग धन्धे नष्ट हो गये । अंग्रेज भारत का कच्चा माल अपने देश में भेजते थे और वहां से मशीनों द्वारा निर्मित माल भारत में भेजते थे जो लघु एवं कुटीर उद्योग धन्धों के निर्मित माल से बहुत सस्ता

होता था । इसलिये भारत के बाजार यूरोपियन मालों से भर गये तथा भारतीय कुटीर उद्योग धन्धों का पतन होने से देश में बेरोजगारी की एक भयंकर समस्या उठ खड़ी हुई । भारत का धन विदेशों में जाने से वह दिन प्रतिदिन गरीब होता गया ।

अंग्रेज सरकार के प्रयासों से भारत में १७९२ ई० में बनारस में और १८२१ ई० में कलकत्ता में एक संस्कृत कालेज की स्थापना हुई । अंग्रेजों द्वारा संस्कृत भाषा को प्रोत्साहन देने से संस्कृत पुनरुद्धार सम्भव हुआ । इसके अतिरिक्त विश्व के समक्ष प्राचीन भारतीय गौरव उपस्थित हुआ । कुछ यूरोपियन विद्वानों ने प्राचीन भारतीय आदर्शों की भूरि-भूरि प्रशंसा की तो भारतीयों को अपनी संस्कृति की महानता के बारे में ज्ञान प्राप्त हुआ । परिणामस्वरूप उनके मन में अपनी संस्कृति के प्रति श्रद्धा की भावनायें जागृत हुईं ।

ऐसा कहा जाता है कि हेमिल्टन नामक अंग्रेज ने जर्मन तथा फ्रान्सीसी विद्वानों को संस्कृत की शिक्षा दी । इसलिये इन दोनों देशों में संस्कृत साहित्य का अध्ययन आरम्भ हो गया । जर्मन विद्वान शोपेन हावर भारतीय उपनिषदों से काफी प्रभावित हुआ और उसने लिखा ''सारे संसार में ऐसा कोई स्वाध्याय नहीं है जो उपनिषदों के समान उपयोगी और उन्नति की ओर ले जाने वाला हो । वे उच्चतम बुद्धि की उपज हैं । अन्ततोगत्वा एक दिन ऐसा होना ही है कि यह जनता का धर्म होगा ।'' शोपेन हावर को भारतीय उपनिषद ईश्वरीय ज्ञान और प्रकाश जैसे प्रतीत हुये । उसने लिखा है ''सम्पूर्ण विश्व में उपनिषदों के समान जीवन को ऊंचा उठाने वाला अन्य कोई ग्रन्थ नहीं है । इनसे मुझे जीवन में शान्ति मिली है और उन्हीं से मृत्यु के समय में भी शान्ति मिलेगी ।''

शिलर नामक विद्वान ने 'मेरिया स्टुवर्ट' नामक ग्रन्थ लिखा । इस पर कालिदास द्वारा रचित 'मेघदूत' नामक महाकाव्य का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है । प्रसिद्ध कवि गेटे ने कालिदास के प्रसिद्ध नाटक 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' की मुक्त

कण्ठ से प्रशंसा की है। गेटे ने फास्ट नामक ग्रन्थ की प्रस्तावना कालिदास के इस नाटक को आधार बनाकर लिखी है। मैक्समूलर ने ऋग्वेद का अनुवाद किया। इस कार्य को करने में उसे बीस वर्ष का समय लगा था।

इमरसन थोरो कवि वाल्ट ह्टिमैन एवं अल्कोट आदि अमेरिकन विद्वान भी भारतीय धर्म,दर्शन एवं संस्कृति से बहुत अधिक प्रभावित हुये। इमरसन ने 'ओवर-सोल' तथा 'सर्किल्स' आदि निबन्ध एवं ब्रह्म 'जैसी कविता में उपनिषदों के बारे में चर्चा की है कवि ह्टिमैन ने 'पैसेज टू इण्डिया' एवं 'लीव्स आफ द ग्रास' आदि कवितायें लिखीं, इनमें गीता तथा उपनिषदों का प्रभाव स्पष्ट रुप से दृष्टिगोचर होता है। स्वामी विवेकानन्द ने अमेरिका में भारतीय संस्कृति तथा वेदान्त का प्रचार किया। उन्होंने अमेरिका में एक वेदान्त समाज की स्थापना की जो आज भी भारतीय संस्कृति व दर्शन का प्रतीक है। कुछ समय पूर्व जे० कृष्ण मूर्ति ने अमेरिका में भारतीय दर्शन तथा आध्यात्मिक ज्ञान को वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया जिससे वहां के लोग काफी प्रभावित हुये। उत्तरी अमेरिका एवं दक्षिणी अमेरिका में स्थापित संस्थायें वेदान्त का अध्ययन एवं भारतीय अध्यात्म विद्या का अनुसरण करती हैं। भारतीयों ने अमेरिका में इण्डिया सोसायटी एवं इण्टरनेशनल स्कूल आफ वैदिक एण्ड एलाइड रिसर्च की स्थापना की है, जो वहां पर भारतीय संस्कृति का प्रचार कर रही है।

अमेरिकन विद्वानों की भांति इंगलैण्ड के विद्वान भी भारतीय संस्कृति से बहुत प्रभावित हुए हैं। शैली, वर्ड्सवर्थ, राबर्ट ब्राउनिंग और कारलाइल आदि विद्वानों की कविताओं पर वेदान्त का प्रभाव स्पष्ट रुप से दृष्टिगोचर होता है। जिराल्ड हर्ड तथा अल्डास हक्सले जैसे दार्शनिकों की कृतियों पर भी भारतीय दर्शन का प्रभाव है। उनके प्रयासों से इंगलैण्ड में एक योग आश्रम की स्थापना हुई है। भारतीय संस्कृति से प्रभावित होकर अंग्रेज विद्वान स्मिथ तथा डफ ने भारत का इतिहास लिखा। भारत के सम्पर्क से अंग्रेजों को भारतीय हुक्का, पुलाव तथा चटनियां

के प्रति रुचि बढ़ी ।

फ्रान्सीसी विद्वान रोमारोलां भारतीय संस्कृति के गहन अध्ययन के लिये प्रसिद्ध हैं। उसने श्री राम कृष्ण, स्वामी विवेकानन्द महात्मा गान्धी पर लिखा। पेरिस विश्वविद्यालय के लुई रैनो वेद, व्याकरण एवं कोशों के प्रकाण्ड पंडित हैं। फ्रांस के लियो विश्वविद्यालय में शतपथ ब्राह्मण पर कई वर्षों से काम किया जा रहा है। फ्रांस में भी एक ऐसी संस्था स्थापित है जिसका प्रमुख कार्य भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का अध्ययन कर उसका प्रसार करना है।

डेनमार्क, नार्वे, स्वीडन एवं फिनलैण्ड आदि देशों में पाली तथा संस्कृत भाषा में लिपिबद्ध ग्रन्थों पर अनुसन्धान हो रहे हैं। हालैण्ड के प्राध्यापक जे०गोन्दा ने महाभारत के भीष्म पर्व, गरुड़पुराण आदि का सम्पादन किया है। जर्मनी के प्रसिद्ध विद्वान ग्लासेन हैप ने संस्कृत के अनेक दर्शन शास्त्रों पर भाष्य लिखे हैं। चैकोस्लो-वाकिया के विन्टर नित्स ने भारतीय साहित्य के इतिहास पर एक अमूल्य ग्रन्थ लिखा है। द्वितीय विश्व युद्ध से पहले जर्मनी के प्रत्येक विश्वविद्यालय में भारतीय साहित्य, धर्म तथा कला आदि के अध्ययन के लिये विशेष प्रबन्ध था। जर्मनी के प्रसिद्ध विद्वान शोपेन हावर ने संस्कृत के दर्शन की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद भी जर्मनी में संस्कृत का अध्ययन पुनः शुरु हो गया है। मार्बुर्ग में संस्कृत का एक उत्कृष्ट पुस्तकालय है। इसके अतिरिक्त म्युनिख में संस्कृत के अनेक ग्रन्थालय हैं।

१९वीं शताब्दी में भारत में धार्मिक तथा सामाजिक सुधार आन्दोलन प्रारम्भ हुए। इसके नेताओं ने भारतीय संस्कृति की महानता के बारे में भारतीयों को अवगत कराया। ऐसे नेताओं में श्रीमती एनीबिसेन्ट, स्वामी दयानन्द सरस्वती एवं स्वामी विवेकानन्द के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। श्रीमती एनीबसेन्ट अपने लेखों तथा भाषणों के माध्यम से पश्चिमी देशों में भारतीय संस्कृति का

प्रसार करती रही । और विश्व में भारत का नाम उज्ज्वल कर उसका गौरव बढ़ाती रहीं । उसने हिन्दुत्व का गौरवगान कर हिन्दुओं में अपने धर्म के प्रति आस्था तथा आत्म सम्मान की भावनायें जागृत कीं । इसी प्रकार स्वामी विवेकानन्द, रवीन्द्र नाथ टैगोर, श्री अरविन्द आदि ने विदेशों में भारतीय संस्कृति का मस्तक ऊंचा किया । भारतीय ललित कलाओं से भी पाश्चात्य देश बहुत अधिक प्रभावित हुये । इस प्रकार पूर्व तथा पश्चिम के जीवन में श्रेष्ठ व सुन्दर समन्वय के लिये सफल प्रयास किये जाने लगे ।

१-द- संस्कृति और राष्ट्रीय एकता :-

भारतवर्ष में भौगोलिक, राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, भाषा शिक्षा और कला के क्षेत्र में विभिन्न संस्कृतियां होने के बावजूद एकता है ।

भौगोलिक दृष्टि से भारत एक देश है । विष्णु पुराण में लिखा है कि "समुद्र के उत्तर में, हिमालय के दक्षिण में जो देश है , वह भारत नामक खण्ड कहलाता है और यहां के निवासी भारत की सन्तान कहलाते हैं ।"

भौगोलिक दृष्टि से प्रकृति ने भारत को एक देश का रूप प्रदान किया है और उसे अन्य देशों से पृथक करते हुये सुरक्षित प्राकृतिक सीमायें प्रदान की हैं । इसलिये भारतवर्ष में कभी सीमा सम्बन्धी युद्ध नहीं हुये । जबकि यूरोप के विभिन्न देशों की प्राकृतिक सीमा निश्चित न होने के कारण विभिन्न युगों में बहुत से सीमा सम्बन्धी युद्ध होते रहे । भारतवर्ष के किसी भी शासक ने यदि विदेशी राज्यों पर शासन करने का प्रयास किया तो उसे असफलता का मुंह देखना पड़ा । उदाहरण के लिये मुगल सम्राट शाहजहां की मध्य एशिया के प्रदेशों को मुगल साम्राज्य में सम्मिलित करने का प्रयास असफल रहा, इसी तरह किसी विदेशी शासक ने बाहर से भारत के कुछ प्रदेशों पर शासन करने का प्रयास किया तो उसे भी असफलता मिली । उदाहरण के

लिये महमूद गजनवी गजनी से पंजाब पर शासन का प्रयास किया परन्तु वह शासन शीघ्र ही समाप्त हो गया । दिनकर ने ठीक ही लिखा है कि ''भारत के भीतर यद्यपि प्रान्तीय भेदों के लिये अनेक क्षेत्र मौजूद हैं लेकिन इन तमाम विभिन्नताओं को समेट कर भारत को एक पूर्ण देश बनाने का काम भी हमारे भूगोल ने ही किया है । भीतर से कुछ बंटा हुआ और बाहर से बिल्कुल एक, भारत की यह विशेषता बहुत पुरानी है ।''[१]

भारत में विभिन्न ऐतिहासिक युगों में राजनैतिक तथा प्रशासन सम्बन्धी एकता स्थापित रही । प्राचीन काल में चक्रवर्ती सम्राट बनना भारतीय शासकों का आदर्श रहा है । ऐसे शासक के लिये हिमालय से लेकर कन्या कुमारी तक के प्रदेशों पर विजय प्राप्त करना आवश्यक था । इसके बाद वह प्रतापी 'नरेश' एवं 'महाराजाधिराज' आदि उपाधियां धारण करता था परन्तु उस समय यातायात के साधनों का विकास उतना नहीं हुआ था । इसलिये किसी भी शासक के लिये समस्त भारतवर्ष पर अधिकार करना अत्यन्त कठिन कार्य था, फिर भी समय समय पर चन्द्रगुप्त मौर्य, अशोक, समुद्रगुप्त, हर्ष , अलाउद्दीन खिलजी, शेरशाह और अकबर जैसे शासकों को भारत के बहुत बड़े भाग पर विजय प्राप्त करने में सफलता मिली । उन्होंने अपने विजित प्रदेशों में एक जैसी शासन व्यवस्था स्थापित की । उसके पश्चात् अंग्रेजों ने भारत के बहुत बड़े भाग पर अधिकार कर एक जैसा शासन प्रबन्ध स्थापित किया । इस प्रकार भारत में राजनीतिक एकता स्थापित रही ।

भारत के विभिन्न भागों में रहने वाले लोगों के सामाजिक जीवन में भी एकता के चिन्ह दृष्टिगोचर होते हैं । सबका रहन-सहन एवं रीतिरिवाज बहुत अधिक सीमा तक एक समान है । सगोत्र विवाह को किसी भी जाति में अच्छा नहीं समझा जाता । जन्म, विवाह तथा मृत्यु सम्बन्धी क्रियायें भारत में एक जैसी हैं । दीपावली, दशहरा एवं होली आदि त्योहारों को भारत के सभी भागों में हर्षोल्लास एवं उत्साह

१- दिनकर, रामधारी सिंह- संस्कृति के चार अध्याय, पृ०सं० ६५६ ।

के साथ मनाया जाता है ।

प्राचीन काल में भारत के निवासी एक जैसे आभूषण एवं वेशभूषा पहनते थे । भारत के सभी भागों में मनुष्यों के वस्त्र प्राय: कमीज, धोती पगड़ी में पहनते थे । दिल्ली बम्बई एवं कलकत्ता जैसे बड़े शहरों में एक जैसे होटल तथा रेस्टोरेन्ट हैं, जिनमें एक जैसा खाना मिलता है । प्रत्येक भारतीय पश्चिमी ढंग के कोट तथा पैन्ट पहनना गौरव का प्रतीक समझता है । इस प्रकार अंग्रेजों ने भारतीयों के सामाजिक जीवन में एकता स्थापित करने में महत्वपूर्ण योगदान किया है ।

यद्यपि भारतवर्ष में जैन धर्म, बौद्ध धर्म, हिन्दू धर्म ईसाई धर्म, इस्लाम धर्म आदि के अनुयायी निवास करते हैं । फिर भी उनमें एकता के चिन्ह देखने को मिलते हैं । इसका प्रमुख कारण यह है कि सभी धर्मों के सिद्धान्त हिन्दू धर्म से मिलते हैं । हिन्दू धर्म से ही अन्य धर्मों की उत्पत्ति हुई है । सभी धर्मों के दार्शनिक एवं नैतिक सिद्धान्तों में कोई विशेष अन्तर नहीं है । हिन्दू धर्म भारत का सबसे प्राचीन धर्म माना जाता है । ''भारत तथा हिन्दू धर्म का वास्तव में शरीर तथा आत्मा का सम्बन्ध रहा है ।''

भारत के विभिन्न भागों में रहने वाले सभी हिन्दू वेदों, उपनिषदों, रामायण एवं महाभारत आदि को पवित्र धार्मिक ग्रन्थ मानते हैं और ब्रह्मा, विष्णु शिव, राम , कृष्ण की एक जैसी पूजा करते हैं । गाय को भारत के सभी भागों में पवित्र जानवर माना जाता है तथा उसकी पूजा की जाती है । विष्णु पुराण में भारतवासियों को देवताओं से भी महान बताया गया है । उनमें इस देश के बारे में लिखा गया है कि 'यह भारतभूमि धन्य है जिसकी प्रशंसा के गीत देवता गाते हैं, यह भूमि स्वर्ग और अपवर्ग के समान बनी है जिस पर देवता भी मनुष्य के रूप में जन्म लेते हैं ।

यद्यपि भारत में विभिन्न भाषायें बोली जाती हैं । तथापि यहां की सबसे प्राचीन और पवित्र भाषा संस्कृत है । प्राचीन भारत का अमूल्य साहित्य एवं धार्मिक ग्रन्थ इसी भाषा में लिपिबद्ध हैं ।

आधुनिक समय में अंग्रेजी भाषा सम्पूर्ण भारतवर्ष की भाषा बन गई है । ब्रिटिश शासन काल में इसे सरकारी भाषा घोषित कर दिया गया एवं शिक्षा अंग्रेजी भाषा के माध्यम से दी जाने लगी । जिसके कारण यह भारत के प्रत्येक प्रदेश में लोकप्रिय हो गई । इस भाषा ने भारत में 'एकता स्थापित की एवं राष्ट्रीय चेतना जागृत की । स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात भारतीय संविधान के अनुसार हिन्दी को राष्ट्रभाषा घोषित किया गया है ।

प्राचीन काल में समस्त भारतवर्ष में प्रारम्भिक शिक्षा के केन्द्र स्कूल, मठ, मन्दिर एवं गुरुकुल थे । जहां पर विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करते थे । उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिये विद्यार्थी तक्षशिला, उज्जैन, मथुरा एवं नालन्दा आदि विश्व-विद्यालयों में जाते थे । इनमें वे सामान्य विषयों की शिक्षा प्राप्त करते थे ।

भारतवर्ष पर समय समय पर शक, हूण, कुषाण आदि विदेशी आक्रमण-कारियों ने आक्रमण किया । भारत ने इन विदेशी जातियों पर सांस्कृतिक विजय प्राप्त की और हमेशा के लिये उन्हें अपनी गोद में समा लिया । वर्तमान समय में भी भारतवर्ष में मुसलमान, ईसाई एवं पारसी जाति के अनेक व्यक्ति निवास करते हैं परन्तु उन पर हिन्दू वातावरण का प्रभाव स्पष्ट रूप से हमें देखने को मिलता है । रामधारी सिंह दिनकर ने लिखा है कि ''यद्यपि इस देश में विभिन्न धर्मानुयायी हैं किन्तु हिन्दू धर्म के केन्द्र से बाहर संस्कृति की जो विशाल परिधि है उसके भीतर बसने वाले सभी भारतीय समान हैं ।''[१]

१- दिनकर, रामधारी सिंह- संस्कृति के चार अध्याय , पृ०सं० ६५६ ।

इस प्रकार हमारे भारत में विभिन्न युगों में भिन्नताओं के होते हुये भी मौलिक एकता रही है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात भारत का विभाजन होने से यहां की मौलिक एकता समाप्त हो चुकी है। फिर भी अन्य कई सफलताओं के द्वारा भारत इस क्षति को पूरा करने में सफल हो चुका है। ब्रिटिश शासनकाल में भारतवर्ष में ६०० से भी अधिक छोटे छोटे स्वतन्त्र राज्य विद्यमान थे। स्वतन्त्र होने के पश्चात स्थाई रूप से भारत में इन राज्यों को सम्मिलित कर लिया गया है। इस कार्य से भारत में ऐसी राजनीतिक एकता स्थापित हुई जोकि भारत के इतिहास में किसी भी युग में प्राप्त नहीं हो सकी थी। केवल यही नहीं, नये संविधान के अनुसार समस्त भारतवर्ष में एक जैसी शासन व्यवस्था एवं एक जैसे नियम लागू किये गये हैं। यातायात के साधनों की उन्नति के कारण भारत की एकता को और अधिक बल मिला है। वर्तमान समय में समस्त भारतवर्ष में राष्ट्रीय भावनायें असाधारण रूप से जागृत हो चुकी हैं। आधुनिक भारत ने प्राचीन भारत से भी बढ़कर "विभिन्नता में एकता" का प्रमाण हमारे सामने रखा है।

कवि साहित्य सृष्टि का विधाता होता है । ''कविर्मनीषीपरिभू स्वयम्भू '' सम्पूर्ण व्यक्तित्व ही साहित्य मे कर्तव्य के रुप मे परिलक्षित होता है । काव्य जिस कवि प्रतिमा का अक्षुण्ण पराग होता है, कवि उसी सृष्टि का सृष्टा होता है । ''अपारेकाव्य संसारे कविरेव प्रजापति:'' आचार्य वर्धन (आनन्द वर्धन) इस वाक्य के द्वारा इसी ओर संकेत किया है । कवि की कलात्मकता एंव भावात्मक प्रतिभा का परिणाम ही काव्य की शक्ति है । कवि की विशिष्ट साधना के द्वारा लोक और शास्त्र का समन्वय काव्य मे सम्भव है अथवा नहीं । किसी कवि का जीवन वृत्त जान लेने के पश्चात ही उनके कृतित्व का सम्यक अध्ययन सम्भव है । क्योंकि कवि कितना ही विषयों से सम्बन्धित जानकारी प्रस्तुत करना चाहे किन्तु कवि के जीवन सम्बन्धी कुछ प्रसंग अवश्य ही कृतियों मे अनूदित हो जाया करते हैं । अत: पं० सोहन लाल द्विवेदी जी के कृतियों के अनुशीलन के पूर्व जीवन वृत्त का व्यापक अध्ययन आवश्यक है।

उनके जीवन वृत्त के अध्ययन हेतु द्विवेदीजी,उनके परिवार के सदस्य, उनके मित्रगण एवं विशिष्ट साहित्यकारों से मौखिक एवं लिखित वार्तालाप से कुछ जानकारी हो सकी तथा ''काव्य के इतिहास पुरुष'' मे कवि की जीवन - झांकी के कुछ दृश्य देखने को मिलते हैं ''एक कवि- एक देश'' मे उनके जीवन वृत्त का संक्षिप्त परिचय प्राप्त हो जाता है ।

वंश परिचय -

पं० सोहन लाल द्विवेदी का वंश परिचय उनके यहां से प्राप्त वंश वृक्ष से हो जाता है ।
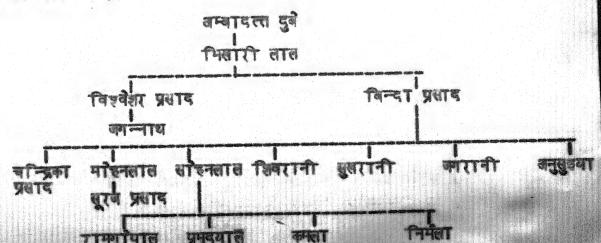
पिता की इकलौती सन्तान पं० भिखारी लाल दुबे फतेहपुर जनपद के सशक्त जमींदारों में से एक थे। उनकी जमींदारी ग्राम खिलौली, तहसील बिन्दकी जिला फतेहपुर में थी। इनका व्यक्तित्व बहुत ही प्रभावशाली था। सहृदयता के साथ २ वीरता भी कम न थी। द्विवेदी जी के पितामह के समय से ही उनके परिवार में वैभव सम्पन्नता एवं वीरता का मणिकांचन संयोग परिवार की एक विशेषता थी। सन् १८६० ई० के आस पास पं० भिखारी लाल दुबे ग्राम खिलौली से आकर बिन्दकी नगर में बस गये थे। वहां पर उन्होंने गल्ले की आढ़त का व्यापार प्रारम्भ कर दिया था। ''सर्वेगुणा: कान्चन माश्रयन्ति'' इस उक्ति के आधार पर इनकी प्रतिष्ठा उत्तरोत्तर बढ़ती गई। ये जमींदारी व्यापार के साथ २ समाज सेवी कार्यों में रुचि कम नहीं लेते थे। श्री भिखारी लाल दुबे सन् १९११ में काल के गाल में समा गये।

श्री भिखारी लाल अपने पीछे दो पुत्र छोड़ गये। बड़े पुत्र का नाम श्री विश्वेश्वर प्रसाद तथा छोटे का नाम श्री बिन्दा प्रसाद दुबे था। पं० बिन्दा प्रसाद दुबे व्यापार एवं जमींदारी के कार्य में सहयोग करते थे। तथा विश्वेश्वर प्रसाद दुबे कट्टर वैष्णव भक्त एवं बिन्दा प्रसाद दुबे भागवत भक्त। बिना दैनिक पूजन -पाठ सम्पन्न किये अन्न नहीं ग्रहण करते थे। बिन्दा प्रसाद जी दमा रोग से पीड़ित थे किन्तु जीवन पर्यन्त एलोपथिक दवाओं का सेवन नहीं किया। बिन्दकी नगर के माने हुये धनाढ्य गल्ला व्यापारी ही नहीं, एक प्रकार से माने हुये छत्रधारी राजा के समान थे। जनता के हृदय पर उनका शासन था। फौजदारी और दीवानी के न्यायाधीश की तरह छोटी बड़ी नागरिक समस्या का समाधान उनके बिना सम्भव नहीं था। वे कायरता के विरोधी थे। स्वत: अनुशासित होते हुये दूसरों को अनुशासित करने की कला उनमें विद्यमान थी। वे ऊपर से जितने कठोर थे, उनका अन्तस्तल उतना ही मृदु था। उनके राजसी ठाठ- बाट को देखकर जिले के अन्य जमींदार उनसे ईर्ष्या करते थे। उनकी शिक्षा - दीक्षा शून्य थी लेकिन अनुभवी होने के कारण

उनकी सूझ-बूझ से प्रेरित निर्णयों की ~~जिनकी~~ जिनमें प्रशंसा थी । श्री बिन्दा प्रसाद जी बांदा जनपद के गढ़ौला ग्राम में व्याहे थे । यह ग्राम यमुना नदी के किनारे ग्राम बारा -चंदबारा के समीप स्थित है । उनकी धर्मपत्नी का नाम श्रीमती पियारा देवी था । श्री बिन्दा प्रसाद जी सन, १६२० में पर-लोक सिधार गये । किन्तु ''एक कवि एक देश'' में उनका निधन १६१२ में होने का उल्लेख मिलता है, जो अशुद्ध है ।[१]

पं० सोहन लाल द्विवेदी जी के अग्रज श्री चन्द्रिका प्रसाद अल्पायु में ही सन् १६०६ ई० में स्वर्ग सिधार गये किन्तु (मझले) द्वितीय अग्रज पं० मोहन लाल दुबे अपने पिता जी के पद चिन्हों पर चलकर व्यापार एवं धनोपार्जन करने लगे । वे इतने धनाढ्य हो गये कि इनका परिवार बिन्दकी नगर के धनाढ्य परिवारों में सर्वोपरि गिना जाने लगा । उनकी आर्थिक सम्पन्नता को इंगित करने के लिये एक ही घटना का उल्लेख पर्याप्त होगा । घटना सन् १६२२ ई० की है । कानपुर के व्यापारी ने व्यापारिक वार्ता के मध्य बिन्दकी नगर के सट्टे के व्यापारियों के समक्ष यह शर्त रखी कि सौदा नकद चांदी के सिक्कों के माध्यम से होगा, कागज के नोटों से नहीं । सौदा २५ हजार रुपये का था । जिसकारण बिन्दकी के व्यापारीगणों को उलझन में पड़ जाना स्वाभाविक ही था तथा समस्या सुलझाने हेतु पं० मोहन लाल जी के समक्ष उपस्थित हुये । पं० मोहन लाल जी ने व्यापारी को अपने घर बुलाकर सौदा पक्का करते हुये पूंछा, ''आपको किस सन् के सिक्के चाहिये ?

१- एक कवि एक देश, पृ० सं० २६५ ।

पं० मोहन लाल जी वैष्णव भक्त थे । उनके द्वारा निर्माण कराया गया राधा कृष्ण मन्दिर इसका ज्वलन्त प्रमाण है । सभी धर्मों का आदर करना उनका स्वाभाविक गुण था । इसका प्रमाण मौलवी असगर अली को आर्थिक सहायता प्रदान कर उर्दू-फारसी शिक्षा के प्रचार एवं प्रसार की व्यवस्था है । उनके द्वारा संस्कृत पाठशाला की भी व्यवस्था की गई है जिससे हिन्दू छात्र संस्कृत का अध्ययन करते रहे हैं । 'सादा जीवन उच्च-विचार' के पोषक द्विवेदी जी आर्थिक सम्पन्नता के बावजूद अपने रहन-सहन को सादगी से परिपूरित कर रखा था । पं० मोहन लाल द्विवेदी पर ही संयुक्त परिवार को सुख-सुविधायें प्रदान करने का तथा अनुशासन बनाये रखने की जिम्मेदारी थी । उन्होंने कवि को महाकवि बनाने में कोई कसर नहीं उठा रखी । कवि की कला का विकासकाल पं० मोहन लाल जी के संरक्षण काल के अन्तर्गत आता है । "इन दोनों भाइयों का भ्रातत्व राम एवं भरत के सदृश्य रहा है ।"[1] पं० मोहन लाल जी की धर्मपत्नी का नाम श्रीमती शारदा देवी था जो बांदा जनपद के गोखरही नामक गांव की रहने वाली थी । श्रीमती शारदा देवी साक्षात लक्ष्मी के सदृश्य द्विवेदी परिवार में पदार्पण किया जिसके फलस्वरुप परिवार की आर्थिक सम्पन्नता उत्तरोत्तर बढ़ती गई । करुणा एवं दया उनके दो सहचर थे क्योंकि बिन्दकी नगर में करुणा एवं दया के अनेक कथानक प्रचलित हैं । सन् १९५७ में प्लेग की महामारी सदैव के लिये पं० मोहन लाल द्विवेदी जी को धरा से उठा ले गई ।

१- एक कवि एक देश, पृष्ठ सं० = १३५ ।

श्री सूरज प्रसाद दुबे ने अपने पिता पं० मोहन लाल द्विवेदी के मरणोपरान्त व्यवसाय, जमींदारी एवं पारिवारिक उत्तरदायित्वों का भार अपने कंधों पर ले लिया । इस समय तक द्विवेदी जी का अध्ययनकाल एवं वकालत की ट्रेनिंग भी समाप्त हो चुकी थी किन्तु स्वत: काव्य सर्जना में रत रहे तथा व्यापार एवं पारिवारिक उत्तरदायित्वों को भतीजे पर ही सौंपे रहे । पं० सूरज प्रसाद जी दुबे का विवाह कानपुर जनपद के ग्राम चौराईं में एक प्रतिष्ठित चतुर्वेदी जमींदार परिवार में हुआ था । उनकी धर्मपत्नी का नाम श्रीमती श्यामा दुलारी था । प्लेग महामारी ने अपने दूसरे प्रकोप के दौरान सन् १६४६ ई० में पं० सूरज प्रसाद जी दुबे को भी स्वर्ग भेज दिया ।

पं० सोहन जी द्विवेदी जी के दो पुत्र तथा दो पुत्रियां हैं । ज्येष्ठ पुत्र श्री राम गोपाल द्विवेदी जी हैं । इनका जन्म १६३१ ई० में हुआ था । ये नेहरु इण्टर कालेज बिन्दकी में हिन्दी के प्रवक्ता पद पर नियुक्त हैं । पिताजी की तरह इनकी भी रुचि साहित्यिक सर्जना में लगी है । इनकी ''ठंडाई बनी बड़े काम की'' कविता चर्चित रचना है । उनकी धर्मपत्नी का नाम श्रीमती प्रेमा देवी हैं । जो बिन्दकी नगर के ही प्रतिष्ठित कान्य-कुब्ज परिवार के पं० देवी प्रसाद जी की ज्येष्ठ सुपुत्री हैं । कवि के कनिष्ठ पुत्र श्री प्रभूदयाल द्विवेदी, जिनका जन्म सन् १६३४ ई० में हुआ था । इनका विवाह फतेहपुर के सुशिक्षित परिवार में श्री धर्मेश्वरी देवी से हुआ । साहित्यिक उत्तराधिकारी के रुप में श्री प्रभू दयाल जी ने उच्च कोटि की काव्य सर्जना की हैं । इनकी रचनायें विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में ''परिमल'' उपनाम से छपती रही है । कवि के साथ-२ ये दार्शनिक विचार धारा के भी

व्यक्ति हैं । द्विवेदी जी श्री प्रभुदयाल जी से विशेष स्नेह रखते हैं ।

द्विवेदी जी की दोनों पुत्रियां (ज्येष्ठ पुत्री कमला एवं कनिष्ठ निर्मला) सुखद वैवाहिक जीवन व्यतीत कर रही हैं । कनिष्ठ पुत्री निर्मला काव्य सर्जना की प्रतिभा से सम्पन्न है । उनके बालगीत पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं ।

कवि की जन्मतिथि :-

पं० सोहन लाल द्विवेदी का जन्म शुभ सम्वत् १९६२ फाल्गुन मासे शुभे शुक्ल पक्षे तिथौ अष्टम्याम् विक्रमी तदनुसार ४ मार्च सन् १९०६ ई० को प्रात: ४ बजे हुआ था । बिन्दकी के सुप्रसिद्ध ज्योतिषाचार्य पं० शिवबदन जी ने जन्म लग्न अंकित करते हुये लिखा था - "किसी योगी का योग भ्रष्ट हो जाने के कारण पुनर्जन्म हुआ है । यह बालक चक्रवर्ती सम्राट के समान प्रतिष्ठित होगा ।[1]

जन्मांक चक्रम्
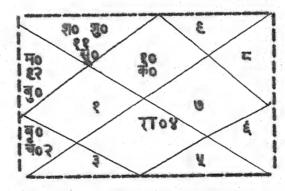
वैसे कवि की जन्मतिथि सभी राष्ट्रीयकृत पाठ्य पुस्तकों में ४ मार्च सन् १९०५ अंकित है । हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने भी सन् १९०५ ई० में द्विवेदी जी के जन्म होने का उल्लेख किया है ।[2] तथा "एक कवि एक देश" मे कवि की जन्म तिथि सन् १९०५ ई० ही अंकित है ।[3]

१- सोहन लाल द्विवेदी की जन्म पत्रिका का एक अंश ।
२- डा० नगेन्द्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास ।
३- 'एक कवि एक देश' पृष्ठ संख्या २९५।

इस अशुद्धि का द्विवेदी जी ने कभी खण्डन नहीं किया । डा० श्रीमती उर्मिला दीक्षित जी के द्वारा पूछे जाने पर आपने इस अशुद्धि का खण्डन क्यों नही किया है । द्विवेदी जी का उत्तर बड़ा ही विनोदपूर्ण था । "उन्होंने कहा कि मैं खण्डन क्यों करुं, इन लोगों ने मुझे बड़ा ही तो बनाया है, छोटा तो नहीं बनाया ।"[1]

जन्मतिथि भ्रान्तिपूर्ण है ही किन्तु २२ नवम्बर सन् १९७५ में द्विवेदी जी के आकस्मिक निधन का असत्य समाचार भी प्रकाशित हो गया था । इस घटना का चित्रण द्विवेदी जी के शब्दों में दृष्टव्य है :-

"मरने के बाद क्या होता है, किसने देखा है ? यह एक सत्य है, जो कहावत के रुप में प्रचलित है । किन्तु मरने के बाद क्या होता है, इसे मैंने देखा है । २२ नवम्बर सन् १९७५ को मेरी मृत्यु हो गई , मैंने स्वयं यह समाचार कानपुर में जागरण के प्रथम पृष्ठ पर प्रमुख स्थान पर पढ़ा, और आश्चर्य चकित रह गया । मैं तो स्वयं उसे पढ़कर हंसने लगा किन्तु जिनके यहां ठहरा था, वे मेरे अतिथेय बन्धु (कृष्ण कुमार शुक्ल प्राचार्य कान्यकुब्ज डिग्री कालेज कानपुर ने इस समाचार को साधारण रुप में स्वीकार नहीं किया । उन्होंने बड़ी सावधानी बरती और अविलम्ब उन्होंने कानपुर से मेरे घर बिन्दकी मे फोन द्वारा सूचना भिजवाई कि मैं पूर्णत: स्वस्थ हूँ । और जागरण में जो समाचार छपा है, बिल्कुल गलत है । उत्तर प्रदेश शासन से यह निर्देश भी प्राप्त हुआ कि अन्त्येष्टि संस्कार राजकीय सम्मान के साथ होना है और मुख्य मंत्री श्री बहुगुणा जी का वायरलेस भी आया कि वे स्वयं अन्त्येष्ठि क्रिया में सम्मिलित होने आ रहे हैं ।"[2]

१- सोहन लाल द्विवेदी राष्ट्रीय चेतना तथा बालकाव्य के विशेष सन्दर्भ,पृ०१० ।
२- कवि की डायरी के पृष्ठ संख्या दि० २०-५-१९७६ ।

पितृभूमि :-

द्विवेदी जी की पितृभूमि फतेहपुर जनपद में स्थित ग्राम खिजौली है यह एक बड़ा गांव है, जहां छोटे -२ गांव जुड़े हुये हैं तथा यमुना नदी के किनारे स्थित है। इनके पितामह जी ने विशाल मन्दिर कुंआ तथा अतिथियों के लिये अलग से ठहरने का स्थान बनवाया था जो आज भी अपनी शानी शौकत के साथ खड़े हैं। दीवारों में चूने का गारा है लेकिन उनकी पुलिश आज भी संगमरमर के समान चमक रही है। मुख्य भवन के अलावा चहार दीवारी के अन्दर अश्वशाला, रथशाला, गोशाला आदि भिन्न-भिन्न विशाल कक्ष बने हैं। गगनांगन को चूमने वाला मुख्य भवन का ऊपरी भाग मीलों दूर से परिलक्षित होने लगता है। "पितृभूमि" नामक शीर्षक कविता में द्विवेदी जी ने "खिजौली" का वर्णन सविस्तार किया है। "जिसके प्राची में है परिचित, चिररिन्द नदी का एक कूल जिसके करील कानन कुंजों में, खिलते हैं रंगून फूल, बहती है मारुति मंद मंद, लेकर वन सुमनों की सुगन्ध जिसके रस को पी प्राणों में, छा जाता विस्मृति का मरंद, पश्चिम में लहराती यमुना, लेकर अतीत की धुंधिललाम, वह मेरी पावन पितृभूमि, वह ग्राम खिजौली है प्रकाम यह वन प्रान्तर का खुला ग्राम है यहां प्रकृति करती किलोल अमृत से भी बढ़कर जल है, है वायु लिये जीवन अमोल उसके प्रांगण में अब भी नाहे, चीते, भालू और बाघ, टहला करते निर्भय होकर, जैसे हो उनका भ्रमण बाग है यही पूर्वजों का निवास, है यही दुर्ग सा बड़ा धाम, वह मेरी पावन पितृभूमि, यह ग्राम खिजौली है प्रकाम। यह धवल धाम जो कभी खड़ा था, बनकर वन में राजद्वार, प्राची पश्चिम उत्तर दक्खिन, जिसकी सीमायें हैं अपार सर्वोच्च धाम जो खड़ा ग्राम में, लेकर ऊंचे श्रृंग शिखर, अब भी दिखलाई पड़ती, मीलों से जिसकी उच्चता निखर, अब भी गर्वित करती रहती,

जिसकी अतीत की कथा काम, यह मेरी पावन पितृ भूमि यह ग्राम सिजौली है प्रकाम। वह राजद्वार अब नहीं, नहीं अब शेष रहा है सिंहद्वार, ध्वंसावशेष अब भी फिर भी, करता रहता रह रह पुकार, अवशेष ग्राम की प्राचीरों में, अमर आज भी गत गौरव, शिवजी के मन्दिर में अंकित, मुकुत है शिल्पकला वैभव, वह दर्शनीय देवालय लेता सदा पथिक के चरण थाम। यह मेरी पावन पितृ भूमि, यह ग्राम सिजौली है प्रकाम।''

जन्म स्थान :-

वेणु नगरी जो कालान्तर में बिन्दकी नाम से विख्यात हुई। व्यापारिक मण्डी के रूप के प्रदेश में इसका प्रमुख स्थान रहा है। इस नगर की भौगोलिक तथा पौराणिक स्थिति देखिये - गंगा और यमुना के मध्य-वर्ती भूभाग पर स्थित है। उत्तर प्रदेश के फतेहपुर जनपद की बिन्दकी तहसील मुख्यालय है। राजा वेणु की पावन नगरी को द्विवेदी जी की जन्मभूमि होने का गौरव प्राप्त है। अतीत में इस नगरी में राजा वेणु की दरबारी वीणायें बजती रहीं, कालान्तर वही राष्ट्र प्रेम की सर्वाधिक यशस्विनी वीणा भैरवी रूप में बदल गई। ''जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'' इस उक्ति को सार्थकता दर्शाते हुये कवि देश के जिस कोने में हों दीपावली के शुभ अवसर पर पधारकर दीप अवश्य जलाते हैं।

नामकरण :-

हिन्दी साहित्य के महान आलोचक कवि का बचपन का नाम लक्ष्मीकान्त बताया जाता है। इनके जन्म वर्ष में व्यापार के द्वारा प्रचुर अर्थ लाभ हुआ, इसी कारण से इनके पितामह द्वारा इनका नाम लक्ष्मीकान्त रखा गया। इनके अग्रज का नाम मोहन लाल था अस्तु ''लक्ष्मीकान्त'' सोहन लाल में बदल गये। वंश परम्परा के अनुसार इनके नाम के अन्त में दुबे जुड़ गया। कक्षा ८ के अध्ययन वर्ष में 'दुबे' बदल कर द्विवेदी हो गया फलस्वरूप कवि का नाम सोहन लाल

दुबे के स्थान पर सोहन लाल द्विवेदी हो गया । इसके बावजूद काव्य सर्जन काल में किसी उपनाम को ग्रहण नहीं किया ।

जाति, गोत्र एवं धर्म :-

कान्य कुब्ज ब्राह्मण परिवार के (दुबे) द्विवेदी उपजाति में कवि का जन्म हुआ । इनका गोत्र "कात्यायन" है ।

राष्ट्र धर्म को सर्वोपरि समझते हुये वंश परम्परागत वैष्णव धर्म को भी स्वीकार किया । हनुमान जी के प्रति उनकी अनन्य निष्ठा धार्मिक प्रवृत्ति का सूचक है । पं० मोहन लाल जी नित्य-प्रति हनुमान चालीसा का पाठ किया करते थे । 'कवि' धार्मिक संस्कारों से चेतना ग्रहण कर साहित्यिक क्षेत्र में उतरे हैं ।

पितृत्व एवं मातृत्व :-

पं० विन्दा प्रसाद दुबे अपने व्यवसाय को सुचारु रुप से चलाते हुये पं० सोहन लाल पर सुचारु रुप से दृष्टि रखते थे । इनका अनुशासन परिवार तथा इनके लिये बहुत ही कठोर था । ये 'कवि' जी को एक कुशल प्रशासक बनाने का स्वप्न साकार करना चाहते थे । कवि ने स्वयं अपने पिता जी के कठोर अनुशासन की प्रशंसा करते हुये लिखा है :-

"पिता जी थे तो दुबले पतले सांस की बीमारी थी पर थे तो बहुत दबंग । उनकी आवाज में ओज था । जो बात कहते थे जोर देकर , जिसका प्रभाव पड़ता था । धार्मिक इतने कि बिना पूजन के भोजन नहीं । मरते-मरते मर गये परन्तु डाक्टरी दवा नहीं खाई कि धर्म नष्ट हो जायेगा । उनकी बड़ी धाक थी । पिता की मृत्यु कब हुई और कैसे हुई ठीक से याद नहीं ।" [1]

१- कवि की डायरी के पृष्ठ से ।

द्विवेदी जी की मां भी धर्म के अनुकूल कार्य करने वाली दया की सागर थीं साथ-२ नम्रता और मृदुभाषिता उनका आभूषण था । इनके जन्म के पूर्व नेत्ररोग से पीड़ित होकर इन्होंने नेत्र दृष्टि खो दी थी । द्विवेदी जी अपनी अंधी मां को बहुत प्यार करते थे । मां के वात्सल्य के प्रति द्विवेदी जी ने अपनी बाल कविताओं में किया है । सन् १६४२ ई० में पक्षाघात के रोग से पीड़ित होकर स्वर्ग सिधार गईं इनकी मृत्यु के समय द्विवेदी जी इनके निकट थे । अपनी डायरी के पृष्ठों में मां की मृत्यु का विवरण इस प्रकार है :-

''माता की मृत्यु तो बिल्कुल आंखों के सामने तस्वीर है चलती फिरती । मां की मृत्यु को निकट से देखने का समय- छटपटाहट, लकवा, पीने का पानी मांगते-२ मृत्यु । मैं पानी न दे सका, इसका बडा खेद है । मरना था तो मर जातीं, चीनी तो मिल जाता । अब पछताये होत क्या जब चिड़ियां चुग गईं खेत । मेरा मन मुझे कभी भी जनम-जनम तक इसके लिये क्षमा न करेगा । सोचता हूं , ऐसी नियति थी । वे बच जायें , इसलिये पानी नहीं दिया जा रहा था । अवचेतन में स्थित इस विचार ने ही मुझे निर्मम बनाया था ।''

मां की मृत्यु का दृश्य कवि को अच्छी प्रकार स्मरण है क्योंकि मां को पानी न दे सकना उनके हृदय पर टीस सी बनी हुई है । कवि के भाव मां के प्रति 'मेरीमाता' नामक शीर्षक में उभरे हैं ।

बाल्यकाल :-

'कवि' को पिता जी बहुत स्नेह करते थे क्योंकि वे सबसे छोटे पुत्र थे । पं० मोहन लाल जी की धर्मपत्नी द्वारा उनका पालन-पोषण किया गया क्योंकि माता जी दृष्टिविहीन थी । द्विवेदी जी हाथ पैर व कमर में सोने चांदी के आभूषण, गोईंना, कड़ा तथा करधनी पांच वर्ष तक की आयु में पहनते थे । सिर पर गोटे की टोपी तथा रेशमी वस्त्र धारण करना विशेष प्रिय थे । नेत्रों की सुन्दरता के लिये काजल तथा मस्तक में चन्दन लगाते थे । इनकी भाभी

शुद्ध देशी घी की बनी जलेबी एवं दूध बहुत ही विनय भाव से इन्हें खाने को देती थी । इतत: बाल्यकाल का आभूषण है अस्तु द्विवेदी जी में यह गुण विद्यमान था परम्परागत कर्ण-भेदन एवं मुण्डन संस्कारों में विशेष आयोजन किये गये थे । इनका बाल्यकाल किसी राजघराने के राजकुमार की तरह बीता यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी ।

विवाह :-

१६२१ में १५ वर्ष की आयु में ही द्विवेदी जी का विवाह १२ वर्षीया राम प्यारी के साथ बड़ी धूमधाम से सम्पन्न हुआ था । राम प्यारी के पिता श्री पं० भैयादीन शुक्ल उत्तर प्रदेश के बांदा जनपद के बललेरा गांव के निवासी थे ये तत्कालीन डिप्टीकलेक्टर के पेशकार थे । दूल्हे के रुप में रेशमी वस्त्र एवं स्वर्ण आभूषण धारण करा रखा था परन्तु "द्विवेदी जी द्वारा विवाह के समय रेशमी राजसी वस्त्र पहनने से इन्कार कर खदर धारण करने का उल्लेख मिलता है ।"[१] १६२१ ई० तक खादी का आन्दोलन प्रारम्भ हो चुका था । इस समय अपने अग्रज के इच्छा के विरुद्ध कार्य करना तत्कालीन शासन के विरुद्ध समझा जाता था । अस्तु 'कवि' पं० मोहन लाल जी की इच्छा के विरुद्ध कार्य नहीं कर सके । वैसे द्विवेदी जी ने विवाह के पश्चात् ही खदर धारण करना प्रारम्भ किया इसका साक्ष्य इनकी पत्नी जी है । अनुशासित एवं संयमित रुप से द्विवेदी जी का दाम्पत्य जीवन बीता । ये परदा प्रथा के विशेष अनुयायी थे । इनकी धर्म-पत्नी कहा करती थी कि "किसी कवि की जीवन संगिनी होना स्त्री के लिये सबसे कठोर दण्ड है ।"

शिक्षा :-

सन् १६११ ई० में पुरोहित द्वारा पाटी पूजन एवं विद्यारम्भ

१- अमर बहादुर सिंह अमरेश: काव्य के इतिहास पुरुष सं० १६७१ पृ०सं०-१० ।

कराये जाने का संकेत द्विवेदी जी की डायरी के पृष्ठ पर अंकित है।[1] हिन्दी के साथ उर्दू और मुड़िया भी पढ़ते थे। चूंकि उस समय अदालत में उर्दू भाषा का प्रयोग किया जाता था इसलिये जमींदारी का कार्यभार सम्भालने के लिये उर्दू भाषा जानना आवश्यक था। पं० भगवती प्रसाद तिवारी जी द्वारा हिन्दी की प्रारम्भिक शिक्षा दी गई तथा जाने माने शायर असगर अली ने उर्दू की शिक्षा दी थी तथा 'भैया जू' ने मुड़िया की। सन् १९१४ तक इन भाषाओं का ज्ञान करने के बाद अल्पायु ही में अपने आढ़त की दुकान में बही खाता का काम करने लगे। किन्तु शिक्षा के प्रति विशेष रुचि होने के कारण माडल स्कूल में शिक्षा ग्रहण करने हेतु उनके पिता जी ने प्रवेश दिला दिया, किन्तु कुछ माह पश्चात् इन्होंने पढ़ना बन्द कर दिया। तथा मार्तण्ड विद्यालय बिन्दकी की कक्षा में जुलाई सन् १९१५ ई० में प्रवेश लेकर कक्षा -६ की परीक्षा १९२१ में उत्तीर्ण किया। इनके अग्रज इनकी शिक्षा बन्द कराके घर के कारबार में सहयोग देने का आग्रह किया। किन्तु शिक्षा के प्रति विशेष लगाव देखकर इनके अग्रज ने इनको जुलाई सन् १९२१ में एग्लो संस्कृत विद्यालय फतेहपुर की कक्षा ७ में प्रवेश दिलाया गया। वहां से जून १९२२ में जूनियर हाई स्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली। राजकीय इण्टर कालेज फतेहपुर में जुलाई १९२२ में कक्षा ९ में प्रवेश लेकर जून १९२६ में हिन्दी साहित्य के अतिरिक्त संस्कृत साहित्य के साथ हाई स्कूल परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके पश्चात् विश्वविद्यालयबनारस विश्वविद्यालय में इण्टर-मीडिएट प्रथम वर्ष में प्रवेश लिया। ये विश्वविद्यालय के समीप सुन्दरपुर निवासी

१- कवि की डायरी के पृष्ठ से।

श्री सुन्दर लाल के एक कमरे में रहते थे । जून १६२६ में स्नातक की उपाधि प्राप्त कर ली । स्नातक उपाधि के पश्चात् पं० मोहन लाल जी बार-एट- ला की उपाधि प्राप्त करने हेतु इन्हें विलायत भेजना चाहते थे तथा विदेश यात्रा का प्रबन्ध करने लगे जब पं० मदन मोहन मालवीय जी को यह सूचना मिली तो उन्होंने उन्हें बुलाकर कहा कि - ''जो देश संसार का गुरु रहा हो, उस देश के निवासी विलायत में शिक्षा क्या ग्रहण करेंगे स्वयं अंग्रेज बन जायेंगे । मैं ही कब विलायत गया हूं , तुम जो कुछ यहां हो वहां जाने पर न रह जाओगे । विलायत जाने का विचार त्याग दो ।''[१] पं० मदन मोहन मालवीय की आज्ञानुसार विलायत न जाकर इलाहाबाद विश्वविद्यालय में वकालत पढ़ने लगे । वकालत पढ़ने के साथ-२ राजनैतिक क्षेत्र में रुचि लेने लगे जिसके परिणामस्वरूप ये शिक्षा के क्षेत्र में उदासीन से हो गये । मालवीय जी की प्रेरणा से इन्होंने वाराणसी में जुलाई सन् १६३१ से लेकर जून सन् १६३४ ई० तक एम० ए० और एल० एल० बी० दोनों उपाधियां प्राप्त कर ली ।

पं० मदन मोहन मालवीय के आदर्श का अनुगमन करके पं० सोहन लाल द्विवेदी एक सफल अध्यापक बनना चाहते थे । इनकी मनोकामना कवि बनने की नहीं थी किन्तु काव्य सर्जना का कार्य करते रहे । फलत: सफल कवि के रूप में इनकी प्रतिष्ठा समाज में हो गयी । अध्यापक बनने का सपना साकार नहीं हो सका जिसके कारण उनके मन में क्षोभ व्याप्त है उनके ही शब्दों में -

''मैं जीवन की सबसे आश्चर्य जनक घटना है कि मैं जो न बनना चाहता था, बन गया और जो बनना चाहता था न बन सका । समाज में मेरी

१- कवि की डायरी के पृष्ठों से -

प्रतिष्ठा कवि के रूप में होगी मैंने कभी इसकी कल्पना भी नहीं की थी, न कभी इसकी चेष्टा की। मेरी आकांक्षा थी, किसी विश्वविद्यालय में प्राध्यापक होता, जहां मुझे अध्ययन का और अध्यापन का आनन्द मिलता और आज के भारत के अभिनव कर्णधारों के चरित्र निर्माण में अपना योगदान देता।[१]

शिक्षा प्राप्त करने के बाद आप फतेहपुर आ गये किन्तु वकालत की ट्रेनिंग पूर्ण कर लेने के बाद आपने वकालत करना पसन्द नहीं किया।

सामाजिक, सांस्कृतिक एवं रचनात्मक कार्य

मातृभूमि की सेवा की भावना से द्विवेदी जी ने वकालत से वैराग्य ले लिया। वे गांधी और गांधी-दर्शन से इतना प्रभावित थे कि वे बापू जी के आह्वान पर राष्ट्र के प्रति अपना सर्वस्व देश के प्रति अर्पण कर देना चाहते थे यही भावनासेवकालत के व्यवसाय के बन्धन में नहीं फंसे।

सन् १६३६ – १६४३ तक जिला परिषद फतेहपुर के सदस्य के रूप में परिषद को लाभान्वित कराते रहे। सन् १६६४ में नगर पालिका बिन्दकी के अध्यक्ष चुने गये। अपने कार्यकाल में बिन्दकी का चतुर्दिक विकास किया। स्वभावत: द्विवेदी जी स्वच्छन्दचारी व्यक्ति हैं। अस्तु राजनीतिक कार्यकलापों को एक बन्धन ही समझकर पुन: किसी नागरिक पद के लिये प्रत्याशी नहीं बने।

द्विवेदी जी बालकों से अधिक स्नेह करते थे इसलिये उन्होंने ऐसे रचनात्मक कार्यों में कोई कसर नहीं उठा रक्खी जिनके द्वारा देश के भावी कर्णधारों में देश के प्रति अच्छे संस्कारों का अंकुरण हो इसी भावना को लेकर 'शिशु भारती' मान्टेसरी स्कूल की स्थापना बिन्दकी नगर में की। इस विद्यालय की व्यवस्था के लिये वे आजन्म प्रयत्नशील रहने का संकल्प लिया है।

१– कवि के डायरी के पृष्ठ से

इतना ही नहीं बालकों के प्रति स्नेह की भावना से उन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में अनेक महत्वपूर्ण कार्य किया है। बिन्दकी नगर में बालकों के लिये इण्टर कालेज की व्यवस्था है ही बालिकाओं की शिक्षा के लिये इन्होने राजकीय इण्टर कालेज की स्थापना कराई। इस विद्यालय का नामकरण ''पं०सोहनलाल द्विवेदी राजकीय बालिका इण्टर कालेज'' उत्तर प्रदेश शासन के द्वारा किया गया जिसके द्वारा द्विवेदी जी की रचनात्मक कार्यों की मान्यता प्रादेशिक सरकार के द्वारा भी मिलती है।

बालकों में नई चेतना जागृत हो इस उद्देश्य से आपने सन् १९५७ से १९६७ तक इण्डियन प्रेस इलाहाबाद से प्रकाशित होने वाली ''बालसखा'' मासिक के सम्पादन का कार्य बड़ी कुशलता पूर्वक किया। सन् १९३८ ई० से सन् १९४४ तक लखनऊ से प्रकाशित होने वाले प्रथम राष्ट्रीय हिन्दी दैनिक ''अधिकार के सम्पादन का कार्य करने हेतु आपने लखनऊ ही में निवास किया। राष्ट्रपिता बापू जी की हीरक जयन्ती के अवसर पर आपने १९४४ ई० में ''गान्धी अभिनन्दन ग्रन्थ'' का सम्पादन तथा प्रकाशित करके पूज्य बापू को समर्पित किया। इसके साथ ही १००००/- का चेक महादेव देसाई स्मारक के लिये पूज्य बापू को समर्पित किया। सन् १९४२ ई० में आपने पूज्य बापू से प्रथम साक्षात्कार वर्धा में किया था। इस साक्षात्कार के संस्मरण द्विवेदी जी आज भी सुनाया करते हैं। जीवन के उत्तरार्द्ध में आपने बिन्दकी नगर में रहकर अपने को सामाजिक सांस्कृतिक एवं रचनात्मक कार्यों में तत्पर है। अपनी मान्यताओं को विशिष्ट रूप देकर समाज में किसी न किसी रूप से प्रतिष्ठित होने वाले कवियों में एक हैं।

द्विवेदी जी ने अपनी मान-सम्मान को ध्यान न दिया बल्कि उनकी साहित्यिक एवं सामाजिक सेवाओं के द्वारा विभिन्न संस्थाओं एवं राजनैतिक सत्ता द्वारा उन्हें समय-२ पर सम्मानित किया गया है। इस बात की पुष्टि के लिये द्विवेदी जी की पंक्तियां देखिये -

''मुझे नहीं है लोभ , राज्य के वरदानी वरदान का ,
मुझे नहीं है लोभ , राज्य के सम्मानी सम्मान का ,
मैं जनता का साथी हूं , मैं कवि हिन्दुस्तान का ।

द्विवेदी जी को अभिनन्दनों, दी गई उपाधियों एवं प्राप्त पुरस्कारों का विवरण निम्नवत है :-

- १९६२ में भारत सरकार द्वारा नैपाल को प्रेषित शिष्ट मण्डल का नेतृत्व किया ।
- १९६८ में कानपुर की सांस्कृतिक संस्था ''कला वलय'' द्वारा अभिनन्दन और ताम्रपत्र प्रदान किया गया ।
- १९६८ में उत्तर प्रदेश गान्धी शताब्दी समिति के सदस्य मनोनीत किये गये ।
- १९६८ में ही हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रतापगढ़ द्वारा विशिष्ट अभिनन्दन पत्र द्वारा सम्मानित हुये ।
- १९६९ में राजस्थान विद्यापीठ उदयपुर द्वारा सर्वोत्तम उपाधि ''साहित्य चूड़ामणि'' से विभूषित किया गया । कुलपति श्री हरिभाऊ उपाध्याय ने प्रशस्ति पत्र भी प्रदान किया ।
- १९६९ में ही हिन्दी दिवस के अवसर पर उत्तर प्रदेश के उपशिक्षा निदेशक श्री भगवती प्रसाद सक्लानी द्वारा आयोजित विशेष समारोह में पं० बनारसी दास चतुर्वेदी पं० श्री नारायण चतुर्वेदी एवं डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा सम्पादित ग्रन्थ ''एक कवि एक देश'' आपको समर्पित किया गया ।
- १९७० में गणतन्त्र दिवस पर राष्ट्रपति द्वारा ''पद्मश्री'' के अलंकरण से विभूषित किया गया ।

१- सोहन लाल द्विवेदी एक कवि एक देश पृष्ठ- २२९ ।

- १९७२ में साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा ''साहित्य वारिधि'' की उपाधि से अलंकृत किया गया ।

- १९७५ में कानपुर विश्वविद्यालय द्वारा डी०लिट० की मानक उपाधि से अलंकृत किया गया ।

- १९७५ में उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा बाल साहित्य पर घोषित प्रथम पुरस्कार रु० ५,०००/- का प्रदान किया गया ।

- १९७६ में उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा दीर्घकालीन हिन्दी सेवाओं के लिये रु० १५,०००/- की धनराशि विशेष पुरस्कार के रुप में प्रदान की गई ।

- १९७६ में कानपुर की साहित्यिक व सांस्कृतिक संस्था ''कलाभारती'' के द्वारा ''कलापंडित'' की उपाधि से अलंकृत किया गया ।

- १९८१ में कलकत्ता की विवेक साहित्यिक संस्था द्वारा रु० १०,०००/- का पुरस्कार प्रदान किया गया ।

- १९८३ अक्टूबर में बम्बई के चौपाटी के रामलीला मैदान में आयोजित विशेष समारोह में अभिनन्दन एवं मान-पत्र भेंट किया गया ।

काव्य के प्रेरणास्त्रोत :-

द्विवेदी जी को व्यक्ति का वातावरण या सौन्दर्य बोध,अपना राष्ट्रीय-चेतना से काव्य प्रेरणा मिली निष्कर्ष रुप में पहुंचना जटिल है । किन्तु उनकी कविताओं का अनुशीलन करने से ज्ञात होता है कि उनका प्रेरणास्त्रोत राष्ट्रीयता से ओतप्रोत वातावरण ही प्रतीत होता है । काशी विश्वविद्यालय में आप ''राणाप्रताप'' विषयक कविता द्वारा प्रथम बार में ही कवि के रुप में प्रतिष्ठित हुये उससे यह सिद्ध होता है कि आपकी काव्य प्रेरणा का स्त्रोत पराधीन

युग की चीखती हुई वह अतुल अभिव्यक्ति है जिसमें 'भैरवी' का कवि जागृत होता है। द्विवेदी जी ने महामना मालवीय जी, गांधी जी जैसे युग द्रष्टा मनीषियों से प्रेरणा ली है। गणेश शंकर बाजपेयी अशोधर फतेहपुर निवासी दयाशंकर शुक्ल शंकर परिवार के पड़ोसी तथा झण्डागीत के गायक श्यामलाल पार्षद से प्रभावित हुये। बाल्मीकि की कविता का प्रथम छन्द क्रौंची के विरह पीड़ा को सुनकर जगा। फतेहपुर जनपद के बाबू बंश गोपाल जी के जेल यात्रा से वापस आने पर द्विवेदी जी की कविता का प्रथम स्वर फूटा। इस प्रकार आपने भले ही व्यक्तियों से प्रेरणा ग्रहण की हो किन्तु आपके काव्य की मुख्य प्रेरक वृत्ति स्वाधीन चेतना ही है।

सम्बन्ध वृत्त :-

द्विवेदी जी का सम्पर्क क्षेत्र बहुत ही व्यापक है। सम्बन्ध भावना भी उतनी ही सघन एवं सौजन्यतापूर्ण है। राष्ट्रीय स्तर पर आपके सम्बन्ध अनेक साहित्यकारों, कवियों, लेखकों, पत्रकारों एवं राजनीतिज्ञों से रहा है।

कृतित्व :-

"कविता करना अनन्त पुण्यों का फल है।[1]" अस्तु पूर्वजन्म के अभिनव संस्कारों के विशुद्धीकरण के रूप में कवि भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में राष्ट्रीय प्रहरी के रूप में अवतरित हुये, आपने अपने बाल्यकाल से ही "[2]माता का आंचल ललकारो, हड़ताल करो हड़ताल करो।[2]" इन गगनभेदी नारों से फतेहपुर

१- जयशंकर प्रसाद : स्कन्द गुप्त।
२- सन् १६२१ में "प्रिन्स आफ वेल्स" के भारत आगमन पर रचित सोहन लाल द्विवेदी की कविता की पंक्ति।

की गलियों को गुंजाने वाला बालक सोहन लाल अपने बाल्यकाल से ही भारतवासियों में देश प्रेम जगाने का कार्य निरन्तर करता रहा है तथा आज भी उनमें वही उन्मेष तथा जोश दिखाई दे रहा है। यद्यपि आपका प्रचुर साहित्य प्रकाशित हो चुका है। फिर भी बहुत सा कृतित्व उनकी पुस्तिकाओं और पन्नों में अनेक रूप में अप्रकाशित पड़ा है।

आपकी प्रतिभा बहुमुखी है यद्यपि आपने साहित्य की एक विधा काव्य पर ही लेखनी चलाई। फिर भी पत्रकारिता के आप विशेष प्रेमी रहे। दैनिक पत्र के सम्पादन का कार्य विशेष कुशलता से किया।

आपकी प्रकाशित रचनाएं निम्नवत है।

काव्य :- (१) किसान १६६० (?)
(२) भैरवी १६४१
(३) वासवदत्ता १६४२
(४) पूजागीत १६४३
(५) चित्रा १६४३
(६) वासन्ती १६४३
(७) कुणाल? युगाधार १६४४
(८) प्रभाती १६४४
(९) सेवाग्राम १६४६
(१०) चेतना १६४८
(११) कुनाल? १६५४
(१२) जयगान्धी १६५६
(१३) गान्धायन १६६९
(१४) मुक्तिगंधा १६७३
(१५) तुलसीदल १६८०

बालकाव्य :- [१] दूध बताशा १६३०
[२] पांच कहानियां १६४०

।३। सात कहानियां १९५०

।४। मोदक १९५०

।५। बिगुल १९४४

।६। शिशु भारती १९४९

।७। बाल भारती १९५३

।८। झरना १९५३

।९। बच्चों के बापू १९५६

।१०। बांसुरी १९५७

।११। हंसो हंसाओ १९६०

।१२। नेहरू चाचा १९६३

।१३। देश कहानियां १९६३

।१४। शिशुगीत १९६९

।१५। यह मेरा हिन्दुस्तान है १९७२

।१६। तितलीरानी १९७४

।१७। सुनो कहानी १९७५

।१८। हुआ सबेरा उठो-२ १९७६

।१९। एक गुलाब १९७६

।२०। हम बालवीर १९७७

।२१। गौरवगीत १९७७

।२२। बालसिपाही १९७७

।२३। गीत भारती १९७९

खण्डकाव्य:- /१/ कुणाल १९४२

/२/ विषपान १९४६

पद्यानुवाद:- मोहमुद्गर १९२२

सम्पादित कृतियां- १-गांधी अभिनन्दन ग्रन्थ १९४४

२-गांधी शतदल - १९६९

प्रकाशनाधीन कृतियां- १- नयनिका

२- कचदेवयानी

२-ब- रवीन्द्र नाथ टैगोर ने गीतांजलि में भगवान को किसान के साथ परिश्रम करते हुये वर्णन कर पूजा भजन को व्यर्थ बताया है। उसी प्रकार कवि ने सम्पूर्ण राष्ट्र को किसान के सबल कन्धों पर ही आधारित माना है। मस्जिद और मन्दिरों की पवित्रता, मानव का ईमान, जप-तप व्रत-पूजा -ध्यान-ज्ञान किसान की ही मेहनत पर आधारित हैं। द्विवेदी जी ने कवि के रूप में कृषक की इसी क्षमता को स्पष्ट रूप से देखा है :-

''ये मन्दिर, मस्जिद, गिरजाघर
पादरी, मौलवी , पंडितवर
ये मठ, विहार, गद्दी गुरुवर
भिक्षुक, स्नि सन्यासी यती प्रवर
जप-तप, व्रत-पूजा, ज्ञान- ध्यान,
रोजा-नमाज, वहदत अजान,
ये धर्मकर्म दीनों इमान,
पोथी पुराण, कलमा कुरान,
वह तेरी दौलत पर किसान।''[1]

कवि ने सुधारवाद, अहिंसात्मक क्रान्ति को साहित्यिक रूप देकर हृदयग्राही बना दिया है कवि ने वैसे तो गान्धी वादता को बढ़ावा के साथ-२ राष्ट्रप्रेम विषयक कविताओं से देशवासियों में राष्ट्र के लिये बलिदान होने को प्रेरित करने वाली कवि की ये कवितायें देखिये -२

''वन्दना के इन स्वरों में एक स्वर मेरा मिला लो।''[2]

यह गीत सम्पूर्ण राष्ट्र में गाया जाने वाला गीत है। युवा

१- सोहन लाल द्विवेदी किसान सन-१९४०, पृष्ठ सं० १४।

२- सोहन लाल द्विवेदी भैरवी सन् -१९५१, पृष्ठ सं०- ।

पीढ़ी में उत्सर्ग की भावना जागरित करता है दूसरी ओर कवि की ओर से व्यक्त उत्सर्ग झलकता है । जो सम्पूर्ण देश के भाव को भी एक नई दिशा प्रदान करता है ।

कवि का हृदय भारत मां की परतन्त्रता के साथ देश की कोटि-२ दुर्दशाग्रस्त जनता की स्थितियों से भी दुखित है - उनकी यह रचना देखिये -

"निखिल सृष्टि को भस्म करेगी,
  इन आखिरों की मौन कहानी ।
तुम कहते हो गीत सुनाऊँ ,
  आज रुद्ध है मेरी वाणी ।।"[१]

राष्ट्रीय जागरण का मूल स्वर कवि की 'भैरवी' में साकार बन बैठा है श्री 'सुमित्रा नन्दन पन्त जी' के शब्दों में "राष्ट्रीय जागरण के इस प्रभात में मैं 'भैरवी के कोमल प्राणपदों का मुक्त हृदय से स्वागत करता हूं ।"[२] द्विवेदी जी ने आर्थिक विषमताओं से पीड़ित शोषित, दलित जनता के आंसुओं से नम रचनाओं में आक्रोश और क्षोभ व्यक्त किया है - "राष्ट्र की विपन्न जनता के प्रति सहानुभूतिवश पिघलित इन आंसुओं को "गाँवों में, झोपड़ियों की ओर, विषमता, आज रुद्ध है मेरी वाणी" में अच्छी तरह निहारा जा सकता है ।"[३]

"चाहे जितना ही छोटा हो प्राणी जग में ,
कर सकता वह भी उपकार बड़ों के संग में ।"

इस तथ्य को परीक्षित करके कवि ने वासव दत्ता नामक कृति में जिस कार्य को महानृप, महासेठ, महाधनिक नहीं कर पाये उसे महाभिक्षु और

१- सोहन लाल द्विवेदी भैरवी सन १९५१ पृष्ठ सं० १०६ ।
२- सोहन लाल द्विवेदी भैरवी सन् १९५१ मत और सम्मतियां पृष्ठ- ६ ।
३- एक कवि एक देश, पृष्ठ सं० २५४ ।

भिक्षुकी मिलकर पूरा कर सकने में सफल होंगे इस सन्तोष से महाभिक्षु का अन्तर्मन प्रशान्त हो जाता है -

> ''निर्धनता ही धन मेरा
> उसी से करूँगी मैं क्षुधित जनत्राण,
> महाभिक्षु थे प्रशान्त
> करुण कान्त:
> जीतें तुम आओ साथ
> मिल गई भिक्षा मुझे
> मेरे हुये चार हाथ।''[1]

'' भैरवी का गायक कवि को जिस दिशा में लिये जा रहा था वह 'वासवदत्ता' में गौतम बुद्ध के गृहत्याग के समय का चित्रण कर कवि एक ऐसे मनोभूमि पर ले जाकर खड़ा कर देते हैं जहां व्यक्ति परमहंस (समष्टि) में विलीन होता दिखाई देता है। सांसारिक सुखों को तिलांजलि देकर गौतम बुद्ध अपनी आत्मा की आवाज पर प्राणिमात्र के हितार्थ (गन्तव्य की ओर) चल देते हैं। गौतमबुद्ध के आत्म-बोध के लिये गृह-त्याग ''महाभिनिष्क्रमण'' के रूप में कवि ने दर्शाया है। एक ओर शव-यात्रा, वृद्ध का जर्जर शरीर, कुष्ठ गलित देहधारी मानव के चित्रण सजीव हो उठे हैं। दूसरी ओर पिताजी का विशाल राज्य, मृगनयनी राजरानी, सुकुमार राज कुमार, माता-पिता, पुरजन, परिजन। सारथी का संवाद दृष्टव्य है जो दार्शनिक मनोभावों को पैदा करता है :-

> ''यही परम सत्य है,
> यही परम तथ्य है,
> गौतम तुम्हें भी कभी

१- सोहन लाल द्विवेदी वासवदत्ता सन् १६५६, पृष्ठ सं० ६० ।

२- सोहन लाल द्विवेदी वासवदत्ता सन् १६५६, पृष्ठ सं०-६७ ।

भोगना है गति सभी,

तरुण-तरुण हो अभी,

उससे जान सकते

विश्व का रहस्य न भी।''[1]

कवि ने राष्ट्रीय तत्व के साथ-२ उन रचनाओं को भी दिया है जिससे समाज तथा राष्ट्र के मेरु-दण्ड को भी सीधा रख सके इसकी पुष्टि के लिये कवि स्वयं 'वासवदत्ता' के आमुख में कहा है -

''वासवदत्ता के कवि का पक्ष है कि देश स्वतन्त्र तो होगा ही इसमें सन्देह कैसा ? कवि से आशा की जाती है कि वह देश को आजादी के ही गीत न दे किन्तु वे रचनायें भी दे जो उसके समाज, जाति राष्ट्र के मेरुदण्ड आदर्श को सीधा रख सके। यदि देश स्वतन्त्र भी हो गया किन्तु उसका आदर्श,सभ्यता संस्कृति, नैतिक पृष्ठभूमि पुष्ट नहीं है, तो वह जाति अधिक दिनअपने पावों पर खड़ी नहीं रह सकती, युग ने जो करवट बदला है, भैरवी उसका राज नैतिक पक्ष है,''वासवदत्ता''''सांस्कृतिक''। एक शरीर है तो दूसरी आत्मा जिसके समन्वय से ही मानवता की प्रतिष्ठा सम्भव है।''[2]

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने वासवदत्ता के आकर्षण एवं सौन्दर्य से प्रभावित होकर लिखा है -

''वासवदत्ता में प्रेम और कर्तव्य तथा आदर्शों के द्वन्द के कई प्रसंगों को चुनकर लिखी कवितायें मिलती हैं वासवदत्ता की भांति इनमें से भी अनेक प्रसंगों

१- सोहन लाल द्विवेदी वासवदत्ता सन् १९५६ पृष्ठ सं० -६७।

२- सोहन लाल द्विवेदी वासवदत्ता सन् १९५६ आमुख।

पर कविवर रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने लिखा है - - - - पर इसमें सन्देह नहीं कि सोहन लाल जी की लेखनी ने इन प्रसंगों को पर्याप्त आकर्षक एवं सुन्दर बनाया है।''[१]

'वासवदत्ता' में कवि ने शिवत्व को प्राप्त किया डा० सत्येन्द्र के शब्दों में - ''वासवदत्ता श्रृंगार की आधारशिला पर निर्मित उत्साह, ओज एवं आत्म-निग्रह का सुसंगठित मन्दिर है इसमें पूत भावनाओं की पूजा होती है।''[२]

कवि के गीतों में अन्तसकी झलक मिलती है - उनकी दृष्टि वाङ्मय से हटकर आत्मस्थ हो गई है। कवि अन्तर्मुखी वृत्ति का उपासक बनकर प्रस्तुत कविताओं में प्रचार से अधिक प्रकर्ष भाव पैदा करता है। डा०केशरी नारायण शुक्ल के अनुसार ''उसके गीतों में सम्वेदना है, सच्चाई है और उसके बीच कवि के अन्तस की झलक भी मिल जाती है। इन गीतों की सच्चाई में कवि का आत्मीय राग भी मिला है। इसी में पूजा गीत की प्रभावात्मकता और कृतित्व का रहस्य है।''[३]

देश के जागरण के गीत ''जनगण'' ''जवानी'' आदि गीत देश के जागरण के साथ-२ आत्म-जागरण के लिये भी सचेष्ट हैं। 'पूजागीत' की इक्कीसवीं कविता का कुछ अंश उदाहरणार्थ प्रस्तुत है :-

> ''अरे
> आज कवि । जग ।
> त्याग अन्त:पुर निरत
> ये जा रहे हैं कौन डग ?''[४]

कवि देश वासियों को देश के प्रति समर्पित कर देने की कर्तव्य भावना पैदा करता है। पराधीनता से भारत मां को मुक्त कराने के लिये कवि गा रहा है-

---

१- एक कवि एक देश पृष्ठ सं० २५७।
२- एक कविएक देश पृष्ठ सं० २६०।
३- वही पृष्ठ सं० - २६६।
४- सोहन लाल द्विवेदी पूजा गीत सं० १९५६ पृष्ठ सं०४८।

"आई फिर आहुति की बेला
बैठो गृह में नहीं प्रवासी
छोड़ो मन की सभी उदासी
जननी की कातर पुकार पर
करो नहीं अवहेला ,
आई फिर आहुति की बेला ।"[१]

कवि ने निम्न पद में नवयुवकों का आह्वान किया है -

"आज तुम किस ओर ?
उधर अत्याचार की है
रक्तमय तलवार
इधर जननी के चरण में
जन्मशत बलिहार ,
आज बल की ओर तुम ,
या आज बलि की ओर ?
आज तुम किस ओर ?"[२]

कवि मां भारती की शरण में जाना चाहता है उनकी अन्तस भावना देखिये -

"देवता तुम राष्ट्र के क्या भेंट
चरणों में चढ़ाऊं ?"

\+ \+ \+ \+

"मां चरण में शरण पाकर
आमरण मंगल मनाऊं ।"[३]

कवि के हृदय की राष्ट्रीय भावना, मातृ पूजा, युग की पुकार और देश के जागरण कृति में उभरी है । उनके हृदय में प्रेम और कर्तव्य का, विलास

१- सोहन लाल द्विवेदी, पूजागीत सं० १९५९, पृ०सं० -६८ ।

२- सोहन लाल द्विवेदी, पूजागीत सं० १९५९, पृ०सं० -५४ ।

३- वही पृष्ठ सं०-५८ ।

और बलि का द्वन्द पैदा होता है। इस कृति में भावात्मकता और कलात्मकता के साथ-२ आशावादिता का समन्वय मिलता है। कलात्मक दृष्टि से इस कृति की रचनाओं में भाषा की प्रौढ़ता, प्रभाव और प्रवाह साथ-२ सहजता का सौन्दर्य दृष्टव्य है। जनजागरण के गीतों में ''जाग। सोये देश।'' ''अब जागोगे किस उषा में'' ''ओ हठीले। जाग।'' ''जाग जनगण'' ''जागो जग में मंगल प्रभात'' ''आज सोये प्राण जागें'' ''जय जय जागृत हे'' आदि कवितायें श्रेष्ठ हैं।

भैरवी, वासवदत्ता, 'पूजागीत' में कवि ने देश को जागृत किया है वही कवि 'चित्रा' में वह जीवन में, जीवन के प्यार में, प्यार की गुहार में शाश्वत सत्य की खोज करता प्रतीत होता है। प्रस्तुत कृति में कवि मातृ-भू के सौन्दर्य के स्थान पर 'पन्त' को मौन निमंत्रण देने वाली प्राकृतिक सौन्दर्य पर दृष्टि पात करता है। कवि ने अपने कोमल स्वरों में मधुर संगीत गायन 'चित्रा' में प्रस्तुत करता है ''आओ कर लो क्षण भर विराम'' कहकर अपने पास कुछ पल बिताने का आह्वान किया है। पीयूष वर्षाणी निर्झरणी से द्विवेदी जी का कवि याचना करता है -

''अपने ही जैसा कर दो यह
मेरा मानस भी सरस सरल,
कोमल-कोमल, निर्मल-निर्मल,
उज्जवल-उज्जवल, शीतल-शीतल।''[१]

आलोच्य कवि को पारलौकिक, लौकिक, बाह्य एवं मानसिक सौन्दर्य प्रस्तुत कृति में प्रसंगानुसार प्रभावित करता है। चतुर्दिक सौन्दर्य में वह

१- सोहन लाल द्विवेदी 'चित्रा' सं० पंचम पृष्ठ सं०-५।

आत्मीयता के दर्शन करता है तथा उसमें विद्यमान पावन सौन्दर्य कवि के अन्तर्नैयों को आकर्षित कर लेता है कवि "ग्राम-वधू" में इसी सौन्दर्य को पाया है। पन्त ने "ग्राम-वधू में त्रिवेणी का गान सुना है तो द्विवेदी जी ने ग्राम-देवि के अन्तस्तल में अपनत्व के दर्शन किये हैं और मुग्ध हुये हैं -

"वह ग्राम-वधू वह ग्राम- बाल
अपना पन से है भरा हृदय ,
वह ग्राम जननि वह ग्राम देवि,
वह मूल-प्यास कर लेती हाय।"[1]

भावात्मक अनुभूति को चरम सीमा तक पहुंचाने वाली 'चित्रा' में प्रस्तुत 'आगमन' कविता है। प्रस्तुत कृति में सौन्दर्य चित्रण में कामना का उद्दाम परिलक्षित होता है परन्तु कहीं-२ वह रुप अमर्यादित हो उठता है। तृष्णा का अतृप्त रुप दिखाई देता है कि कण्ठ सूखने लगता है। इस कृति के अन्तिम दो गीत गौतम बुद्ध की स्मृति में लिखे गये सुन्दर गीत हैं। कवि बोधिवृक्ष से जानना चाहता है -

"तुम कौन छिपाने व्यथा हृदय में
खड़े यहां कानन वासी ?
किसलिये उदासी छायी है
किसलिये बन गये सन्यासी ?"[2]

समाज में व्याप्त हिंसा, शोषण एवं कटुता आदि को देखकर कवि दुखित है। इन सब बुराइयों को दूर करने हेतु गौतम बुद्ध का आवाहन करते हुये कहता है -

"आओ एक बार फिर आओ
लाओ वह मंगल दिन लाओ
गाओ वह करुणालय गाओ।"[3]

१- सोहन लाल द्विवेदी चित्रा सं० पंचम पृष्ठ सं० ९० ।
२- सोहन लाल द्विवेदी चित्रा सं० पंचम पृष्ठ सं० ८८ ।
३- सोहन लाल द्विवेदी चित्रा सं० पंचम पृष्ठ सं० ८६ ।

कवि संसार को नश्वर समझता है तथा ''तुलसीदास'' नामक कविता में रामचरित के पावन अमर्त्य का प्रति पादन करता है। कवि बासंती में यौवन की प्र उत्फुल्लता का पक्ष प्रतिपादित कर छायावादी भाव-भूमि पर उतरा है। कवि की मधुर सुकुमार कल्पनाओं के प्रतीक के रूप में ''बासन्ती'' पैदा हुई कवि की याचना द्रष्टव्य है -

''कोमल बाहुलता फैलाओ ,
स्नेहालिंगन कुंज बनाओ ,
जीवन के पतझर में सबको ,
मधुऋतु पड़े दिखाई ।
मधुकर आज बसंत बधाई ।''[१]

क्योंकि -

''जिस दिन तुम आये प्राण पास ।
+ + + +
तब से पतझर में खिले फूल ।।''[२]

'बासन्ती में' प्रेम भावना की संकीर्णता एवं अश्लीलता आदि साहित्यिक दोष सर्वथा लुप्त है। बल्कि प्रेम के चित्रण के साथ-२ प्रकृति चित्रण का मणिकांचन संयोग दृष्टि गोचर होता है। 'अमरेश' जी के शब्दों में -

''बासन्ती का कवि सौन्दर्य के माध्यम से जीवन और प्रकृति का मूल्यांकन करने वाला एक पावन कवि है जिसकी वासना, कामना एवं भावना, कल्पना की अतल गहराई में खो गई है और उसे बसन्त की बासन्ती आभा ही सर्वत्र दिखाई देती है।'' डा० केसरी नारायण शुक्ल के शब्दों में -

'' बासन्ती में भावों की बसन्ती सुषमा की सजावट और सौन्दर्य है।''

१- सोहन लाल द्विवेदी बासन्ती सं० १९९१ पृ० सं० २ ।

२- वही पृष्ठ सं० १०४ ।

द्विवेदी जी की स्वानुभूति और आत्मचिन्तन कलात्मक परिवेश में वासन्ती है। इस कृति में विशेष प्रियगीत निम्न है -

(अ) "तुम शकुन्तला सी कौन
सींचती हो यह किसकी फुलवारी"[1]

(ब) "अब कहीं पतझर नहीं है।
पत्र पीले सभी टूटे
धरा के ज्यों केश छूटे।"[2]

(स) "नयनों की रेशम डोरी से,
मत गूँथो मेरा हीरक मन,
अपनी कोमल बरजोरी से।"[3]

सुभाष बाबू के गृह-त्याग के समय लिखी गई महाभिनिष्क्रमण कविता की ये पंक्तियां हृदयविदीर्ण करने वाली है -

"लौट आओ ओ छबीले
जन्मभूमि तुम्हें बुलाती,
लौट आओ लाड़ले, रूठे
तुम्हें जननी मनाती।"[4]

मैथली शरण गुप्त की जेल-यात्रा के समय कवि समूचे परतन्त्र भारत को कारागार मानता है उनकी ये पंक्तियां देखिये -

"बाहर हम क्या हैं?
सारा भारत है कारागार
क्याकह सकते भी जी के हम
अपने मुक्त विचार।"[5]

१- सोहन लाल द्विवेदी वासन्ती सं० १९५१ पृ०सं० १६१।
२- वही पृष्ठ सं० ९५।
३- सोहन लाल द्विवेदी वासन्ती सं० १९५१ पृ०सं० ३३।
४- ,, ,, युगाधार सं० १९५१ पृ०सं० १०४।
५- वही, पृष्ठ सं० २०४।

स्वतन्त्रता की नौका की पतवार ''दीनबन्धु'' ऐन्डूज के प्रति नामक कविता में ''दीनबन्धु'' को कहा है कवि का यह कथन भारतीय संस्कारों के गौरव के गान की पुनरावृत्ति है। 'कार्लमार्क्स के प्रति' नामक कविता में कवि ने मार्क्सवादी विचारधारा के प्रति श्रद्धा व्यक्त की है। ''साप्ताहिक भारत'' में कृति की समीक्षा प्रस्तुत की गई है। जिसमें कवि को मात्र गांधी-वादी चारण कहे जाने का विरोध किया है। इस विरोध के तथ्य में कवि ने सुभाष्ण बाबू और कार्लमार्क्स के प्रति उनकी कविताओं को उद्धत किया है। यद्यपि उनका केन्द्र बिन्दु महात्मा गांधी हैं किन्तु राजनैतिक चेतना का काव्य 'युगाधार' को कहना उचित -

''युगाधार में युग की राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सामाजिक जन क्रान्तियों की चिनगारियां। कैसे कहूं ? - धूम्र रेखायें हैं।'' ''आत्म बोध'' कविता में हिन्दू- मुस्लिम एकता पर लिखी गई अद्वितीय कविता है। 'बेतवा का सत्याग्रह' एक सत्य घटना का जीवन्त चित्रण है।

२-ख- द्विवेदी जी की कविताओं का मूल प्रयोजन राष्ट्रीय भावनाओं की रचना एवं गान्धी वादी अहिंसक समाज की रचना करता है। ''गांधी'', ''सेवाग्राम,'' 'ऐतिहासिक आवास'', 'व्रत समाप्ति,' 'और 'गांधी-तीर्थ'' या ''भंगी बस्ती'' गांधी जी के प्रति हैं, ''गांधी मन्दिर'' कविता बिहार के मंजूभगत के प्रति, लाहौर कांग्रेस में सभापति चुने जाने पर ''जवाहर'' नामक कविता में दोनों नेताओं का चरित्र चित्रण किया है।

ये पंक्तियां दृष्टव्य हैं -

"फिर भी क्या आयेगा वह दिन
गत होगा अन्तर -अंधकार ?
ये बैठेंगे मिल एक साथ ,
बनकर स्वदेश के सूत्रधार ।"[1]

श्री हरिऔध के लखनऊ आगमन पर "स्वागत" गीत कवि की गुरुभक्ति का द्योतक है :-

"गोमती के भाग्य पर
करती स्पृहा है गंगधारा ,
अवध ही की गोद में ही
अवध का हरि है पधारा ।"[2]

प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के आगरा अधिवेशन पर लिखित स्वागतगीत इनकी कृति 'प्रभाती' में अंकित है एक समीक्षक की दृष्टि में -

"प्रभाती में युग के प्रभात का मधुर स्वागतगान है । कवि छवि के बंधनों में न उलझकर संसार को आँखें खोलकर देखना चाहता है ।"[3]

कवि की दार्शनिक विचार धारा "भावों की रानी" में द्रष्टव्य है -

"तुम जगद्धात्रि । जग कल्याणी
तुम महाशक्ति । साँचो क्या हो,
कविते । केवल तुम नहीं अशु
जीवन में जय की आत्मा हो ।"[4]

स्वतन्त्रता प्राप्ति का उल्लास, विश्वबन्धुत्व एवं राष्ट्रीय चेतना, बलिदानी भावना, कर्तव्य की व्यंजना राष्ट्रपिता गांधी की हत्या से उत्पन्न

१- सोहन लाल द्विवेदी प्रभाती सं० १६६१ पृ०सं० ८३ ।
२- देशदूत १० फरवरी सन् १६४६ ।
३- सोहन लाल द्विवेदी प्रभाती सं० १६६१, पृ०सं० ६५ ।
४- सोहन लाल द्विवेदी प्रभाती सं० १६६१, पृ०सं० २ ।

शोक आदि का मार्मिक चित्रण कवि ने चेतना में प्रस्तुत किया है। राष्ट्रीयता का सुन्दर विस्तार परिलक्षित हुआ है। स्वराज्य से देश में अपूर्व उल्लास उमड़ा है। स्वतन्त्रता की अगवानी में स्वागत-गीत प्रस्तुत किया है।

"साज लो सितार तार
आ रही स्वतन्त्रता
बाजे सरगम बहार ।
आ रही स्वतन्त्रता ।"[1]

सम्पूर्ण देश से कवि मंगलगीत गुनगुनाने का अनुरोध करता है यह कहकर -

"गाओ मंगल गीत रागिनी"

अहिंसा को सुख-समृद्धि, सहिष्णुता, शान्ति की उपलब्धि का एक मात्र साधन मानता है। इस कथन की पुष्टि श्रद्धांजलि नामक कविता में हुई है। लेकिन अन्याय एवं अत्याचार के विरोध में वे अहिंसा को कायरता मानते हैं। 'तरुणाई का तकाजा' शीर्षक में इस कथन की उदाहरण है -

"तरुणाई का आज तकाजा मां-बहनों की लाज जहां,
लूट रहे हों अत्याचारी, निर्जन पाकर आज जहां।
हिंसा और अहिंसा की, चर्चा करने का समय नहीं,
सधवा का सिन्दूर दूर होने के पहले जूझ वहीं ।।"[2]

कांग्रेस के विरुद्ध हिन्दू महासभा के सत्याग्रह करने पर रचित एवं सामयिक एवं प्रभावशाली रचना "असमय संघर्ष" है।

"अखण्ड ज्योति" में स्वतन्त्र भारत की कामना साकार हुई है - उदाहरण दृष्टव्य है -

"झांकी देख अलौकिक मां की
रवि-शशि भी बन जाये धनी
जगे अखण्ड ज्योति अपनी ।"[3]

१- सोहन लाल द्विवेदी चेतना सं० १६४८, पृ०सं० २७।
२- वही पृ०सं० १८।
३- सोहन लाल द्विवेदी चेतना सं० १६४८ पृ० सं० -२४।

'देवदूत' गांधी की हत्या पर लिखी गई कविता प्रभावशाली कविता है।

"महानिर्वाण" शीर्षककविता में बापू के महाप्रमाण की तुलना राम, कृष्ण, युधिष्ठिर, सुकरात, ईशा, मंसूर और गौतम बुद्ध के निर्वाण से की है। कवि का "उद्बोधन" हिम्मत न हारने की संदेश देता है। इस संकट की घड़ी में -

"हिम्मत हार न मेरे देश।
सच है तेरे उठे महात्मा,
सच है आज न वह पुण्यात्मा,
प्राण-प्राण में किन्तु,
उसी की प्रतिमा बनी अशेष,
हिम्मत न हार मेरे देश।"[1]

गांधी जी के अतिरिक्त सरदार वल्लभ भाई पटेल एवं राजर्षि टण्डन को काव्यांजलि समर्पित करने वाली दो कवितायें हैं।

कवि ने सांस्कृतिक तत्वों का प्रयोजन एवं दिशा को इस तरह घुमाया है कि पाठक प्रकृति से प्रेम करने लगे पन्त की तरह कोमल पदावली में प्रकृति चित्रण की यह कविता देखिये -

"सरस सरसों के सुन्दर- खेत,
बने शोभा के स्वर्ण निकेत,
नवल पल्लव के कोमल डाल,
महकते बौरे हुये रसाल।"[2]

कवि भारतीय नारी को सुसंस्कृत समझता है। पति-व्रत का अनुसरण वाली नारी दरिद्रता की अवस्था में भी सद्विचारों को संजाये रहती है। कवि हृदय इसी तथ्य की पुष्टि करता हुआ कहता है कि -

"रांगे की काली बिछियों में
पति के सुहाग के भावों में
है अपना हिन्दुस्तान कहां
वह बसा हमारे गावों में।"[3]

१- वही पृष्ठ - ४६।
२- सोहन लाल द्विवेदी सुजाता पृ०सं० - ६।
३- भैरवी सोहन लाल द्विवेदी भैरवी सं० चतुर्थ पृ०सं० १२।

कवि नारी समाज को पति-व्रत धर्म के पालन करने की दिशा में अग्रसर करना चाहता है साथ ही साथ देश की आजादी के लिये भी नारियां कुर्बानी के लिये हमेशा तैयार रहती हैं -

> चल पड़ी बहन, चल पड़े बन्धु ,
> चल पड़ी जननि, चल पड़े पुत्र ,
> पति चले चली पत्नी उनकी ,
> जुड़ गया स्नेह का सरस सूत्र ।''[१]

'पथ' एवं 'दूर्वा' कविता में कवि के भाव लोक की व्यापकता है । 'बहिन के प्रति' कविता में कवि की प्रगाढ़ता परिलक्षित हुई है 'यमुना के प्रति', 'सीता के प्रति' ''बुजरव'' में कवि का दृष्टिकोण ही साकार हुआ है । बौद्धकालीन आस्था पर आधारित 'सुजाता' नामक संकलन की रचनायें हैं । कवि ने नये बुद्ध की कामना'' की है ताकि देश को फिर से एक नई दिशा मिल सके । ''गौतमी'' ''अम्ब

गांधी दर्शन का प्रणेता कवि गांधी पर महाकाव्य लिखने की इच्छा मन में संजोये हुये है । ''जय गांधी'' की रचनाओं के बारे में स्वयं कवि ने लिखा है -

''जब तक उस महाकाव्य की अवतारणा नहीं होती तब तक ये रचनायें यदि उसकी भूमिका का भी कार्य सम्पादन कर सके तो मैं अपने आपको कृतार्थ मानूंगा ।''

२ अक्टूबर, १९५६ ई० को गान्धी-जयन्ती के शुभ अवसर पर 'जय-गांधी' नामक संकलन का प्रकाशन किया जिसमें ''वीर सुभाष चन्द्र'' कविता राष्ट्रीय भावनाओं को समुन्नत करने वाली है कविता की चार पंक्तियां देखिये -

---

१- भैरवी वही पृष्ठ - ७३ ।

''चमको राष्ट्र गगन मण्डल में
चूमें चरण सिन्धु तेरे ,
मेरे वीर सुभाष चन्द्र ,
सौभाग्य चन्द्र बन जा मेरे ।''[1]

''मुक्तिगंधा'' की कविताओं में युग चेता कवि की सर्जनात्मकता के बहुरंगी आयाम उजागर हुये हैं । इन रचनाओं में जहां राष्ट्रीय तेजस्विता और मनस्विता का अभिनन्दन और अभिषेक है, वहीं विषम स्थितियां - परिस्थितियों पर सीधी सच्ची और बेलौस चोट भी है । इसलिये कहा भी जा सकता है कि ''मुक्तिगंधा'' की कवितायें न केवल कवि की अभिव्यक्ति हैं । बल्कि इनमें आत्मीयता से अभिभूत तथा अन्तर्मन की सहानुभूति से उपजी जन मानस की प्राणवान अभिव्यक्ति भी है ।''[2]

द्विवेदी जी ने ग्रन्थ के पुरोवाक में लिखा है -

''स्वातन्त्र्योत्तर काल में देश जिन आर्थिक,सामाजिक तथा राजनैतिक गतिविधियों के मोड़ से गुजरा है, जनता पर जो उसकी प्रतिक्रिया हुई है, उसकी मानसिक आशा, निराशा, आकांक्षा, आक्रोश के भाव साकार होकर आपसे साक्षात् -कार करना चाहते हैं ।''[3]

लखनऊ दूरदर्शन केन्द्र से कवि द्वारा किये जाने पर हिन्दी साहित्यकार पं० श्री नारायन चतुर्वेदी जी ने कहा है -

''युग बोध कराने वाली ऐसी सशक्त कविता लिखना तो सोहन लाल के ही बूते है ।'' कविता की प्रारम्भिक चार पंक्तियां देखिये -

''अब न गहरी नींद में तुम सो सकोगे,
गीत गाकर मैं जगाने आ रहा हूं ।

१- सोहन लाल द्विवेदी जय गांधी सं० १९५६ पृ० सं० ६० ।
२- सोहन लाल द्विवेदी मुक्तिगंधा सं० १९७२ पृ०सं० १ ।
३- वही पृष्ठ सं० २ ।

अटल अस्ता चल तुम्हें जाने न दूंगा ,
अरुण उदया चल सजाने आ रहा हूं।''[1]

''झण्डे फहराने वालों'' तथा 'दिल्ली दरबार' की कविताओं में कवि का आत्मबल एवं निर्भीक स्वर में क्रान्तिकारी भावना सामने उपस्थित कर दी है - उनकी ये पंक्तियां देखिये -

''गर मानोगे तुम ऐसे नहीं मनाने से, जैसे मानोगे वैसे तुम्हें मनाऊंगा।''

+ + + + + +

''मदहोश हुये गर सिंहासन में बैठ-बैठ, नीचे उतारकर तुम्हें होश में लाऊंगा।''

+ + + + + +

''पीछे झण्डा फहराना ऐ झण्डा वालों , पहले जवाब दो मेरे चन्द सवालों का

'अभियान गीत' 'जागते रहो' 'सीमान्त के पहरूए' 'वीर सैनिकों' 'सावधान ओ देश-वासियों' तथा 'नई फसलें' कवितायें ''जागते रहो' अध्याय के अन्तर्गत हैं। भारत- पाकिस्तान युद्ध के परिणामस्वरूप उत्पन्न अन्न संकट से निपटने के लिये 'नई फसलें' कविता से प्रेरणा मिली है। रचना की प्रभावकता निम्न पंक्तियों में देखिये-

''जवानों ने उबलते रक्त की सब्दी खाद है जिसमें ,
किसानों। अब वहीं तुमको नई फसलें उगाना है।''[3]

'गांधी दर्शन' 'संकल्प' 'नोआखाली में गांधी', 'वामन अवतार' 'अशोक के प्रति', 'पेशवा शिवा', 'शान्ति दूत शास्त्री', 'सीमान्त गांधी के प्रति', 'निराला के प्रति' एवं 'राष्ट्र देवता' ये कवितायें अभिवादन खण्ड के अन्तर्गत हैं। इन कविताओं

१- सोहन लाल द्विवेदी मुक्तिगंगा सं० १९७२ पृष्ठ सं० ३।
२- वही पृष्ठ सं० ३६।
३- वही पृष्ठ सं० ७२।

में राष्ट्रनायकों का अभिवादन किया गया है तथा श्रद्धासुमन भी अर्पित किये गये हैं। "शान्ति दूत शास्त्री" की निम्न कविता देखिये -

"वह अशोक का पुत्र समर का विजयी योधा,
शान्ति चक्र का धर्म प्रवर्तक शान्ति पुरोधा।
उठा धरा से शिखर पहुंच आकाश बन गया,
धरा देखती रही पुत्र इतिहास बन गया।"[1]

'अदात चन्दन' के अन्तर्गत 'रजत वर्षा' 'अदात चन्दन' 'युगबोध अभिशप्त' एवं 'यह कैसा जनतन्त्र'? ये चार कवितायें संकलित हैं। 'रजत वर्षा' कविता स्वतन्त्रता की रजत-जयंती पर लिखी गई कविता है। 'अदात चन्दन' बंगला देश के नवोदयन पर रची गई है। युग बोध अभिशप्त कविता में "सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, सर्वे सन्तु निरामया: का भारतीय दर्शन उभरा है। 'मुक्तिगन्धा' की अन्तिम कविता राजनीति में व्याप्त भाई-भतीजा वाद के विरुद्ध रची गई है। परिणामत: 'मुक्तिगंधा' में राष्ट्रीय चेतना को वाणी मिली है।

२-ब- द्विवेदी जी का सांस्कृतिक प्रयोजन, देश से भाई भतीजा वाद को दूर करके एक ऐसे समाज की स्थापना करना है जिसमें सभी अपने कर्तव्यों के प्रतिनिष्ठा उसी प्रकार रखकर अपने देश को गौरवान्वित करते रहें। जिस प्रकार राजा हरिश्चन्द्र ने 'मरघट' में अपने पुत्र की लाश को बिना कर चुकाये नहीं जलाने दिया जिसके फलस्वरूप उनकी कीर्ति-पताका दिग्-दिगन्त में आज भी गूंज रही है। कवि अपने गन्तव्य में सफल होती प्रतीत होता है :-

बच्चों के हृदय में देश-प्रेम जागृत करने और देश के लिये कुछ कर दिखाने के संकल्प को 'बिगुल' संग्रह में व्यक्त किया है। पुस्तक के आमुख में द्विवेदी जी ने लिखा है -"भारत का भविष्य इन्हीं नन्हें कर्णधारों के हाथों में है, अतएव हमें

१- सोहन लाल द्विवेदी मुक्तिगन्धा सं० १९७२ पृ०सं० ६५।

उन्हें ऐसी पाठ्य-सामग्री देना है, जिससे वे इस महान दायित्व का निर्वाह करने में समर्थ बनें।"

बच्चों में उच्च-भावना जागृत करने के लिये उन्होंने इस संकल्प में कविता का क्रम इस प्रकार रखा -

गांधी, भारत की ध्वजा उड़ायेंगे, यह भारत वर्ष हमारा है।

हिमालय, भारत का ध्यान, भारत, उन वीरों की जय-जयकार चरखा प्यारा, खदर, बापू, होनहार बालक, अपने बच्चे से कोरसगीत, आगे आओ तुम अपनी ध्वनि के पीछे - चल, तुम बढ़ो अकेले ही आगे, तब तक पल भर आराम न लो, प्रयाणगीत, माता के लाल कहाओ तुम, उदबोधन, लो सारी दुनियां को नाप, तुम भारत की सन्तान बनो, कहां, अगर कहीं मैं तोता होता, कवि की आकांक्षा, घर और बाहर और नहीं चाहता हिमगिरि बनकर, सरल भाषा में तथा गेय छन्दों में उत्साह, उमंग, साहस, शक्ति तथा देशभक्ति का नया रक्त संचारित करने वाला यह संकलन मनोरंजन के साथ-२ देश-प्रेम की छाप बच्चों पर छोड़ती है। यथा -

नहीं चाहता हिमगिरि बनकर
सिर पर चढ़ इठलाऊं मैं।
नहीं चाहता गंगा बनकर,
उर पर बढ़ लहराऊं मैं।
नहीं चाहता उपवन बनकर,
अंग अंग की छवि होऊं।
यही चाहता बनूं सिन्धु।
निशि दिन भारत के पद धोऊं।

कवि हृदय बच्चों को देश के नेताओं से परिचय कराकर निज-प्रयोजन के सफल बनाने का अनूठा उपाय किया है। बापू के माध्यम से अन्य नेताओं का परिचय बालकों को कराया गया है। वे इस प्रकार हैं - कस्तूरबा गांधी, सरदार पटेल, जवाहर लाल नेहरू, महादेव देसाई मूला भाई, जमना लाल बजाज, राजेन्द्र प्रसाद, अब्दुल गफ्फार खां, मीराबेन, सुभाष चन्द्र बोस, मदन मोहन मालवीय

और रवीन्द्र नाथ टैगोर हैं। बापू को अर्द्ध वस्त्र देखकर कवि हृदय यह प्रश्न कर बैठता है कि -

''बापू कुर्ता क्यों न पहनते और न लम्बी धोती ?
टोपी भी तुम नहीं लगाते , क्या बदठीक न होती ?''

+ + + +

जब न पहन सकते सब कपड़े, कैसे मैं हूं पहनूं ?
इसीलिये यह लगी लंगोटी,सोचा बन सा रहलूं ?

कवि बच्चों को विश्व-बन्धुत्व की भावना से ओत-प्रोत कराता है। ये पंक्तियां देखिये -

''चीनी हों या जापानी, ईरानी या तुर्किस्तानी,
अमरीकन या इंगलिस्तानी या हम सब हों हिन्दुस्तानी,
लायेंगे नवयुग का विहान।
हम सब समान, हम सब समान।'' [१]

'नया हिन्दुस्तान' 'भारत का ध्यान' 'मीठे बोल', 'बादल बादल बरसो पानी' 'प्रार्थना' 'हवा का झोंका।' 'अगर कहीं मैं पैसा होता', 'सपने में' 'नीम का पेड़' 'सुन्दरता की पहचान' 'चाची का गुब्बा मजेदार' 'आंधी आई', 'छाया' 'ओस' 'घर की याद' 'बाल विनय' 'भारतवर्ष' 'कलम की कहानी' 'मुस्कानों से भर दो घर-वन' और आगे आवें ये कवितायें अन्तर्राष्ट्रीय बालवर्ष के अवसर पर प्रकाशन विभाग,सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा संकलित है - गीत भारती की भूमिका में श्री राम धमीजा ने लिखा है ''यह अनुपम कृति बाल-पाठकों को प्रेरित करेगी, गुद-गुदाएगी, आगे बढ़ने का संबल बनेगी, ऐसी आशा है।'' [२]

गीत-भारती की कविताओं के प्रभावकता के रुप में 'सुन्दरता की पहचान'' नामक कविता की दो पंक्तियां द्रष्टव्य हैं -

---

१- सोहन लाल द्विवेदी हम बाल वीर सं० १९७७ पृ० सं० ७।
२- सोहन लाल द्विवेदी गीतभारती सं० १९७९ पृ०सं० ४।

"सुन्दर मुखड़ा कौन ? नहीं जो गोरा हो या काला हो ।
सुन्दर मुखड़ा वही, सत्य का जिसमें तेज निराला हो ।।"[1]

पंचतंत्र में संगृहीत पशु-पक्षियों की कथाओं द्वारा राजा के मूर्ख पुत्रों को सुयोग्य नागरिक बना दिया । कवि ने बच्चों का मनोरंजन तो कराया ही है साथ-ही साथ बच्चों को शिक्षा भी मिलती है । बच्चों पर अच्छे संस्कार जागृत करने के लिये नीतिपरक पद्य कथाओं द्वारा उनकी 'दस कहानियाँ' एवं 'सात कहानियां' ये पुस्तकें बहुत ही उपयोगी हैं । सन्तूराम लपटटूराम 'हास्य रस की यह कविता 'दस कहानियां' संकलन की कविता है । इसी संकलन की दूसरी कविता 'बैरगिया नाला' स्थानीय घटना का हास्य-व्यंग्यपूर्ण चित्रण प्रस्तुत करती है । 'अन्धेर नगरी कविता मनोविनोद के साथ-२ सीख सिखाने वाली कविता है ।'

कवि बच्चों को एक सफल नागरिक बनने एवं देश के अच्छे कर्णधार बनने का स्वप्न साकार किया है । आज का बच्चा ही कल देश का नेता होगा । कवि ने इस दिशा में बहुत ही सफलता प्राप्त की है ।

अध्याय - तृतीय

द्विवेदी जी के काव्य में सांस्कृतिक तत्वों से उभरता हुआ उनका राष्ट्रीय दर्शन

द्विवेदी युगीन राष्ट्रीय संकट

'जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी बढ़कर है।'[1]

यह स्वर्णिम वाक्य स्वदेश प्रेम एवं राष्ट्रीय भावना का गौरव सूचक है। तुलसी ने राम के मुंह से कहलवाया कि जन्म भूमि सुन्दर व अपार सुख प्रदान करने वाली है[2] पुराने समय में राष्ट्रीयता का दृष्टिकोण भिन्न था। मनुष्य को जिस स्थान पर रहना पड़ता है उसके प्रति शनै: शनै: उसमें स्वाभाविक रूप से एक साहचर्य जनित प्रेम उत्पन्न हो जाता है और आस-पास के वातावरण से उसका रागात्मक सम्बन्ध हो जाता है। वह उस भूमि के निवासियों से पारस्परिक स्नेह जनित सहयोग का सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। इस कारण उस स्थल के प्रति हृदय में प्रेम उत्पन्न हो जाता है। व्यक्तिगत प्रेम का अंकुर सामूहिक प्रेम बनकर आगे राष्ट्र-प्रेम में परिवर्तित हो जाता है। फिर राष्ट्र से बढ़कर वह विश्व मैत्री की भावना में विकसित हो जाता है। एक देश की जनता में व्याप्त देश भक्ति ही उस देश की प्रचलित भाषा के प्रति प्रेम उत्पन्न करती है। माता एवं बन्धु जो भाषा बोलते हैं वही मनुष्य की अपनी भाषा या मातृभाषा हो जाती है। देश के प्रति प्रेम मातृ भाषा ~~मन-मान~~ पर अनुराग तथा मातृ प्रेम इन तीनों के सामंजस्य से मनुष्य के व्यक्तित्व का एक ठोस रूप निर्मित होता है। देश भक्ति एवं भाषा भक्ति दोनों प्रेमानुभूति से सिंचित हैं। जन्मदात्री मां और जन्मभूमि सबसे अधिक श्रेष्ठ है।

समाज की परिस्थिति उसकी आवश्यकतायें एवं अभिलाषायें किसी भी देश के साहित्य और कला को रूप देती है। इस दृष्टि से साहित्य समाज का दर्पण बनता है। जो कला जीवन के लिये होती है वही सच्ची कला है। प्रसिद्ध बांग्ला

१- जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी (सुभाषित)

२- जन्मभूमि मम पुरी सुहावनि, उत्तरदिसि बह सरजू पावनि।
जा मज्जन ते बिनहिं प्रयासा, मम समीप नर पावहिं बासा।।

३- अति प्रिय मोहि इहां के बासी, मम धामदा पुरी सुखरासी।। (राम चरितमानस उत्तरखण्ड दो ३-४)

कवि मैथ्यू आरनाल्ड ने कहा है कि "काव्य जीवन की व्याख्या है।"[1] राष्ट्रवादी कवियों की रचनायें देश तथा समाज की प्रेरणा व प्रतिबिम्ब हैं। जिनसे देश-प्रेम और स्वतन्त्रता के लिये -

पुराने साहित्य में राष्ट्रीय भावना पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होती है। किसी भी उत्कृष्ट साहित्य में समाज व देश का चित्र अवश्य मिलता है। बाल्मीकि, कालिदास, तुलसी, कंबन, बल्लुवट और पाश्चात्य कवि रूसो, स्काट आदि काव्य निर्माताओं ने अपने अपने देश का गुणगान किया है।

कवि की राष्ट्रीयता की विवेचना करने के पूर्व अन्य देशों की राष्ट्रानुभूति पर विचार करना आवश्यक है। रोम तथा ग्रीक लोग श्लाघनीय देशभक्ति के उदाहरण हैं। इनके अमूल्य ग्रन्थों को विपुल ख्याति मिली है। देशाभिमानी सुकरात ने विषपान कर देश के लिये प्राणार्पण किया था। रूसो, वाल्टेर आदि नेताओं के हृदयों में देश के प्रति अपार श्रद्धा और प्रेम की अनुभूति थी। अंग्रेजी कवि शेक्सपियर, मिल्टन, बाइरन, टेनिसन, इटली के गैरिबाल्डी, जर्मनी के बिस्मार्क देशाभिमान के ज्वलन्त उदाहरण हैं राष्ट्र-प्रेम के इतिहास में राणा प्रताप, शिवाजी, आदि वीरों के नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित हैं। चन्द्र गुप्त मौर्य के काल में ही चाणक्य ने राष्ट्रीयता को महत्व दिया था। हिन्दी साहित्य के इतिहास के प्रारम्भिक चरण में राष्ट्रीय भावना कम नहीं थी। उस समय जनता के राजनीतिक जीवन में आन्तरिक सन्तुलन नष्ट नहीं हुआ था। प्राचीन भारत में गणतन्त्र एवं राजतन्त्र एक दूसरे पर नियंत्रण रखते थे। उस समय राज्य के पतनोत्थान के प्रति संवेदनशील सार्वजनिक राजनीतिक चेतना परिव्याप्त थी। गुप्त सम्राटों ने गणों का नाश किया और राजतंत्र पूर्व मध्यकाल

---

1. Poetry is the criticism of life (Mathew Armol)

में निरंकुश हो गया । व्यक्ति की स्वतन्त्रता, देश भक्ति व राजनीतिक जागृति के स्थान पर राजभक्ति आत्म समर्पण एवं राजनीतिक उदासीनता ने जनता के हृदय पर अपना शासन दृढ़ कर लिया । इस परिस्थिति में तत्कालीन कवि और प्रशस्तिकारों में सर्वदेशीय और राष्ट्रीय कल्पना का प्राय: अभाव ही हो गया था । इस काल के कवि अपने प्रश्रयदाता राजाओं के गुणगान करते रहे । हिन्दी के उदय काल के कवियों ने प्रेम व युद्ध को लेकर श्रृंगार और वीर रस पूर्ण रचनाएँ की । सोलहवीं शती के मध्य में मुगल साम्राज्य के स्थापित हो जाने पर भी हिन्दुओं की ओर से स्वतन्त्रता के लिये संघर्ष उत्तरोत्तर तीव्रगति से प्रगट हुआ । हिन्दुओं का मानस,राजनीतिक पुनरुत्थान की भावना से आलोकित था । राणा प्रताप, शिवाजी, दुर्गादास, सिक्खगुरु, विद्रोही मराठे और जाट आदि अपने विचारों से जनता के हृदय को आकर्षित कर रहे थे । इस भारतीय राष्ट्रीयता की पृष्ठभूमि पर अन्यान्य प्रवृत्तियां साहित्य में युगबोध के रुप में प्रगट हुईं ।

मध्य युग पर्यन्त सर्वशक्तिमान धर्म ही साहित्य एवं राजनीति को प्रभावित करता रहा । भक्ति काल में राष्ट्रीय भावना विशेष रुप से प्रबन्ध काव्य नायकों एवं अन्य पात्रों के माध्यम से अभिव्यक्त हुई । नैराश्यग्रस्त जनता में भक्ति आन्दोलन से आत्म विश्वास आ गया । रीतिकाल में रीति पद्धति के वीर काव्य रचयिता कवि भूषण का नाम उल्लेखनीय है । 'भूषण' का काव्य राष्ट्रीय भावना से ओत प्रोत है ।

हिन्दी साहित्य में प्राचीन तथा अर्वाचीन युगों के सन्धिकाल में जो मुख्य राजनीतिक घटना हुई वह सन् १८५७ ई० का विदेशी सत्ता के विरुद्ध भारतीय जनता का स्वतन्त्रता संग्राम है । इस्लामी शासन का अन्त होकर अंग्रेजी शासन का सूत्रपात हुआ, तब अंग्रेजों की राष्ट्रीय भावना से भारत प्रभावित हुआ । सन् १८५७ ई० के पश्चात् भारत में राजनीतिक चेतना तेजी से जागृत हुई । इस समय के कवि

महारानी विक्टोरिया के लिये प्रशस्तियां भी लिखते थे । ऐसे लोग सन् १८५७ ई० के विप्लव को अवैध विद्रोह समझते थे और राज भक्ति को बड़ा कर्तव्य मानते थे । विक्टोरिया की घोषणा के समय जब लोगों ने राजनीति की ओर ध्यान दिया तब देशी व्यापारियों का व्यापार पराधीन हो गया और उद्योग धन्धे नष्ट हो गये । राज सत्ता मे सौदागरों का कुछ हाथ था । इस परिस्थिति की विडम्बना ने राष्ट्र प्रेम का सूत्र पात किया ।

इस विप्लव के बाद देश का शासन ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधिकार से निकल कर ब्रिटिश पार्लमेन्ट के अधीन हो गया । महारानी विक्टोरिया के शासन से नयी व्यवस्था का जन्म होता है। उसकी घोषणा से जनता मे राजनीतिक आशाएं प्रबल हो उठीं और वे अंग्रेजी शासन मे राम राज्य का स्वप्न देखने लगे । सन सन्तावन के विप्लव के उपरान्त मध्य युगीन राज व्यवस्था का ह्रास प्रारम्भ हुआ । आधुनिक हिन्दी साहित्य भारतीय समाज के लिये एक नूतन चेतना प्रदान करने वाली अपूर्व वाणी को मुखरित करता है । वस्तुत: पूरे आधुनिक साहित्य में भारतीय मध्य वर्ग की सांस्कृतिक चेतना भरपूर है। उस युग के बुद्धिजीवी वर्ग के सांस्कृतिक प्रतिनिधि के रूप में राजाराम मोहनराय तिलक, स्वामी दयानन्द , रवीन्द्र , सुब्रह्मण्य भारती , ईश्वर चन्द विद्यासागर, भारतेन्दु , महात्मागांधी, मैथिली शरण गुप्त , हाली, प्रेम चन्द और प्रसाद एवं मोहन लाल द्विवेदी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं । विदेशी शिक्षा से प्रभावित जनता मे अपनी संस्कृति के प्रति उपेक्षा की भावना तथा विदेशी संस्कृति के अन्धानुकरण की जो तीव्र लहर उठी थी वह हिन्दू - संस्कृति को निर्मूल नष्ट कर सकती थी ।

उपनिर्दिष्ट महानुभावों का संस्कृति की रक्षा एवं नवीन राष्ट्र चेतना के उत्थान मे महत्व पूर्ण योगदान है ।

'भारत छोड़ो ' (क्विट इण्डिया) आन्दोलन ने विदेशी शासन

के अधीन दासता की अनुभूति से आप्लावित जनता को राष्ट्र - चेतना रूपी यज्ञ मे बलि होने को प्रेरित किया ।

उत्तरोत्तर बढ़ती हुई राष्ट्र भावना भारतेन्दु युग मे जन्मी और क्रमश: वर्तमान युग मे प्रवाहित हो रही है । राष्ट्रीयता के प्रारम्भिक काल मे धर्माश्रित राष्ट्रीय भावना मे कुछ परिवर्तन लक्षित हुये । आर्य समाज का आन्दोलन हिन्दुओं की सामाजिक एवं धार्मिक कुप्रथाओं का प्रतिवाद कर रहा था । जो भारतीय इतिहास मे महत्वपूर्ण घटना है । उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध मे मराठा संघ की स्थापना के पूर्व जिस प्रकार उथल पुथल मच गई थी , उसी प्रकार इस पुनरुत्थान मे राष्ट्रीयता की लहर प्रचन्ड हो उठी ।

वैलेण्टन चीरोल ने इसका उल्लेख करते हुये लिखा है कि आधुनिक भारत मे हिन्दुओं के पुनर्जागरण से राष्ट्रीय आन्दोलन का जन्म हुआ । हिन्दी काव्य में इस पुनरुत्थान का पूरा श्रेय भारतेन्दु को है । सन् १८८५ ई० मे कांग्रेस की स्थापना से राष्ट्रीयता को नया परिवेश मिला ।किन्तु यह अंग्रेजी राज्य के प्रति विद्रोह करने के हेतु नही हुई थी । तत्कालीन कवियो ने भारत की उन्नति के लिये प्रेरणा दी । एवं कांग्रेस की प्रशस्तियां लिखीं उस राज्य भक्ति एवं देश - भक्ति की धारा मे सन् १९१२ ई० की कांग्रेस की मण्डली ने तत्कालीन वाइस राय लार्ड हार्डिग्ज पर बम फेके जाने पर सहानुभूति प्रकट की । कालान्तर मे धीरे - २ राज-भक्ति विदेशी शासन के प्रति भक्र , अवज्ञा मे और जनता की राजानुवर्तिता राष्ट्र धर्म हिन्दू भाव संस्कार एवं संस्कृति के रक्षक भारतेन्दु एवं द्विवेदी कालीन कवियों ने मध्य - युगीन सुधारक बल्लभाचार्य , रामानन्द तथा तुलसी की भांति जनता और देश के प्रति सेवा - भावना व्यक्त की । इन्हीं वैष्णव सुधारकों की श्रेणी मे मोहन लाल द्विवेदी जी का महत्वपूर्ण स्थान है । जिन्होंने युग - दृष्टा के रूप में भारत के प्राचीन गौरव को पुन: अनुप्राणित किया है । उनकी कविता

उनकी कविता में राष्ट्रीय - भावना का उदात्त रूप मिलता है । कवि की राष्ट्रीयता उसी त्रिवेणी का स्वरूप है जिसमें जातीय, राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक चेतना का समग्र प्रवाह होता है । कवि की राष्ट्रीयता में देशाभिमान ,देशार्चन अतीत का गौरव - गान वीर पूजा वर्तमान जाति के प्रति दुख स्पन्दन ,उद्बोधन क्रान्ति आदि मुख्य प्रवृत्तियां हैं । तमिल साहित्य में प्राचीन ग्रन्थ 'तोल कप्पियम' में 'तोल कप्पियनार' ने इसका समर्थन किया है । कि देशाभिमान से युक्त वीरों का यह कर्तव्य है कि शत्रुओं को पराजित कर कीर्ति का प्रसार करें । मातृभूमि के मंगल के हेतु त्याग एवं रणभूमि में शौर्य प्रदर्शन आदि क्षात्र- धर्म आदि की विलक्षण प्रवृत्तियां हैं । प्राचीन काल की नारियों में यह देश भक्ति की भावना प्रचुर मात्रा में है । संघकाल के ग्रन्थों में इसके अनेक प्रमाण उपलब्ध होते हैं । 1 चेरन चेंगुट्टुवन करिकाल चोलन । आदि अनेक राजाओं को इस देश भक्ति के लिये उनकी देवियों ने प्रेरणा दी थी । उस युग के ग्रन्थों के अनुसार इतना विदित होता है कि संघ काल की महिलायें ग्रीक देश के स्पार्टा की स्त्रियों की बराबरी करती थीं ।

मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम के चरित्र को तमिल में उपहृत करने वाले कंबन में दशाभिमान की कमी नहीं थी । राष्ट्रीय कवि भारती की वाणी , कंबन , इलंगो , वल्लुवर आदि प्राचीन कवियों की साधनाओं से प्रसाधन जुटाकर अपने को अलंकृत करती है । प्राचीन साहित्य में 'तोल कप्पियम' के पश्चात दोहजार वर्षों की सभ्यता व संस्कृति पर पर्याप्त सामग्री प्रस्तुत करने वाले ग्रन्थ तिरुकुरल

---

1 तमिल साहित्य का एक प्राचीन काल है ।

ये चेर राज्य के प्रसिद्ध राज्य थे । सिलप्पधिकारम् में इनका उल्लेख है ।

यह एक ख्याति प्राप्त चोल राज्य के अधिपति थे ।

ग्रीक देश का एक स्थान है । यहां की वीरांगनाएं , क्षमता, सादगी और वीरता के लिये प्रसिद्ध थीं ।

के रचयिता तिरुवल्लुवर एक राष्ट्रीय महाकवि थे। उन्नत लक्ष्य की ओर मनुष्य को उन्मुख कर पूर्ण मानव होकर जीने की प्रेरणा प्रदान करना राष्ट्रकवि का महान कर्तव्य है। सोहन लाल जी की कविताओं में यह राष्ट्र भावना स्पष्ट लक्षित है उनकी साधनाओं में , मानव - जीवन के साथ अपूर्व तादात्म्य स्थापित हुआ है। देश सेवा को ही जीवन की सेवा मानकर सोहन लाल द्विवेदी ने अपनी कृतियों को देश के लिये समर्पित किया है। ज्ञानी एवं सज्जन जनता को आदर्श जीवन की ओर प्रेरित करते हैं। भारत की निर्बल तथा दासत्व की अवस्था से परितप्त कवि व्यग्र होकर स्वराज्य सिद्धि एवं भारतमाता की स्वतंत्रता के हेतु आवेश भरे गीत गाते हैं। जाति व धर्म से परे इनकी राष्ट्रानुभूति विश्व मैत्री की भावनासे मंडित है।

'सोहन लाल द्विवेदी' के सम्मुख राष्ट्र को जगाने की आवश्यकता थी वह भारत वासियों को जगाकर विदेशी सत्ता का अन्त कराना चाहता है। वह 'देवता और दानव' के विरोध का परिचय ऐतिहासिक परिचय कराकर कि किस प्रकार उद्बोधित करता है कि देवताओं ने कर्तव्य करके दानवों से विजय प्राप्त करली उन्होंने 'विष- पान 'नामक खण्ड काव्य में वर्णन किया है।

'विषपान' के प्रथम सर्ग में दैत्यों द्वारा देवताओं की पराजय के परिणाम स्वरुप देवताओं की मौन व्यथा का सजीव चित्रण किया है। दूसरे सर्ग में कर्म का सन्देश सुनाती हुई आकाश- वाणी होती है जिसमें शत्रु से संधि करके उद्योग द्वारा अमृत प्राप्त कर अमर बनने और फिर युद्ध - रत होने की प्रेरणा मिलती है। तृतीय और चतुर्थ सर्ग में इन्द्रादि देवताओं द्वारा त्रिपुरादि दैत्यों के समक्ष सन्धि प्रस्ताव प्रस्तुत करने और मिल - जुलकर अमृत की उपलब्धि अमर्त्यता प्राप्त करने का आख्यान मिलता है। अमृत प्राप्ति की प्रबल आकांक्षा के साथ सुरासुरों के अभियान का चित्रण पंचम सर्ग में मिलता है। छठा सर्ग

'अभियान गीत' है अमृत के पिपासुओं द्वारा मंदराचल को मथानी और शेषनाग को रस्सी बनाकर सागर - मंथन के उपक्रम का वर्णन सातवें सर्ग 'समूह - मंथन' में कवि द्वारा किया गया है । अष्टम सर्ग में मन्थन के फल स्वरुप विष निकलने और उसकी ज्वाला से देव - दानवों में उत्पन्न अकुलाहट एवं उनके पलायन की कुण्ठा का चित्रण सजीवन है । भयाक्रान्त वातावरण के एक चित्रण का उदाहरण देखिये -

" रुद्राणी, चंडिका कपर्दिनि ,
खड़ी भीत हो कोने में ,
मुण्ड मालिनी की रसना
बह हुई सिमिट कर दोने मे ।"[१]

अन्तिम सर्ग "विष-पान में त्रिभुवन नायक शंकर द्वारा विषपान का आश्वासन पाकर देव - दानवों में हर्षोल्लास की लहर दौड़ जाने और शिव द्वारा विष- पान कर अभय दान देने का वर्णन है ।

अन्त मे कवि भगवान नीलकंठ जैसे अधिनायक की अवतारणा मां भारती की भूमि पर सदैव होते रहने की कामना करते हुये कहता है -

" तुम सा पाकर निज अधिनायक,
फिर मथे सिन्धु ,हो अमृत पान ।
हो सफल साधना का विधान। "[१]

१- सो० ला० द्वि० विषपान सं० १९५५ पृ० सं० ३४
१- विषपान संस्करण - १९५५ पृष्ठ सं० ४५

३- ब - राजनैतिक संकट , सांस्कृतिक संकट आर्थिक संकट

द्विवेदी जी राजनैतिक संकट का वर्णन करते हुये द्विवेदी जी का स्वर न तो थकता है और न ही विराम लेना चाहता है । सच तो यह है कि कवि के शब्द उस शब्दातीत को व्यक्त करने मे सीमा का अनुभव करते हैं, भाव मूक हो जाते हैं । छन्द और स्वर धारा अवरुद्ध हो जाती है । तथा कवि के सामने भाषा की समस्या उत्पन्न हो जाती है । अंग्रेजी शासक अपने शासनकाल मे मनचाही करते थे जिससे भारत माता बेचारी आंसू टपकाती थी तथा भारतीय भूखो मरते थे ।

उनकी ये रचनायें देखिये -

" अंग्रेजो का राज्य यहां था ,
अंग्रेजो का काज यहां था ।
जो मन चाहा वैसा करते ,
हिन्दुस्तानी उससे डरते । " [१]

कवि की भावना भारत वासियों को भूखो मरते देखकर भारत - माता आंसू टपकाने लगती है , मानवीय चित्रण बड़े मार्मिक ढंग से वर्णन करता है ये पंक्तियां देखिये -

" भारत पर थे शासन करते
भारत - वासी भूंखों मरते ।
भारत - माता थी बिलखाती
बड़े - बड़े आंसू टपकाती ।" [१]

कवि भारत मां के इस दुख को दूर करने की प्रतिज्ञा करता हुआ प्रतीत होता है ।

१- एक गुलाब , पृष्ठ सं० १६

२- एक गुलाब पृष्ठ सं० २०

' चाचा नेहरु ' के मुख से ये प्रतिज्ञा कहलाता हुआ कवि की यह रचना दृष्टव्य है -

" नेहरु चाचा थे अभिमानी ,
तभी यही धुन मन मों ठानी
माता का दुख दूर करुंगा ,
दुनिया को मजबूर करुंगा । " [१]

कवि की दृष्टि चतुर्दिक हो जाती है वह समझाता है कि केवल युद्ध से ही आजादी आने वाली है खादी के उपयोग के लिये जनता को सम्बोधित करता है , स्वदेशी - वस्त्रों के उपयोग से विदेश जाने वाली मुद्रा कम हो जावेगी । जिससे देश समृद्धिशाली भी हो जावेगा तथा खादी में ही देश - प्रेम निहित है मुर्दों को अर्थात जिनमे देश प्रेम तनिक भी नही है उन्हे पुन: जागृत करेगी, कवि ने यहां तक कहा है कि खादी ही भारत से रुठी आजादी को लाने मे सक्षम होगी ।

" खादी ही बढ़ चरणों पर पड़
नूपर सी लिपट मनायेगी ।
खादी ही भारत से रुठी ,
आजादी को घर लायेगी । " [२]

कविवर हल्दी घाटी की महिमा का वर्णन कर सोये भारतीय को अंग्रेजों के विरुद्ध रण - छेड़ने का आह्वान करता है उसे अनुपम तीर्थ की संज्ञा देता है । येन-केन प्रकारेण कवि भारत मे आजादी लाना चाहता है वह भाई का लाल जिसे पाकर भारत माता कृतकृत्य हो गई मन्दिर मस्जिद, गिरिजा घर आदि तुमसे बढ़कर कोई नही है ।

१- एक गुलाब पृष्ठ सं० २०

२- भैरवी पृ० सं० ८

भारतीय युवकों, बूढों, बच्चों के हृदय में रण - रंग छेड़ने की प्रेरणा हल्दी घाटी से लेना चाहता है। आशय यह है कि हम हल्दी घाटी का स्मरण कर अपने आपको देश की स्वतंत्रता के लिये हंस-हंस बलिदान हो जावें महाराणा प्रताप के त्याग की भी कहानी कवि बताता है कवि प्रताप से प्रश्न पूछ रहा है —

"किस अमर शक्ति आराधन में
किस मुक्ति युक्ति के साधन में
मेरे वैरागी वीर व्यग्र
किस तप - बल के उत्पादन में।"[१]

बुद्ध- देव का आवाहन करता हुआ कवि कहता है कि हे प्रभु एक फिर अवतार लेकर इस पृथ्वी को कष्ट - मुक्त करो क्योंकि -

"मानव ने दानव धरा रूप,
भर रहे रक्त से अमर कूप।
डूबती धरा को लो उबार,
आओ फिर से करुणावतार।।"[२]

भारत में मुगल साम्राज्य से लेकर अंग्रेजी शासन तक देश- वासी पाश्चात्य संस्कृति में पड़कर अपने देश की संस्कृति को भूल बैठे थे। देश में दासता, पराजय, गृह- विग्रह आदि अन्धकार से आच्छादित था। उसी समय राम नाम का अमृत लेकर तुम सौभाग्य चन्द्रमा बनकर चमके जिससे मृत - हत जनता को पुनः जागरण मिला। हिन्दू - कुल का जहाज उस अपार जल निधि में डगमगा रहा था। उस समय तुम अचल आकाश दीप बनकर तुमने नौका को सुगम तीर पर पहुंचा दिया, जिस समय समुद्र में अंधड़ आया उस समय तुम लोक को पालने वाले पाल बनकर

१- भैरवी पृ० सं० ३५

२- भैरवी पृ० सं० ३७

अपने धर्म की ओर ले जाये। सूरदास ने कृष्ण चरित्र गाया जिससे नव यौवन का विलास उमड़ पड़ा। जिससे अनायास जय मिलती है वह पौरुष वह बल -विक्रम। - कवि ने तुलसी दास को 'बाल्मीकि' का पुर्नजन्म मानते हुये इस मुगल काल में सांस्कृतिक संकट को दूर करने का मसीहा माना है। उनकी ये पंक्तियां देखिये --

"हे बाल्मीकि के पुनर्जन्म ,
क्या नगर नगर क्या ग्राम - ग्राम
+ + + +
तुलसी तुम गूंज रहे रह - रह
गृह - गृह में बनकर राम - नाम।[१]

कवि भक्ति परम भावना का परिचय देता हुआ कहता है कि तुलसीदास राजभवन तथा रंग भवन, ज्ञानी गृह तथा विज्ञानी गृह मे युग - वाणीकर समान रूप से गूंजे कवि तुलसीदास के प्रति एक समस्या तथा एक प्रश्न पैदा करता है कि इस तरह का कामी मनुष्य एक क्षण मे अकामी बन जाये यह सब प्रभु की ही माया है। कवि की भक्ति - भावना परिलक्षित होता है। जब मनुष्य राम मे रम जाता है तो सारी पृथवी उनकी जन्म - भूमि बन जाती है। ये पंक्तियां देखिये -

"कामी प्रताड़ना थी कैसी ?
बन गये एक क्षण में अकाम ,
+ + + +
सब भूमि बन गई जन्म भूमि ,
जब रसना मे रम गया राम।"[२]

आलोच्य कवि ने बच्चों एवं देश - वासियों को अतीत का परिचय कराते हुये बताया है कि हमारे देश का इतिहास कितना महान था। इसके माध्यम से देश की सोई हुई जनता एवं बच्चों को जगाना चाहता है -

---

१- भैरवी पृष्ठ सं० ४६

२- भैरवी पृष्ठ सं० ५०

" अंधकार से घिरा हुआ जब
सोता था सारा संसार
\+ \+ \+ \+
मान चले जाने के पहिले
हमने सदा दे दिये प्राण ।" [१]

आर्थिक संकट को कवि दूर कर समानता लाना चाहते हैं। भारत का अधिकतर भाग 'देहात में' 'गांवों में' झोपड़ियों की ओर नामक शीर्षक मे आर्थिक संकट का नग्न चित्रण प्रस्तुत किया है कवि ने पैरों की फटी बिवाई मे अन्तस भाव को संजोया है।

" पैरों की फटी बिवाई मे ,
अन्तस के गहरे घावों मे
है अपना हिन्दुस्तान कहां
वह बसा हमारे गांवो मे।" [२]

यहां के निवासियों को दिन - रात मेहनत के बावजूद भी इन लोगों को नमक रोटी भी नसीब नही है कवि का कथन है समाज के लिये न्यायोचित नहीं है जो विधाता की सृष्टि के लिये एक प्रश्न चिन्ह है ? ये पंक्तियां देखिये -

" दिन-रात सदा पिसते रहते
कृषकों मे औ मजदूरों मे
जिनको न नसीब नमक रोटी
जीते रहते उन शूरों मे
भूखे ही जो है सो रहते
विधना के निठुर नियावों मे
है अपना हिन्दुस्तान कहां
वह बसा हमारे गांवो में।" [३]

१- बांसुरी पृष्ठ सं० ८८
२- भैरवी पृष्ठ सं० १० ,
३- भैरवी पृष्ठ सं० ।

सब गांव से गांव बन जायें और हममें से एक मोहन बन जाये और हममें से एक मोहन बन जाये । फिर मुरली की वंशी नेक बने जिससे उजड़ा हुआ वृन्दावन बन जाये ।कवि महलों पर रहने वाले मनुष्यों से कहता है कि गांवों की कमाई से ही तुम्हारे ये गगन चुम्बी महल खड़े हैं । अस्तु उन झोपड़ियों के प्रतिकृतज्ञता का भाव दर्शाते रहिये । कवि वस्त्र खान - पान एवं धन रहित (कूंछो टेंट) आदि को विशेष महत्व देता है । वह अर्थ ही को सब कुछ नहीं मानता । वर्ग विषमता एवं आर्थिक विषमता का सजीव चित्रण की ये पंक्तियां देखिये -

"उनके फटे चीथड़े देखो ,
अपने वस्त्र विभव शाली ।
उनकी रोटी - नमक निहारो ,
अपनी खीर भरी थाली
उनके कूंछे टेंट निहारो ,
+ + + +
यह अन्याय अनीति मिटाओ
युग - युग का दु:ख दैन्य दलो
महलों को भूलो प्यारे
अब झोपड़ियों की ओर चलो ।" १

१-२ भैरवी पृष्ठ सं० १८

३- ब

ब्रिटिश शासन की स्थापना के पश्चात भारत मे ईसाई धर्म का तेजी से प्रचार होने लगा । परिणाम स्वरुप शिक्षित भारतीय वर्ग ईसाई धर्म की ओर आकर्षित होने लगा तो भारत मे राजा राम मोहन राय , स्वामी दयानन्द सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस , स्वामी विवेकानन्द, श्रीमती एनीबिसेन्ट आदि के नेतृत्व मे धार्मिक एवं सामाजिक सुधार आन्दोलन हुए उन्होने समाज एवं धर्म मे व्याप्त बुराइयों को दूर करने का प्रयास किया । इसमे भारतीयों मे देश प्रेम तथा भक्ति भावना जागृत हुई । राजा राम मोहन राय ने सती प्रथा, छूआछूत, जाति भेदभाव एवं मूर्ति पूजा आदि बुराइयों को दूर करने का प्रयास किया । जिससे आधुनिक भारत का निर्माण सम्भव हो सका । इसलिये उन्हे 'आधुनिक भारत का निर्माता' कहा जाता है ।

राजा राम मोहन राय ने भारतीयों के लिए राजनीतिक अधिकारों की मांग की । १८२३ ई० मे प्रेस आर्डिनेन्स के द्वारा प्रेस पर प्रतिबन्ध लगा दिया था । उन्होने इसका प्रबल विरोध किया था । डा० आर० सी०मजूमदार के शब्दो मे "राजा राम मोहन राय पहले भारतीय थे जिन्होने अपने देश -वासियों की कठिनाइयॉं तथा शिकायतों को ब्रिटिश सरकार के सम्मुख प्रस्तुत किया और भारतीयों को संगठित होकर राजनीतिक आन्दोलन चलाने का मार्ग दिखलाया । उन्हे आधुनिक आन्दोलन का अग्रदूत होने का भी श्रेय दिया जा सकता है। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने ईसाई धर्म की कमियों पर प्रकाश डाला और हिन्दुत्व के महत्व का बखान कर भारतीयों का ध्यान अपनी सभ्यता व संस्कृति की ओर आकर्षित किया । उन्होने वैदिक धर्म की श्रेष्टता को फिर से स्थापित किया और यह बताया कि हमारी संस्कृति विश्व की प्राचीन और महत्वपूर्ण संस्कृति है। उनका मानना था कि वेद ज्ञान के

भण्डार हैं और संसार मे सच्चा धर्म हिन्दू धर्म है, जिसके बल पर भारत विश्व मे अपनी प्रतिष्ठा फिर से स्थापित कर गुरु बन सकता है। उन्होने कहा था "विदेशी राज्य चाहे वह कितना ही अच्छा क्यों न हो , स्वदेशी राज्य की तुलना मे कभी अच्छा नही हो सकता ।" एच० बी० शारदा ने लिखा है, "राजनीतिक स्वतंत्रता की प्राप्ति स्वामी दयानन्द का मुख्य उद्देश्य था । वे पहले व्यक्ति थे, जिन्होने स्वराज्य शब्द का प्रयोग किया और अपने देशवासियों को विदेशी माल के प्रयोग के स्थान पर स्वदेशी माल के प्रयोग की प्रेरणा दी । उन्होने सबसे पहले हिन्दी को राष्ट्रीय भाषा स्वीकार किया ।[1] भारत भारतवासियों के लिए है यह नारा सबसे पहले स्वामी दयानन्द सरस्वती ने लगाया था ।

स्वामी विवेकानन्द ने यूरोप और अमेरिका मे भारतीय संस्कृति का प्रचार किया । उन्होने अंग्रेजो को यह बता दिया कि भारतीय संस्कृति पश्चिमी संस्कृति से महान है। और वे बहुत कुछ भारतीय संस्कृति से सीख सकते हैं । इस प्रकार उन्होने भारत मे सांस्कृतिक चेतना जागृत की तथा यहां के लोगों को सांस्कृतिक विजय प्राप्त करने की प्रेरणा दी। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये भारत का स्वतंत्र होना आवश्यक है। इस प्रकार उन्होने भारतीयों की राजनैतिक स्वाधीनता का समर्थन किया ।

श्रीमती एनीबिसनेंट ने भी भारत मे राष्ट्रीय चेतना जागृत की एवं राष्ट्रीय आन्दोलन मे सक्रिय भूमिका निभाई । इस प्रकार जब भारतीयों को अपनी संस्कृति की श्रेष्टता का ज्ञान हुआ तो उन्होने अंग्रेजो के विरुद्ध स्वाधीनता की प्राप्ति हेतु आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया ।

१७०७ ई० के बाद भारत मे राजनीतिक एकता का लोप हो चुका था

१- (एच० बी० शारदा) डा० आर०सी० मजूमदार, हिस्ट्री आफ फ्रीडम मूवमेन्ट इन इन्डिया , भाग १, पृष्ठ - २८७

किन्तु अंग्रेजों ने सम्पूर्ण भारत में सुदृढ़ शासन व्यवस्था स्थापित की । समस्त साम्राज्य में एक जैसे कानून एवं नियम लागू किये गये । सम्पूर्ण भारत पर ब्रिटिश सरकार का शासन होने से भारत एकता के सूत्र में बंध गया । इस प्रकार देश में राजनीतिक एकता स्थापित हुई । यातायात के साधनों तथा अंग्रेजी शिक्षा ने उसएकता की नींव को और अधिक ठोस बना दिया भारतीय लेखक पुन्नैया के शब्दों में ''हिमालय से कुमारी अन्तरीप तक सम्पूर्ण भारत एक सरकार के अधीन आ गया और इसने जनता में राजनीतिक भावना को जन्म दिया ।''

भारतीय राष्ट्रीय धारा में पश्चिमी शिक्षा ने सराहनीय योगदान दिया । १८३५ ई० में लार्ड मैकाले के सुझाव पर भारत में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी कर दिया। इसका प्रमुख उद्देश्य भारत की राष्ट्रीय चेतना को जड़मूल से नष्ट करना था । इसको लागू करने का प्रमुख उद्देश्य भारत में एक ऐसे वर्ग की स्थापना करना था जो मानसिक रूप से अंग्रेजों के गुलाम बने रहे । इस शिक्षा का बुरा प्रभाव यह पड़ा कि भारतीय लोग अपनी संस्कृति को भूलकर पाश्चात्य संस्कृति के गुणगान करने लगे ।

पाश्चात्य शिक्षा से भारत को हानि की अपेक्षा लाभ अधिक हुआ । पश्चिमी शिक्षा ने भारत में दो तरह से राष्ट्रीय चेतना जागृत की ।

अंग्रेजी भाषा के लागू होने से पूर्व भारत के भिन्न-२ प्रान्तों में भिन्न-२ भाषाएँ बोली जाती थीं । इसलिये वे एक दूसरे के विचारों को नहीं समझ सकते थे । सम्पूर्ण भारत के लिये एक सम्पर्क भाषा की आवश्यकता थी, जिसे अंग्रेज सरकार ने अंग्रेजी भाषा को लागू कर पूरा कर दिया । अब विभिन्न प्रान्तों के निवासी आपस में विचार विनिमय करने लगे और इसमें उन्हें राष्ट्र के लिये मिलकर कार्य करने की प्रेरणा दी । परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आन्दोलन को बल मिला । अंग्रेजी भाषा के ज्ञान के कारण भारतीय विद्वानों ने पश्चिमी देशों के साहित्य का अध्ययन किया ।

परिणामस्वरुप वे फ्रांस की राज्य क्रान्ति अमेरिका का स्वतन्त्रता संग्राम , इटली का एकीकरण, यूनान का स्वाधीनता संग्राम आदि ऐतिहासिक घटनाओं से बहुत प्रभावित हुए । इससे भारतीय नेताओं के दृष्टिकोण का विकास हुआ । उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिये अनेक भारतीय इंग्लैण्ड गये और वहां के स्वतन्त्र वातावरण से बहुत प्रभावित हुए । भारत में आने के पश्चात उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन को प्रोत्साहन दिया, क्योंकि वे यूरोपियन देशों की भांति अपने देश में भी स्वतन्त्रता चाहते थे । इस प्रकार पाश्चात्य शिक्षा भारत के लिए वरदान सिद्ध हुई । डा० जकरिया का यह कथन सही प्रतीत होता है कि अंग्रेजों ने १२५ वर्ष पूर्व भारत में शिक्षा का जो कार्य आरम्भ किया था, उससे अधिक हितकर और कोई कार्य उन्होंने भारतवर्ष में नहीं किया । अंग्रेजी शिक्षा के कारण भारत में राष्ट्रीयता की भावना दिन प्रतिदिन प्रबल होती गई । अंग्रेजों ने रंगभेद की नीति के आधार पर भारतीयों का अपमान किया जाता था । गैरेट के शब्दों में ''यूरोपियन जाति विभेद नीति तीन महत्वपूर्ण सिद्धान्तों पर आधारित थी , प्रथम एक यूरोपियन का जीवन अनेक भारतीयों के बराबर है , द्वितीय भारतीय केवल भय एवं दण्ड की भाषा को ही समझ सकते हैं एवं तृतीय यूरोपियन भारत में लोकहित के दृष्टिकोण से नहीं बल्कि निजी स्वार्थ की सिद्धि हेतु आये थे।' इस नीति के आधार पर कनाडा तथा अफ्रीका में भारतीयों के साथ अशिष्टता का व्यवहार किया । परिणामस्वरुप उनमें तीव्रगति से असन्तोष फैला । अब वे समान अधिकारों की मांग करने लगे । महारानी विक्टोरिया की घोषणा के बावजूद ब्रिटिश सरकार भारतीयों को नौकरी देने के पक्ष में नहीं थी । इसलिये सुरेन्द्र नाथ बनर्जी (जिन्होंने १८६६ ई० में इण्डियन सिविल सर्विसेज की परीक्षा पास कर ली थी) को किसी तकनीकी भूल का बहाना लेकर उन्हें नौकरी से हटा दिया गया । श्री बनर्जी ने अपनी आत्म कथा में लिखा है मेरे मामले ने भारतीयों के हृदय में भारी क्षोभ उत्पन्न कर दिया,

उनमें यह विचार फैल गया कि यदि मैं भारतीय न होता तो मुझे इतनी कठिनाइयां नहीं उठानी पड़ती ।'' उस समय के प्रसिद्ध समाचार पत्रों में अमृत बाजार पत्रिका, हिन्दू , केशरी आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है । १८७७ ई० में देशी विदेशी भाषाओं में छपने वाले समाचार पत्रों की संख्या - १६६ थी । इन सभी समाचार पत्रों में ब्रिटिश शासन की अन्यायपूर्ण नीतियों की आलोचना की जाती थी ताकि जनसाधारण में अंग्रेजी शासन के प्रति घृणा एवं असन्तोष की भावनाएं उत्पन्न हों । इससे राष्ट्रीय आन्दोलन को बल मिलता था ।

भारतीय साहित्यकारों ने भी राष्ट्रीय चेतना का संचार किया । श्री बंकिम चन्द्र चटर्जी ने 'वन्दे मातरम्' के रूप में अपने देशवासियों को राष्ट्रीय गान दिया । इससे भारतीयों में देश प्रेम की भावना जागृत हुई । मराठी साहित्य में शिवाजी का मुगलों के विरुद्ध संघर्ष विदेशी सत्ता के विरुद्ध बताया गया । इसी प्रकार केशव चन्द सेन, रवीन्द्र टैगोर की कृतियों ने भी भारत में राष्ट्रीय भावना को जागृत किया । ब्रिटिश सरकार की आर्थिक शोषण नीति के कारण भी भारत में राष्ट्रीय चेतना का विकास हुआ । भारतीयों के शोषण के बारे में डी०ई० वाचा ने लिखा है ,''भारतीयों की आर्थिक स्थिति ब्रिटिश शासन काल में अधिक बिगड़ी थी । चार करोड़ भारतीयों को केवल दिन में एक बार खाना खाकर सन्तुष्ट रहना पड़ता था । इसका एक मात्र कारण यह था कि इंग्लैण्ड भूखे किसानों से भी कर प्राप्त करता था तथा वहां पर अपना माल भेजकर लाभ कमाता था ।''

लार्ड रिपन के समय भारतीय न्यायाधीश किसी अंग्रेज अपराधी के अभियोग की सुनवाई नहीं कर सकते थे । जबकि अंग्रेज जजों को यह अधिकार प्राप्त था । इसलिये रिपन ने अपनी कौंसिल के विधि सदस्य सी०पी० इल्बर्ट को इस सम्बन्ध में एक विशेष विधेयक प्रस्तुत करने को कहा । इस पर १८८२ में इल्बर्ट

ने एक बिल पेश किया । इसमें भारतीय मजिस्ट्रेटों को यूरोपियनों के विरुद्ध अभियोगों की सुनवाई करने का अधिकार देने की व्यवस्था थी । इस विधेयक का सम्पूर्ण भारत और इंग्लैण्ड में अंग्रेजों ने संगठित होकर विरोध किया तथा इसके विरुद्ध आन्दोलन चलाया । उन्होंने कहा कि ''काले लोग गोरों को लम्बी लम्बी सजायें देंगे तथा उनकी स्त्रियों को अपने घर में रखेंगे ।''

इस घटना ने भारतीयों को काफी प्रभावित किया । जिस प्रकार अंग्रेजों ने इल्बर्ट विरोध करने के लिये 'एंग्लो इण्डियन डिफेन्स एसोसिएशन' का संगठन किया था उसी प्रकार भारतीयों ने भी राष्ट्रीय संस्था के गठन का निश्चय किया । परिणाम स्वरुप कांग्रेस की स्थापना का मार्ग प्रशस्त हुआ । भारतीयों ने महसूस किया कि यदि हम भी अंग्रेजों की भांति संगठित होकर ब्रिटिश सरकार का विरोध करें तो हमें स्वाधीनता प्राप्त हो सकती है । इसमें राष्ट्रीय एकता को बल मिला ।

महात्मा गांधी अपने युग के महान नेता थे । उन्होंने सत्य, अहिंसा और सत्याग्रह के आधार पर १६२० ई० से १६४७ ई० तक राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व किया । सारे देश में राजनीतिक चेतना जागृत की और कांग्रेस के राष्ट्रीय आन्दोलन को जन आन्दोलन के रुप में परिवर्तित कर दिया । अन्त में अनेक प्रयासों से सफलता मिली । १६१६ ई० के बाद कुछ ऐसी घटनाएँ घटीं कि गांधी जी ने सरकार के साथ असहयोग आन्दोलन करने का निश्चय किया और राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व अपने हाथ में ले लिया । १६१६ ई० तक यह आन्दोलन शिक्षित वर्ग तक ही सीमित था , परन्तु गांधी जी ने इसे जन आन्दोलन का रुप दिया । असहयोग आन्दोलन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण रोलेट एक्ट था । अंग्रेज सरकार भारतीयों की राष्ट्रीय भावना कुचलना चाहती थी । इसलिये उसने १६१८ ई० में न्यायाधीश रोलेट की अध्यक्षता में एक कमेटी नियुक्त की, जिसे क्रान्तिकारियों को कुचलने के लिये उपाय बताने को कहा गया । इस कमेटी के सुझाव पर जो बिल पारित किया

गया, वह रॉलेट ऐक्ट के नाम से प्रसिद्ध है। इस दमनकारी कानून के अनुसार किसी भी व्यक्ति को बिना कारण बताये और बिना मुकदमा चलाये जेल में चाहे जितने समय तक बन्दी बनाकर रखा जा सकता था अथवा गुप्त रूप से मुकदमा चलाकर दण्डित भी किया जा सकता था। यहां तक कि किसी भी व्यक्ति पर सन्देह मात्र होने पर भी उसे बन्दी बनाया जा सकता था। इस प्रकार इस कानून द्वारा ब्रिटिश सरकार किसी भी बेगुनाह व्यक्ति को तंग कर सकती थी।

महात्मा गांधी के विरोध में भी सरकार ने २१ मार्च, १९१९ ई० को यह कानून लागू कर दिया। गांधी जी के आह्वान पर सारे देश में इस कानून के विरोध में ६ अप्रेल, १९१९ को हड़ताल रखी गयी और जुलूस निकाले गये। दिल्ली में स्वामी श्रद्धानन्द के नेतृत्व में जुलूस निकाला गया। जब यूरोपियन सैनिकों ने गोली चलाने की धमकी दी तो उन्होंने अपनी नंगी छाती उनके सामने कर दी। जुलूस दिल्ली के रेल्वे स्टेशन के निकट पहुंचने पर गोली चला दी गई। इस दुर्घटना में पांच व्यक्ति मारे गये तथा कुछ अन्य लोगों को कुछ सख्त चोटें आईं। लाहौर में भी गोली चली एवं पंजाब में उपद्रव हुये। इस समय गांधी जी दिल्ली आ रहे थे तो सरकार ने उनके पंजाब में प्रवेश करने पर रोक लगा दी। गांधी जी ने इस आदेश को मानने से इन्कार किया तो पलवल (हरियाणा) में उन्हें गिरफ्तार करके वापस बम्बई भेज दिया गया।

रॉलेट ऐक्ट का विरोध करने पर महात्मागांधी और अमृतसर के दो लोकप्रिय नेताओं डा० सत्यपाल तथा डा० किचलु को गिरफ्तार करके अज्ञात स्थान भेज दिया गया जिससे अमृतसर में उत्तेजना फैल गई और भीड़ ने अपने नेताओं की रिहाई के लिये जिला मजिस्ट्रेट की कोठी की ओर बढ़ना शुरु किया। सैनिकों के इन्कार करने पर भी भीड़ जब आगे बढ़ रही थी तब उन्होंने गोली चला दी जिसमें दो व्यक्ति मारे गये। भीड़ ने शहीद हुए व्यक्तियों को अपने कन्धों पर डालकर

जुलूस निकाला । मार्ग में भीड़ ने पांच अंग्रेजों की हत्या कर दी तथा कुछ अन्य भवनों को जला दिया । १० अप्रेल को अमृतसर नगर का शासन सैनिक अधिकारियों को सौंप दिया गया । ब्रिगेडियर जनरल डायर ने १२ अप्रेल को अमृतसरपहुंचकर लोगों को बन्दी बनाना प्रारम्भ कर दिया ।

१३ अप्रेल, १९१९ को अमृतसर के जलियावाला बाग में एक आम सभा की । इसका उद्देश्य सरकार की क्रूर नीति की निन्दा करना था । इस सभा में लगभग २५,००० पुरुष, स्त्रियां और बच्चे सम्मिलित हुये । जनरल डायर ने इस सभा को गैर कानूनी घोषित कर दिया, किन्तु सभा पर प्रतिबन्ध लगाने की नोटिस नगर में अच्छी तरह नहीं घुमाया गया । उसी समय जनरल डायर १०० भारतीय और ५० अंग्रेज सैनिकों को लेकर जलियावाला बाग पहुंच गया किन्तु वह मशीनगन बाग के अन्दर नहीं ले जा सके, क्योंकि जलिया वाला बाग का एक ही रास्ता था और वह भी इतना तंग था कि उसमें से मशीनगन की मोटर को अन्दर ले जाना कठिन था । इसलिये उसने मोटर में लगी हुई मशीनगनों से बाग के दरवाजे को तोड़ दिया । सभा की कार्यवाही शान्तिपूर्ण तरीके से चल रही थी । इसमें गांधी जी, डा० किचलू तथा डा० सत्यपाल की रिहाई की मांग की जा रही थी । तथा रौलेट ऐक्ट का भी विरोध किया जा रहा था ।

जनरल डायर बिना चेतावनी दिये उस समय तक भीड़ पर १६५० गोलियां चलाता रहा, जब तक कि वे समाप्त न हो गईं । सरकारी रिपोर्ट के अनुसार वहां ४००व्यक्ति मारे गये और करीब दो हजार व्यक्ति घायल हुए । इसमें सन्देह नहीं कि घायल और मरने वालों की संख्या निश्चित रूप से अधिक थी ।

जनरल डायर ने इस हत्याकाण्ड के बाद में अमृतसर, लाहौर, गुजरावाला आदि के निवासियों पर अनेक अत्याचार किया । पंजाब में मार्शल ला लागू कर दिया गया । इसके तहत १५ व्यक्तियों को मृत्युदण्ड तथा ४६ को आजीवन कारावास दे

दिया गया । मार्शल ला शासन के समय ऐसे अत्याचार किये गये जो खून को जमाने वाले थे । इसके अन्तर्गत सार्वजनिक स्थानो पर व्यक्तियों के कोड़े लगाये गये । पेट के बल पर गलियों को पार करने के आदेश दिये गये तथा सरकार की इस नीति के विरोध मे रवीन्द्र नाथ टैगोर ने अपनी सर की उपाधि वापस कर दी। इस हत्याकान्ड से समस्त देश में असन्तोष और घृणा फैल गई ।

कांग्रेस के अनुरोध पर पंजाब की घटनाओं की जांच करने के लिये सरकार ने १४ नवम्बर १९१९ ई० को मि० हण्टर की अध्यक्षता मे एक कमेटी नियुक्त की । हन्टर कमेटी के समक्ष बयान देते हुये जनरल डायर ने स्वीकार किया कि उसने लोगों को तितर बितर होने के लिये तीन मिनट का समय दिया और उसके बाद गोली चलाई। स्पष्ट है कि ३ मिनट मे पच्चीस हजार लोग तितर बितर नही हो सकते थे । हण्टर कमेटी के सदस्य न्यायाधीश रैंकिंन ने डायर से पूछा 'जनरल क्षमा करना क्या यह आंतक का रुप नही था ? उसने उत्तर दिया'' नही यह बडा भयानक कर्तव्य था जो मुझे पूरा करना पड़ा । मैंने सोच मुझे गोलियां अच्छी तरह खूब चलानी चाहिए ताकि मुझे किसी और व्यक्ति पर दुबारा गोली चलाने की और आवश्यकता न पड़े । मैं समझता हूं कि यह सम्भव है कि भीड़ को बिना गोली चलाये तितर बितर भी कर सकता था । परन्तु वह दुबारा मेरे पास आ जाती और मेरे ऊपर हंसती और मैं अपने आपको स्वयं बेवकूफ बना लेता ।''

मार्च १९२० ई० मे हण्टर कमेटी ने अपनी रिपोर्ट दे दी उसमे सरकारी अधिकारियों के दृष्टिकोण से सही माना गया । खिलाफत आन्दोलन मे गांधी जी ने हिन्दू और मुसलमानों को संगठित किया । इस आन्दोलन के अनुसार गांधी जी के निर्देशानुसार असहयोग एवं बहिष्कार की नीति के आधार पर अन्दोलन चलाया ।

१९२० ई० मे कलकत्ता और नागपुर के कांग्रेस अधिवेशन मे गांधी जी के असहयोग आन्दोलन की योजना को स्वीकार किया गया था । जिसमे निम्न कार्यक्रमों का उल्लेख था -

१-विदेशी वस्तुओं एवं शराब का बहिष्कार करना ।

२-स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग करना

३-सरकारी उपाधियों तथा अवैतनिक पदों का त्याग

४-सरकारी तथा सरकारी मान्यता प्राप्त स्कूलों व कालेजों का बहिष्कार करना ।

इन बहिष्कारों के द्वारा गांधी जी सरकार के साथ पूर्ण असहयोग करके सरकारी तन्त्र को विफल कर देना चाहते थे । इस बहिष्कार के साथ कांग्रेस ने निम्नलिखित रचनात्मक कार्य करने पर जोर दिया -

१- हिन्दू - मुस्लिम एकता को बढावा देना ।

२- छूआछूत को दूर करने का प्रयास करना ।

३- बच्चों की शिक्षा के लिये राजकीय शिक्षण संस्थाएं खोलना ।

४- विवादों को हल करने के लिये अपनी पंचायती अदालतों की स्थापना करना ।

५- स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग तथा खादी बुनने के लिए घर - घर सूत कातना ।

३-५- तत्कालीन परिस्थितियों में द्विवेदी जी का काव्य अपनी भूमिका निभाने में अद्वितीय रहा । आलोच्य कवि ने भारतवासियों को स्वर्णिम अतीत का चित्रण कराया । कवि ने प्रभाती (१९४६ ई०) की 'प्रभाती' शीर्षक कविता में महाभारत के वीर योद्धाओं, कालिदास आदि महान पुरुषों का स्मरण गौरव सहित किया है और भारत की पराधीनता पर क्षोभ व्यक्त किया है ।[१]

'विषपान' (१९४३ ई०) में समुद्र मन्थन तथा महादेव द्वारा विषपान की पौराणिक कथन और 'कुणाल' (१९४५ ई०) में सम्राट अशोक के पुत्र कुणाल की कथा

१- द्विवेदी, सोहन लाल प्रभाती, पृ०सं० ७-११ ।

का वर्णन किया है । कवि सर्वप्रथम किसान को जगाना चाहता है उसका विश्वास है कि किसान के जाग्रत हो जाने पर ही परतंत्रता का बहुत कुछ अंश खत्म हो सकता है । श्री सोहन लाल द्विवेदी ने गांधीवाद और राष्ट्रीयता का चित्रण अनुभूति पूर्ण शब्दों में किया है । ''भैरवी'' में एक ओर तो भारत के अतीत गौरव का स्मरण करते हैं और दूसरी ओर अपने देशवासियों को जागृति का सन्देश देते हैं :-

भूल गये क्या राम राज्य वह जहां सभी को सुख था अपना ।

\+ \+ \+ \+

जागो हिन्दू, मुगल, मरहठे, जागो मेरे भारतवासी ।
जननी की जंजीरे बजतीं , जाग रहे कडियों के छाले ।
सुना रहा हूं तुम्हें भैरवी , जागो मेरे सोने वाले ।

इसी प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी के कवियों ने देश-प्रेम की अभिव्यक्ति अनेक कविताओं में की है । फिर भी यह आश्चर्य की बात है कि सन् १६२० से लेकर १६४७ तक के स्वातन्त्र्य आन्दोलन की पूरी झलक हिन्दी के किसी प्रबन्ध काव्य में बलिदान की तुलना में हमारे कवियों की रचनाएँ हल्की ही पड़ती हैं । गुप्त, प्रसाद, पंत और निराला जैसे कवियों ने अनेक युवकों को फांसी के तख्ते पर झूलते देखकर भी उसका स्पष्ट रूप से चित्रण अपने काव्य मे नहीं किया । विशेषत: छायावादी कवि तो राष्ट्रीय आन्दोलन से प्राय: विमुख से ही रहे ।

अब जब कि हमारा राष्ट्र स्वतन्त्र हो गया है । तो राष्ट्रीयता की भावना का मंद पड़ जाना स्वाभाविक है । यह हमारे कवियों का कर्तव्य है कि जन-मानस में राष्ट्रीय भावों का स्फुरण करके उन्हें नवनिर्माण की ओर अग्रसर करें ।''[१]

गांधी वादी विचारधारा से प्रभावित कवियों में सोहन लाल द्विवेदी प्रमुख

१- साहित्यिक निबन्ध संस्करण ५६०, डा०गणपति चन्द्र गुप्त, पृ०सं० ५६० ।

हैं। गांवों की दशा और उनकी उपादेयता के सम्बन्ध में वे गांधी के विचारों से प्रभावित हैं। उन्होंने काव्य में गांवों की दीन दशा का उल्लेख किया है।

ये ग्राम उगाते अन्न धान
वे नगर प्रेम से चलते हैं।[1]

कवि कृषकों से कहते हैं -

''जब तक तुम न जागोगे , तब तक
नहीं जगेगा हिन्दुस्तान,
हिन्दुस्तान बसाते तुममें ,
क्या तुम हो इससे अनजान।''

''प्रभाती में कवि सोहन लाल द्विवेदी लिखते हैं कि संयोगिता रानी यदि तुम जग जातीं तो हम पराधीन क्यों होते ?''[2]

कवि के परतंत्रता सम्बन्धी उद्गार देखिये -

''या तो स्वतन्त्र हो जायेंगे
या तो हम मर मिट जायेंगे।''[3]

सोहन लाल द्विवेदी की 'प्रभाती' में गढ़वाल के प्रति' शीर्षक कविता उद्बोधन की है। वैसे इस पुस्तक की समस्त कविताएँ स्वातंत्र्य -आन्दोलन के सम्बन्ध में है। साथ ही काव्य कला की दृष्टि से भी उच्च कोटि की हैं। राष्ट्रीय आन्दोलन साहित्य में सोहन लाल द्विवेदी की कलापूर्ण कवितायें महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। सोहन लाल द्विवेदी के 'युगाधार' में भी उद्बोधन के गीत हैं। जैसे -

''बढ़ उधर हुंकार भर हो ,
जिधर गर्जन घोर ,
छीन ले झण्डा कि जिनका,
घट गया हो जोर।''[4]

१- जो कृषक उगाते साग पात, वे नगर लूटते रहते हैं।
दधि दूध और घृत की नदियां,ये नगर पिये ही जाते हैं।
ये भूखे रहकर नंगे रहकर , ये ग्राम जिये ही जाते हैं।
- द्विवेदी, सोहनलाल, युगाधार, सेवाग्राम की आत्मकथा, पृ०सं०१२।
२- द्विवेदी, सोहनलाल प्रभाती, पृ०सं० ११।
३- प्रभात फेरी, पृ०सं० ३७।
४- द्विवेदी, सोहन लाल, युगाधार और तरुण पृ०सं०४७।

पूजागीत (१९४४ ई०) की तो अधिकांश रचनाऐं उद्‌बोधन की ही हैं ।

कवि ने देश को जागरण की प्रेरणा दी है । जैसे -

"जाग । सोये देश ।
आत्महन्ता । अब न सो तू ।
जाग रण के बीज बो तू ।
मर न बनकर भीरु वर जय,
वीर का धर वेश,
जाग सोये देश ।"[१]

कवि देश के सैनिकों को इस प्रकार प्रेरणा देते हैं -

"आज युद्ध की बेला ।
बुझे मशाल न तेल डाल लो,
अस्त्र शस्त्र अपने संभाल लो,
हैं सोये हुंकार भर रहीं,
बापू बढ़ा अकेला ।
आज युद्ध की बेला ।
कोटि- कोटि मेरे सेनानी,
देखें तुममें कितना पानी ?
अन्तिम विजय हार अपनी है ।
है यह अन्तिम खेला ।
आज युद्ध की बेला ।"[२]

कवि ने पिक से युग का राग गाने का आग्रह किया है ।[३]

कवि द्विवेदी ने प्रभाती की दो कविताऐं ऐतिहासिक उपवास तथा व्रत की समाप्ति गांधी जी के उपवास तथा उनकी सफल समाप्ति पर लिखी है । बंगाल के अकाल से भी जनता के हृदय में क्षोभ की लहर दौड़ गई। प्रभाती की 'बुभुक्षित बंगाल' शीर्षक कविता बंगाल के अकाल पर लिखी गयी है । गांधी वादी विचारधारा से

१- द्विवेदी, सोहन लाल, पूजागीत, पृ०सं० २५ ।
२- पूजागीत, पृ०सं० ५९-६० ।
३- वही, पृ०सं० ६ ।

प्रभावित प्रभाती की अहिंसा अवतरण कविता है। इसके अतिरिक्त 'सेवाग्राम' 'प्रभातफेरी' आदि कविताएँ भी हैं। जिनमें स्थान-स्थान पर गांधी वादी विचारधारा का प्रतिपादन किया गया है। कवि ने खादी और स्वराज्य का भी उल्लेख किया है। प्रभातफेरी शीर्षक कविता में वे लिखते हैं :-

"खादी का बाना पहन लिया,
आजादी ध्येय हमारा है।"[१]

'अखण्ड भारत' शीर्षक कविता में कवि ने हिन्दू-मुसलमानों की आपसी फूट का उल्लेख करते हुये लिखा है कि हम औरों से क्या लोहा लेंगे जब हमारे घर में ही फूट हो गई है ?[२]

यद्यपि हिन्दू- मुस्लिम संघर्ष इस चरण में तीव्रतम था और भयानक दंगे होना देश के लिये साधारण बात तो हो गई थी फिर भी हिन्दू-मुस्लिम दंगों के चित्र अथवा हिन्दू-मुस्लिम एकता का आग्रह इस चरण के साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान नहीं रखता है। 'युगाधार' की 'बेतवा का सत्याग्रह' शीर्षक कविता में कवि ने सत्याग्रह का वर्णन किया है।[3]

'पूजागीत' में कवि ने देश में क्रान्ति और फलस्वरूप सत्याग्रहियों की गिरफ्तारी का उल्लेख किया है।

"हथकड़ी है सनसनाती ,
बेड़ियां हैं झनझनाती ,
आज बन्दी के स्वरों में ,
क्रान्ति के आह्वान जागे।
आज सोये प्राण जागे।"[४]

१- द्विवेदी, सोहन लाल प्रभातफेरी, पृ०सं० ३६।
२- अखण्ड भारत पृ०सं० ७३।
३- युगाधार बेतवा का सत्याग्रह , पृ०सं० ८६।
४- द्विवेदी सोहन लाल 'पूजागीत', पृ०सं० -११९।

राष्ट्रीय आन्दोलन के पंचम चरण में सोहन लाल द्विवेदी ने 'प्रभाती' की 'गांधी' 'जिन्ना और जवाहर' 'गांधी -तीर्थ या नंगी बस्ती' 'गांधी मन्दिर' 'वीर सुभाष चन्द्र' 'राष्ट्रपति' शीर्षक कविताओं में देश के नेताओं - गांधी, जवाहर तथा सुभाष, बंधु के प्रति श्रद्धा प्रकट की है। कोटि प्रणाम शीर्षक कविता में कवि ने देश के त्यागी नेताओं के प्रति आदर भाव प्रदर्शित किया है। 'युगाधार' में कवि ने 'बापू के प्रति' 'रेखाचित्र' 'बापू' 'गांधी' आदि कविताएँ बापू के प्रति पूजा- भाव से प्रेरित होकर ही लिखी हैं। 'बापू' को इस युग के कवियों ने नव-संस्कृति के दूत के रुप में देखा है। 'बापू के प्रति' शीर्षक कविता में कवि लिखते हैं -

''तुम वर्तमान के कर्मगान ।
तुम नवजीवन के नवविधान ।
दुर्बल दलितों के क्रान्तिघोष ।
तुम पद दलितों के शक्ति कोष,
मृत जीवन के तुम जन्म प्राण ।
तुम नव संस्कृति के नव विधान ।''[१]

स्पष्ट है कि तत्कालीन परिस्थितियों में द्विवेदी जी के काव्य की अनुपम भूमिका रही ।

१- द्विवेदी, सोहन लाल 'युगाधार' 'बापू के प्रति' पृ०सं० १-२ ।

चतुर्थ अध्याय

द्विवेदी जी की रचना यात्रा में सांस्कृतिक चेतना का क्रमबद्ध विकास

बालगीतों में सांस्कृतिक चेतना

द्विवेदी जी के बालगीतों का अनुशीलन करने पर यह अनुमान लगता है कि द्विवेदी जी के बच्चों में नैतिक, सामाजिक तथा धार्मिक, राष्ट्रीय भावना, बड़ों को प्रणाम करना आदि भावनाओं को प्रोत्साहित किया है । पंचतन्त्र से ली गई दश-कहानियों के अनुवाद में जो शिक्षा बालकों को मिलती है वह अन्यत्र देखने को नहीं मिलती वे इन कहानियों के माध्यम से बालकों का सर्वांगीण विकास करना चाहते हैं । बच्चों यस्य बुद्धिर्तस्य बलम् निर्बुद्धो स्तु कुतो बलम् बने सिंह: मदोन्मत्त: शशकेन निपातित: ।। पंच-तंत्र से लिया गया यह आदर्श वाक्य दस कहानियों में शेर और खरगोश की कथा की पुनरावृत्ति में प्रयुक्त हुआ है । उनका कहना हैकि बच्चों, "जिसके पास बुद्धि है वही बलवान है, बुद्धिहीन बलवान कहां हो सकता है जिस प्रकार बन में मतवाला शेर एक खरगोश के द्वारा कुएं में गिराकर मार डाला गया ।" उनकी ये पंक्तियां देखिये -

> "समझा यहीं छिपा है बैरी, उसने की न जरा भी देरी ।
> कूदा वह दुश्मन के ऊपर, डूब गया जा जल के भीतर ।।"[१]

कवि "हाथी और खरगोश" की कहानी सुनाकर बताता है कि किस प्रकार हाथियों से खरगोश विजय पाते हैं यह भी बुद्धि बलम का परिचायक है । हाथी, खरगोशों के घरों को खण्डहर बना रहे हैं । इस आपदा से बचने के लिये खरगोशों की चालाकी देखिये -

> "अहा । चांद के बीच मंच पर ,
> है खरगोश दीखता मनहर ।

१- दशकहानियां, पृष्ठ -२ ।

मन ही मन यह समझा बलधर ,
श्री खरगोश यही हैं नृप वर ।
सचमुच हुक्म उन्होंने भेजा ,
हाथी लौट तुरन्त घर आया
उसको सचमुच काम सहेजा ।
बोला नृपवर से मिल आया ।''[1]

बलवान आदमियों से बुद्धि के द्वारा ही विजय प्राप्त हो सकती है । चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब पानी में दिखाकर खरगोश ने हाथियों के भीतर भय एवं आतंक की भावना भर दी है ।

यदि घर में कभी फूट हो तो दुश्मन को कभी नहीं बुलाना चाहिये नहीं तो स्वयं को खतरा सामने आ सकता है तथा बाद में पछताना पड़ेगा । कुएँ में रहता हुआ एक मेढ़क कुछ मेढ़कों से परेशान होकर नागों के राजा को कुएँ में ले आया । नागों के राजा उन सभी मेढ़कों को खा डाला है । साथ ही उसके रिश्तेदारों एवं उसके पुत्र को भी एक दिन खा डाला जब स्वयं जान खतरे में फंसती दिखाई दी तब उसकी पत्नी (मेंढ़की) ने कहा स्वामी इस घर को छोड़कर दूसरा घर बसाएँ इसी में भलाई है तब अपनी जान बचाकर गंगदत्त (मेढ़क) ने दूसरा घर बसाया जिससे बहुत हंसी हुयी एवं रिश्तेदारों व पुत्र की भी जान चली गई । कवि की ये पंक्तियां दृष्टव्य हैं -

''जबघर में हो फूट कभी ,
दुश्मन को नहीं बुलाना ।
गंगदत्त मेढ़क बनकर मत ,
जग में हंसी कराना ।''[2]

कवि ने समय-समय पर अपने मित्र के प्रति सतर्क रहने की भी सलाह बच्चों एवं देश-वासियों को दी है । अपने मित्र की परख करनी चाहिये क्योंकि

१- दश कहानियां , पृ०सं० ११ ।
२- वही , पृ०सं०१५ ।

विद्वान कवि 'शेक्सपियर' के फेथफुल फ्रेण्ड्स नामक शीर्षक में साफ शब्दों में (उन्होंने) कहा है कि वफादार दोस्त, प्राप्त करना असम्भव सा प्रतीत होने लगा है।

"एवरी वन दैट फ्लैटर्स दी ,
इज़ नो फ्रेण्ड इन मिसरी ।
वर्ड्स आर इज़ी लाइक दि वाइण्ड,
फेथफुल फ्रेण्ड्स आर हार्ड टू फाइण्ड ।"

कवि बच्चों को वफादार मित्र खोज कर ही उस पर विश्वास करने की सलाह देता है। स

एक बन्दर की दोस्ती एक मगर से हो गई मगर अपनी पत्नी के कहने मात्र पर बन्दर के प्राण लेने के लिये उसे अपनी पत्नी के पास लिये जा रहा था। मगर बन्दर ने जब समझ लिया तब उसने बात बनाया कि दोस्त मैं अपना कलेजा पेड़ की डाल पर टांग आया हूं। अतः मुझे वहां वापस ले चलो ताकि कलेजा भी मेरे साथ-२ जा सके। पेड़ तक आ जाने के बाद बन्दर ने मगर को बहुत डांटा फटकारा जिससे मगर शर्मिन्दा हो गया।

कवि की ये पंक्तियां देखिये -

"तुझसा कौन नीच नादान,
लेने चला मित्र के प्रान।
अब न कभी फिर आना नीच,
अपना मुंह न दिखाना नीच,
हुआ मगर शर्मिन्दा खूब ,
गया तुरन्त ही जल में डूब।
तब से कभी न आया पास,
हुआ मित्रता का यों नाश।"[१]

कवि ने यह भी बताया है कि यदि दोस्त नादान है तो वह भी प्राण घातक हो सकता है। एक बन्दर की दोस्ती एक भालू से हुई। बन्दर भालू को बहुत प्यारा होते हुये भी नादानी में भालू अच्छाई करने के स्थान में

१- दस कहानियां पृष्ठ सं० ८०।

बन्दर के प्राण ले लिये। कवि ने नादान दोस्त न करके सुख से सारे संसार में विचरण करने की सलाह देशवासियों को दी है - ये पंक्तियां द्रष्टव्य हैं -

''इससे कहता हूं ध्यान धरो ,
नादान दोस्त मत कभी करो।
यह सीख हमेशा कान धरो ,
फिर सुख से जहां चाहो विचरो।''[१]

वे समय-२ पर बच्चों में सूझ बूझ के गुण लाते रहे। मात्र बुद्धू बनकर 'कूपमण्डूक' ही न रह जायें प्रयत्नशील रहे हैं। 'अन्धेरनगरी और मूर्ख पण्डित' इन दो कहानियों के माध्यम से सोच विचार कर कार्य करने की शिक्षा बच्चों को दी। पंडित विद्वान होते हुये बड़ी नादानी करके अपने प्राणों की आहुति दे दी। किसी कार्य के करने के पहिले उसके परिणाम को समझना आवश्यक हो जाता है। अपनी विद्वता के आक्रोश में मरे हुये शेर में प्राण संचार करके स्वयं मृत-प्राप्य हो गये। कवि की ये पंक्तियां द्रष्टव्य हैं -

''थर थर लगे कांपने पांव ,
पंडित भूले सारे दांव ।
थे तीनों पंडित लाचार ,
क्या खूब ही हाहाकार।
पर सुनता था कौन पुकार ,
झपट शेर ने डाला मार ,
जब भी करो कभी कुछ काम ,
पहले ही सोचो परिणाम।''[२]

अन्धेर नगरी और अनबूझ राजा टका सेर भाजी टका सेर खाजा में गुरु और शिष्य की बुद्धिमानी तथा राजा की बुद्धीहीनता दर्शा कर 'यस्य बुद्धि: तस्य बलम्' की पुनरावृत्ति की है। बुद्धि के बल पर गुरु, शिष्य को फांसी के फन्दे

१- दश कहानियां, पृष्ठ सं० १० ।
२- वही, पृ०सं० २४ ।

से कैसे बचाते हैं फलस्वरूप राजा स्वयं फांसी के फन्दे में झूलकर मृत्यु को प्राप्त करता है कवि की ये पंक्तियां देखिये -

> ''चढ़ा फांसी राजा बजा खूब बाजा,
> थी अन्धेर नगरी था अनबूझ राजा ।
> प्रजा खुश हुई जब मरा मूर्ख राजा,
> बजा खूब घर घर बधावे के बाजा । ''[१]

कवि ने बाल गीतों में भारतीय त्यौहारों का वर्णन कर भारतीय संस्कृति का परिचय कराया है । हमारे देश में त्यौहारों का क्रम इस प्रकार कड़ी के रूप में जुड़ा है कि हर माह में एक न एक त्यौहार आते रहते हैं । जिससे मनुष्य अपने दु:ख एवं कष्ट भूल जातेहै हैं और आपसी मत-भेद भी जाता रहता है और सुखमय जीवन बिताने की दिशा में अग्रसर होता रहता है । कवि ने 'दीवाली' एवं होली आदि त्यौहारों का वर्णन करके लोक में मंगल कामना एवं समानता की भावना का परिचय कराया है । दीवाली का वर्णन करते हुये कवि कहता है कि त्यौहार में हर जगह प्रकाश ही प्रकाश रहता है । दीपक घर के विभिन्न जगहों में रखकर प्रकाश फैलाते हैं । राजा और कंगले के घर में वहीदीप सुन्दर सुन्दर जलने से आशय समानता का प्रतीक है । बच्चों को आपसी मतभेद को हटाकर आपसी सौहार्द्र को बनाये रखने की सलाह कवि देता है । ये पंक्तियां देखिये -

> ''राजा के घर , कंगले के घर
> हैं वही दीप सुन्दर सुन्दर ।
> दीवाली की श्री है पग - पग
> जगमग जगमग जगमग जगमग ।''[२]

होली के त्यौहार के माध्यम से कवि ने बसन्त ऋतु की हरियाली एवं मस्ती भरे वातावरण को साकार कर दिया है । पतझर के बाद पेड़ों में

१- दस कहानियां, पृष्ठ सं० २२ ।
२-'बांसुरी''दीवाली' पृष्ठ सं० ५४ ।

नई-नई कोंपलों का निकल आना प्रकृति की सुन्दरता में चार चांद लगा देता है ।

होली का त्योहार रंगों का त्योहार है । रंग प्यार, समानता और खुशी का द्योतक है । भारतीय त्योहार में सभी बराबर हैं कोई ऊंच नीच नहीं है । उनकी ये पंक्तियां देखिये -

"आज सभी हो गये बराबर, कोई ऊंच न नीच है ,
जहां प्रेम है वहां न रहता ,कोई अन्तर बीच है ।
जिसको भी रंग दिया, दिया उस पर ही प्यार उलीच है ।
जो होली के रंग से डरता, समझो निरागवार है ।
सब त्योहारों से बढ़ करके , होली का त्योहार है ।"[१]

इस त्योहार को कवि ने मिलन का त्योहार भी माना है उसदिन शत्रु भी मित्रों से गले लगकर आपसी मतभेद खो बैठते हैं तथा 'वसुधैव कुटुम्बकम,' की भावना को साकार बना देते हैं । कवि की ये पंक्तियां देखिये -

"होली का त्योहार सभी से मिलने का त्योहार है ।
जात-पांत को आज मानने से सबको इन्कार है ।
भाई-चारा सबसे रखने को यह दिन तो तैयार है ।
एक रंग में रंगे सभी तो दुनियां साकार है ।
सब त्योहारों से बढ़ करके होली का त्योहार है ।"[२]

कवि बसन्त ऋतु की मस्ती को फाग गाने के रूप में देखकर दुनियां को खुशहाल देखता है तथा होली के त्योहार को सब त्योहार से बड़ा समझता है । कवि की ये पंक्तियां देखिये -

"बजती है ढफ झांझ ढोल औ झमक रही करताल है,
उड़ती है अबीर कुंकुम औ उड़ता लाल गुलाल है ।
छिड़ा फाग मस्ती का दुनियां दिखलाती खुशहाल है ,
आज सभी से गले लगाकर मिलो, मिलन त्योहार है ।
सब त्योहारों से बढ़ करके , होली का त्योहार है ।"[३]

१- यह मेरा हिन्दुस्तान है । होली का गीत पृ०सं० ३२ ।
२- वही पृ०सं० ३३ ।
३- वही पृ०सं० ३३ ।

भारतीय त्योहार के बाद राष्ट्रीय-पर्व की जानकारी कवि ने काव्य में दी है अंग्रेजों की दासता से छुटकारा दिलाने वाला 'स्वतन्त्रता दिवस' अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। पन्द्रह अगस्त सन् १९४७ ई० को भारत स्वतन्त्र हुआ था। तथा १९५० ई० को २६ जनवरी को भारत में संविधान लागू हुआ था। अगर १५ अगस्त को २६ जनवरी का जनक कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। स्वतन्त्रता दिवस लाने में कितनी कुर्बानियां करनी पड़ी उनका परिचय कवि ने बड़े ही आकर्षक ढंग से कराया है उनकी ये पंक्तियां देखिये -

''यह पर्व कि जिसको लाने को,
जन-गण ने रण अभियान किया,
यह पर्व कि जिसको लाने को,
कितनों ने ही बलिदान किया,
यह पर्व कि जिसको लाने को,
हमने तन मन धन छोड़ दिया,
यह पर्व कि जिसको लाने को,
हमने सुख से मुख मोड़ लिया।''[1]

इस पर्व को कवि ने उल्लेख - अलंकारों से विभूषित किया है यथा -

''यह विजय -दिवस यह अभय- दिवस,
उल्लास दिवस, इतिहास - दिवस,
यह पुण्य - दिवस, यह स्वर्णदिवस,
जीवन का दिव्य विकास - दिवस।''[2]

कवि का कहना है कि भारत को पूर्ण स्वतन्त्रता २६ जनवरी, सन् १९५० में ही प्राप्त हुई है क्योंकि भारतीय संविधान इसी दिन लागू हुआ था इस दिवस पर खुशियां मनाने की सलाह देता है -

---

१- 'यह मेरा हिन्दुस्तान है' अमर पर्व, पृ०सं० ४६।
२- वही, पृ०सं० ४६-४७।

"आया है गणतन्त्र दिवस ,
गाओ जय भारत गान रे ।
आया है जनतन्त्र दिवस ,
छोड़ो मुरली की तान रे ।"[१]

पृथ्वी से लेकर आकाश तक स्वतन्त्रता की लहर में मुस्करा रहे हैं । स्वतन्त्रता प्राप्ति पर कवि खेतों की उपज बढ़वाकर दासता काल में हुई क्षति को पूर्ण कर लेना चाहता है यथा -

"हम स्वतन्त्र आकाश धरा ,
है अपनी आज स्वतन्त्र रे ।
+ + +
हीरों से मोती से भर दो ,
मां का स्वर्ण दुकूल से ।"[२]

कवि बच्चों का परिचय देश के महान नेताओं से कराकर उनमें सुनागरिक, बनने के संस्कार डालना चाहता है वह समझता है कि आज का बच्चा ही कल देश का नेता होगा । पं० मोतीलाल नेहरू बड़े ही वैभवशाली व्यक्ति थे सभी इन्हें झुक कर प्रणाम करते थे उनकी ये पंक्तियां देखिये -

"इनके पिता बड़े ही नामी ,
सब देते थे उन्हें सलामी ,
उनका मोतीलाल नाम था ,
बड़े आदमी बड़ा काम का ,
मोती लाल बड़े ही दानी ,
मोती लाल बड़े ही ज्ञानी ।"[३]

कवि गान्धी जी को प्रसन्न मुख देख रहा है वह बच्चों एवं देशवासियों को हंसमुख रखकर स्वस्थ मस्तिष्क बनाये रखना चाहता है -

"बापू तुम अच्छे लगते हैं ।
जब कह कहे लगाते ।
मैं हंस हंस कर दुगना हो जाता -

१- यह मेरा हिन्दुस्तान है अमर पर्व, पृ०सं० १० ।
२- वही, पृ०सं० ११ ।
३- नेहरू चाचा पृ०सं० १२, एक गुलाब पृ०सं० १६ ।

तुम दुगुने हो जाते ।''[1]

बापू के पर-वर्ती नेता के रूप में कवि पं० जवाहर लाल नेहरू से परिचय कवि बच्चों को कराकर यह बताना चाहता है कि नेहरू जी ने स्वाभिमान को बनाये रखकर देश को स्वतन्त्र कराया उनकी ये पंक्तियां देखिये -

''नेहरू चाचा थे अभिमानी ,
लगी यही धुन मन में ठानी,
भारत का दुख दूर करूंगा ,
दुनियां को मजबूर करूंगा ।''[2]

शान्ति के अग्रदूत भारत के द्वितीय प्रधान मंत्री श्री लाल बहादुर शास्त्री जी को कवि ने सच्चा सपूत बनने तथा वीर भावना को जगाने वाला कहा है । उनकी ये पंक्तियां देखिये -

''चमके तो चमके दुनियां में ऐसा भाग्य सितारा ।
लाल बहादुर की लाली ने जैसा रंग पसारा ।
सदियों की सोई भारत की वीर भावना जागी ।
जागो सिंह सपूत हमारे वीर भावना जागी ।''[3]

भारत की तृतीय एवं षाष्ठम् प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गान्धी जी का वर्णन करके कवि खुशहाल एवं अमीर देश की कामना करता है । उनकी ये पंक्तियां देखिये -

''इन्हें देश है सबसे प्यारा ।
जैसे है नभ में ध्रुव तारा ।
चमके चम-चम भारत अपना ।
था इनके जीवन का सपना ।

\+ + + +

इन्दिरा दीदी की जय गाये ।''[4]

१- 'बच्चों के बापू' पृ०सं० ७ ।
२- नेहरू चाचा पृ०सं० १६ ।
३- यह मेरा हिन्दुस्तान है , पृ०सं० १३ ।
४- एक गुलाब , पृ०सं० २६ ।

कवि देश के भावी कर्णधार एवं शासक के रुप में संजय गान्धी को देखना चाहता है। उनकी कामना है कि युवा-समाज को अपनी जिम्मेदारी निभाना चाहिये। संजय गान्धी को देश के नेता के रुप में पाकर खुशहाल भारत की कामना करते हुये कवि कहता है कि -

"उनके बेटा संजय गान्धी ,
आए जैसे बनकर आंधी ,
जिससे जाग उठी तरुणाई।
नई जवानी सब में आई।
+ + + +
हम सब भारत मां के बच्चे ,
बनें देश के सेवक सच्चे ,
हटे देश की विपदा सारी ,
भारत माता हो बलिहारी।"[१]

किन्तु असमय में ही संजय गान्धी भगवान को प्यारे होकर काल के गाल में समा गये कवि की मनो कामना अधूरी रह गई। किन्तु संजय गान्धी के न रहने पर उनके अग्रज माननीय श्री राजीव गान्धी भारत की बागडोर संभाले हुये हैं।

स्वतन्त्रता संग्राम में जिन क्रान्तिकारियों ने अपनी कुर्बानी दी उनका वर्णन कर कवि देश के लिये हमेशा कुर्बान होने की प्रेरणा बच्चों एवं देश वासियों को देता है। 'सुभाष चन्द्र बोस' एक महान क्रान्तिकारी थे उनका कहना था 'तुम मुझे खून दो मैं तुम्हें आजादी दूंगा।' वर्णन बड़े ही मनोयोग से किया है। ये पंक्तियां द्रष्टव्य हैं -

"बदल दिया दुनिया में जिसने ,
भारत का इतिहास।
जहां आ गये तुमसे मिलने ,
वह थी वीर सुभाष।"
+ + + +

१- एक गुलाब, पृ०सं० ३१।

मानेंगे हम बात तुम्हारी
हमको भी बतलाओ ।''[1]

भारतीय-संस्कृति के अन्तर्गत बड़ों को प्रणाम करना चाहिये कवि ने यही भावना बच्चों में कूट कूट कर भरने के लिये अपने काव्य में बड़े ही मनोहारी ढंग से वर्णन किया है ये पंक्तियां देखिये -

''बापू तुमसे भी बूढ़े ,
ये कौन पास में आज ?
क्या बतलाया सबके प्यारे ,
मालवीय महराज ,
किया उन्होंने भारत मां का,
सबसे बढ़िया काम,
प्यारे बच्चों हाथ जोड़कर ,
उनको करो प्रणाम ।''[2]

भारत के प्रथम राष्ट्रपति 'डा०राजेन्द्र प्रसाद' का वर्णन भी कवि से अछूता नहीं रहा उनकी ये पंक्तियां देखिये -

''दिल खुश हो जाता है ,
जिनकी आ जाने पर याद ,
बापू देखो चले आ रहे ,
वह राजेन्द्र प्रसाद ।''[3]

'अब्दुल गफ्फार खां' बड़े ही सौम्य स्वभाव के थे उनका व्यक्तित्व अनुपम है ।

''ये हैं कौन भले से लगते ,
सीधे कितने भोले ,
खां अब्दुल गफ्फार ,
चाहता जी इनके संग हो लें ।''[4]

१- 'बच्चों के बापू' पृ०सं० २१ ।
२- वही, पृ०सं० २२ ।
३- वही, पृ०सं० १८ ।
४- वही, पृ०सं० १६ ।

'सरदार बल्लभ भाई पटेल' जो हमेशा देश की स्वतन्त्रता एवं स्वतन्त्र भारत की खुशहाली के विषय में सोचते रहते थे। कवि की ये पंक्तियां देखिये -

''और आ रहे कौन चले ये,
जो न कभी मुसकाते।
ये सरदार पटेल देखकर,
इनको सब घबड़ाते।
कम करते हैं बात, काम,
करते हैं सबसे ज्यादा।
इसीलिये इनसे सब दबते,
ये पटेल जी दादा।''[1]

गांधी जी के पुजारी 'महादेव देसाई' का वर्णन कवि ने अपने काव्य में किया है उनकी ये पंक्तियां देखिये -

''ये बैठे हैं कौन पास में
महादेव देसाई।
जो लिख देते बात तुम्हारी,
ये हैं अच्छे भाई।''[2]

'जमुना लाल बजाज' का वर्णन कवि ने बड़े ही सुन्दर ढंग से किया है कवि की ये पंक्तियां देखिये -

''कौन आ रहे ये मुसकाते
बातें करते आज।
अच्छा वे भूला भाई,
ये जमुना लाल बजाज।''[3]

'महाराजा रणजीत सिंह' का इतिहास सुनाकर कवि भारत-वासियों में साहस, वीरता एवं देश-प्रेम के भाव पैदा करना चाहता है उनकी ये पंक्तियां देखिये-

''था मचा हुआ संग्राम घोर,
उठता था रण का रोर शोर,

१- 'बच्चों के बापू', पृ०सं० १६।
२- वही, पृ०सं० १५।
३- वही, पृ०सं० १५।

था शत्रु चढ़ा आता घर पर ,
थी बड़ी निराशा सभी ओर ।

+ + + +

ऐसी थी जल की तीव्र धार । ''[१]

महापुरुषों एवं नेताओं के वर्णन से कवि ने देश-वासियों को जो शिक्षा दी है वह स्वर्णाक्षरों में लिखी जाने योग्य है। कवि की ये पंक्तियां देखिये -

''तब से कानों में गूंज रहा -
उस सेना पति का स्वर गंभीर ,
जिसके मन में है अटक,
अटकते वही, नहीं दृढ़ धीरवीर ।
कितनी ही मिलती अटक,
अटक-सी, इस मानव जीकारण में ।
अटको न कहीं तुम बढ़े चलो ,
बेखटके अडिग बने प्रण में ।''[२]

४-ब- बधाई लोक संस्कृति का एक अंग है। लोक जीवन में उल्लास और उत्साह के क्षणों में विशेष रुप से विवाह, पुत्रोत्सव, आदि मांगलिक अवसरों पर प्राय: बधाइयां भेजी जाती हैं। कवि ने यहां बसन्त के अवसर पर भ्रमर को बधाइयां दी हैं। बसंत समग्र सृष्टि में सौन्दर्य और सृजन को लेकर अपरिमित विस्तार करता है। फूल-फूल, पात-पात, डाल-डाल सभी बसंत में एक नये रस से भर जाते हैं। कवि ने मकर -सोत्सव के इस पर्व पर बधाई देता हुआ दिखाई पड़ता है - कवि की ये पंक्तियां देखिये-

''मधुकर ,
आज बसन्त बधाई ,
स्वर्ण ताम्र लोहित नव पल्लव ,
सुर धन का लेकर श्री वैभव ,
खिले खिली नीलम पल्लव से ,

१-'बांसुरी' पृ०सं० ६१ ।
२- वही, पृ०सं० ६४ ।

आंगन की अमराई ,
आज बसंत बधाई ।''[१]

'पंत ' प्रकृति के सुकुमार कवि होने के नाते प्रकृति का सजीव चित्रण किया है । द्विवेदी जी ने राष्ट्रीय प्रचार की कविताओं के अतिरिक्त उनकी प्रकृति प्रेम की कवितायें भी अपने देश की सुगंध लिये आती है । ऐसी कविताओं में न कुंठा है न सेक्स । ये कवितायें बसंत ऋतु की भांति प्रफुल्ल हैं, जिनमें कोपलें फूटती हैं, आम बौराते हैं, फगुनाहट चलती है, चैती महकती है, महुये चूते हैं, कोकिल कूकती हैं । इन कविताओं में भारत-वर्ष की ऋतुएं विभिन्न परिदृश्य बदलती है । प्रकृति का यह राग-रंजित स्वरुप उनके राष्ट्र-प्रेम की व्यापक सीमा का एक अंग है । कोई भी महान कवि अपने देश की प्रकृति से अनदेखा नहीं रह सकता । द्विवेदी जी की कविताओं में प्रकृति का आंचलिक सौन्दर्य अपनी विशेष सुषमा के साथ अभिबद्ध हुआ है ।

कवि ने राष्ट्रीय मनोभावों का प्रक्षेपण प्रकृति पर भी किया है । यहां तक कि वे पिक से युगानुरुप राग छेड़ने का संकेत करते हैं । ऐसा प्रतीत होता है जैसे वे अपने प्राणों का स्वर ही पिक को दे देना चाहते हैं । तभी तो कवि पिक से नवल निर्माण का संकेत करता है । पिक को बसन्त का दूत कहा जाता है बसन्त के आने पर तरुओं के पीले पत्ते झरते हैं । किन्तु कवि एक नये बसन्त की सर्जना करना चाहता है तथा जीर्ण-शीर्ण रुढ़ियों के पत्तों को तरु का बोझ नहीं बनने देना चाहता -

''झरें पीले पत्र तरु के , आज जागें भाग्य मरु के ।
जीर्ण जग इस भव पुरातन में , नवल निर्माण ला पिक ।''[२]

कवि अपने मन के अनुकूल ही मधुपों से मुक्ति के गीत गाने का तथा कोकिल से छन्दों के बन्दनवार सजाने को कहता है -

---

१- बासन्ती पृ०सं० १ ।
२- सोहन लाल द्विवेदी पूजागीत सं० १९५९, पृ०सं० ६ ।

"मुक्ति मधु ऋतु के मधुप के ,
छन्द बन्दनवार छा पिक ,
आज युग का राग गा पिक,
राष्ट्र-प्रेम का राग गा पिक।"[१]

राष्ट्र-प्रेम कैसा उन्माद है। राष्ट्र प्रेम का यह राग ही द्विवेदी जी की कविताओं में बसन्त कोकिल का पंचम राग बन गया है। राष्ट्र-प्रेम की भैरवी का स्वर ही समस्त बसन्त माधुरी पर अनुगूंज छोड़ता है। प्रकृति सौन्दर्य के चितेरे जब प्रकृति के सुन्दरतम् में ही मुग्ध हो जाते हैं तब द्विवेदी जी का कवि प्रकृति में बन्दे मातरम् का राग रंजित करता है।

प्रकृति का सहज सौन्दर्य भी उनकी कविता का श्रृंगार बन सका है। मलयानिलि की किसी लहर ने तरुओं को, तृण को और पल्लवों को छूकर सजग कर दिया है। इस पार्थिव जगत का कण-कण चैतन्य हो उठा है , लताओं ने अलकें समेट ली हैं तथा सुमनों ने पलकें खोल ली हैं। कवि ऐसे वातावरण में एक गीत गाना चाहता है तथा मधु की दृष्टि की कामना करता है। वह इस आई हुई मलयानिल का एक स्नेहिल स्पर्श पाकर अपनी कविता को भी मलयानिल की भांति स्वच्छन्द प्रवाहित करना चाहता है -

"आयी मलयानिल की लहरी, तृण तरु पल्लव हुये सजग से।
कण-कण में चेतनता लहरी, आई मलयानिल की लहरी ।

+ + + +

गा मेरे कवि तू भी मृदु मृदु, बरसे विश्व प्राण मधु - मधु।
पाकर कोमल स्नेह स्पर्श वो, मेरी कविता। तू भी बह री।"[२]

बाल कविताओं में द्विवेदी जी की प्रकृति उपदेशात्मक रूप लेकर आयी है। वहां पर पर्वत शीश उठाकर जीवन के उच्च आदर्शों की प्रेरणा देते हैं। सागर जीवन में गहराई लाने का सन्देश देता है -

---

१- सोहन लाल द्विवेदी पूजागीत सं० १९५८, पृ०सं० १० ।
२- वही, पृ० सं० १० ।

"पर्वत कहता शीश उठाकर ,
तुम भी ऊंचे बन जाओ ।
सागर कहता है लहराकर ,
मन में गहराई लाओ ।"[१]

प्रकृति का यह उपदेश परक गीत सहज एवं बालकों के चारित्रिक संस्कारों को मजबूत बनाने वाला है । प्रकृति बालकों में श्रेष्ठ आदर्श के लिये संकेत प्रदान करती है-

"पृथ्वी कहती धैर्य न छोड़ो कितना ही हो सिर पर भार ,
नभ कहता है फैलो इतना ढक लो तुम सारा संसार ।"[२]

प्रकृति-प्रेम सम्बन्धी रचनाओं में आंचलिकता को विकसित किया गया है । महुवा के तरु के नीचे किसी ग्राम्या के द्वारा महुवे बीनने का बिम्ब-विधान अत्यन्त ही प्रभावपूर्ण बन पड़ा है -

"वह महुवा बिनती तरु नीचे ,
वह लाज भरी सौन्दर्य भरी ।
है देख नहीं सकती ऊपर ,
फिर भी आंखे बनती चंचल ।
वह देख रही अविरत भू पर ।"[३]

अपने प्रण पर अडिग होने से लक्ष्य की प्राप्ति सम्भव है । परन्तु कार्य की सिद्धि होने पर सबका सिर मौर बन जाता है । कवि का यह संकेत बड़ा ही मार्मिक है -

"युग-युग से है अपने पथ पर ,
देखो कैसा खड़ा हिमालय ।
डिगता कभी न अपने प्रण से ,
रहता प्रण पर अड़ा हिमालय ।

१- सोहन लाल द्विवेदी बांसुरी सं० १६५७ , पृ०सं० १०४ ।

२- वही ।

३- वही ।

जो-जो भी बाधायें आईं ,
उन सबसे ही लड़ा हिमालय,
इसीलिये तो दुनिया भर में ,
हुआ सभी से बड़ा हिमालय ।''[१]

कवि हिमालय के माध्यम से बालकों एवं देश-वासियों के हृदय में अपने प्रण से अचल रहने का सन्देश दिया है तथा यह भी बताया है कि सफलता प्रण पर अचल रहने पर अवश्य मिलती है ।

''अचल रहा जो अपने प्रण पर ,
लाख मुसीबत आने में ,
मिली सफलता जग में उसको,
जीने में मर जाने में ।''[२]

मुस्कान एक अनुपम निधि है संसार के जितने भी सुख उपादान हैं । सभी मुस्कान के द्वारा प्राप्त किये जा सकते हैं । दु:ख के समय भी मुस्काते रहने की प्रेरणा कवि ने दी है -

''कांटों की नोंकों को सहकर ,
फूल हमेशा मुसकाता ,
पत्तों की गोदी में रहकर ,
फूल हमेशा मुसकाता ।''[३]

जीवन के हर क्षेत्र में दु:खमय पंथ सुखमय सुगम पन्थ में परिवर्तित करने के लिये कवि हमेशा मुस्काते रहने की सलाह देता है । कवि की ये पंक्तियां देखिये -

''चल पड़ो जिधर ही मुसकाओ ,
पग पग उजियाली छिटकाओ ,
हो जाये सुखमय सुगम पन्थ ,
हंस हंसकर फूल बिछा जाओ ।''[४]

१-सोहन लाल द्विवेदी बांसुरी १६५७, पृ०सं० १२ ।
२- वही, पृ० सं० १३ ।
३- वही, पृ० सं० २६ ।
४- वही, पृ० सं० २८ ।

अगवानी लोक संस्कृति का एक अंग है। लोक जीवन में जब कोई किसी के पास जाता है तो उसकी अगवानी की जाती है। विशेषकर विवाह के समय, किसी महापुरुष के आगमन पर अगवानी की जाती है। कवि ने बसन्त के आगमन पर सरसों का पीताम्बर पहने और धानी रंग की साड़ी पहने हुये नायिका से अगवानी करा रहा है। कवि की ये पंक्तियां देखिये -

"सरसों का पीताम्बर पहने,
औ पहने है साड़ी धानी,
बोले सर्दी सब दूर हटो,
अब है बसन्त की अगवानी।"[१]

इस प्रकार द्विवेदी जी के काव्य में प्रकृति के विकास की विविधभाव भूमियां अपने विस्तार को नहीं प्राप्त कर सकी। न ही प्रकृति का स्वतन्त्र एवं मनोरम चित्रण हो सका है। फिर भी उनके काव्य में जिस प्रकृति के दर्शन होते हैं, उसमें सौन्दर्य की उन्मादक वृत्तियां, राष्ट्रीय भावों का संचरण करने वाली भूमियां एवं मुक्ति की गंधवाही धारायें भी तरंगित होती है।

कविवर 'गिरिराज' एवं 'हिमालय' इन दोनों शीर्षक से हिमालय का ही वर्णन करता है किन्तु शीर्षक में भिन्नता मात्र किये है। गिरिराज का वर्णन कर कवि भौगोलिक परिचय बच्चों को कराता हुआ हिमालय को एशिया खण्ड में स्थित पर्वतों का राजा बताता है। हिमालय का वर्णन करके अपने देश की संस्कृति एवं मातृभूमि के प्रति उद्गार व्यक्त करता है।

"इस पार हमारा भारत है,
उस पार चीन-जापान देश,
मध्यस्थ खड़ा है दोनों में,
एशिया खण्ड का यह नगेश।"[२]

१- यह मेरा हिन्दुस्तान है पृष्ठ सं. २६

२- बांसुरी पृ०सं० १५।

पहाड़ की चोटी पर चढ़कर प्रकृति एवं स्थूल दृश्य बड़े ही हृदयग्राही होते हैं। कवि इस कविता के माध्यम से पर्वत झील, झरने तथा वहां के वन्य पशु-पक्षियों से परिचित कराना चाहता है। जोकि देश के संस्कृति के अंग हैं :- कवि की यह रचना देखिये -

यदि पहाड़ की चोटी पर ,
चढ़कर देखो बच्चों भू पर ,
तो अजब चीजें आयेंगी ,
तरह तरह की तुम्हें नजर ।
+ + + +
गांव दिखाता है घर बैठे ,
+ + + +
ऐसा ही लगता वालों को ,
अजब देश की सी बातें ।"[1]

४-ब- अंग्रेजों की दासता में जकड़ी हुई भारत मां को मुक्त कराने के लिये कवि ने भैरवी नामक संकलन का प्रादुर्भाव करके समूचे देश को 'भैरव' राग सुनाया है। कवि का विश्वास था कि उस समय देश में ऐसा वातावरण उत्पन्न करना चाहिये जिससे देशवासियों का खून खौलने लगे तथा अंग्रेजों के विरुद्ध संग्राम छेड़कर अंग्रेजों को देश से दूर भगा दें। जिसमें कवि सफल सा प्रतीत होता नजर आ रहा है। श्री हरिभाऊ उपाध्याय के शब्दों में -"भैरवी के गायक श्री सोहन लाल द्विवेदी 'त्यागभूमि' के जमाने के राष्ट्रीय कवि हैं। उनकी -

"कल हुआ तुम्हारा राज तिलक ,
बन गये आज ही बैरागी ।
उत्फुल्ल मधु मंदिर सरसिज में ,
यह कैसी तरुणा-अरुणा आगी ?"[2]

१- सोहन लाल द्विवेदी बांसुरी, पृ०सं० ७५-७६ ।

२- सोहन लाल द्विवेदी भैरवी सं० १९५१, पृ०सं० ३४ ।

से प्रारम्भ होने वाली राणा प्रताप को उद्बोधित करने वाली कविता त्याग-भूमि के पाठकों को भूली न होगी । जब जीवन-साहित्य निकला तब यह विचार था कि इसमें कविता व कहानी को स्थान न देंगे । दूसरे पत्रों में इनकी भरमार रहती ही है । फिर जीवन साहित्य का छोटा कलेवर इनसे बचाया जा सके तो अच्छा ही है । किन्तु पहले अंक के लिये ही द्विवेदी जी की यह 'वन्दना' कविता मिली व साथ ही कविता न छापने के निश्चय पर उलहना भी -

''वन्दना के इन स्वरों में -
एक स्वर मेरा मिलालो ।''[1]

कवि देश के प्रति बलिदान होने की कामना करता है उनका कहना है कि चाहे सूर्य - चन्द्र पृथ्वी पर उतर आयें या तारे भी अपना स्थान छोड़ दें या समुद्र खौलकर फुंकारने लग जाये फिर भी हम अपनी लड़ाई को बन्द नहीं करेंगे कवि की ये पंक्तियां देखिये -

''रवि गिरने दे , शशि गिरने दे ,
गिरने दे तारक सारे ,
अचल हिमांचल चल होने दे ,
जलधि खौलकर फुंकारे ।''[2]

कवि का कहना है कि पृथ्वी चाहे धंस जाये या पर्वत जल में खिसक कर जलमग्न हो जाये पृथ्वी के या अखिल ब्रह्माण्ड के खण्ड-२ हो जायें किन्तु हम अपनी भारत माता की जय- जय ही बोलकर आजादी को अवश्य लायेंगे वह 'भगवान शंकर' से ताण्डव नृत्य करने का अनुरोध करता है कवि की ये पंक्तियां देखिये -

''महाप्रलय होने दे निष्ठुर ।
कर विनाश की तैयारी ।
सर्वनाश हो पराधीनता ,
यों ही भारत की सारी ।''[3]

१-सोहन लाल द्विवेदी भैरवी सं० १९५१, पृ०सं० १ ।
२-वही, पृ०सं० १३० ।
३-वही, पृ०सं० १३२ ।

कवि गौतम बुद्ध को पुनः अवतार लेने के लिये आमंत्रित करता है उनका कहना है कि आज मानव ने राक्षसी वृत्ति का सहारा ले लिया जिसका परिमार्जन अत्यावश्यक है उनकी ये पंक्तियां देखिये -

"मानव ने दानव धरा रूप ,
भर रहे रक्त से समर -कूप ,
डूबती धरा का लो उबार ,
आओ फिर से करुणावतार ।"[१]

राष्ट्रीय काव्य की यह धारा जहां एक ओर राष्ट्र की ज्वलन्त समस्याओं को लेकर आगे बढ़ी है वहीं उसने सांस्कृतिक लोक-जीवन को अपनी परिधि में समेट लिया है । भारतीय संस्कृति का जैसा जीवन्त चित्रण द्विवेदी जी की ग्राम्य संस्कृति मूलक कविताओं में व्यक्त हुआ है , उससे निश्चित हो जाता है कि प्रेम चन्द की भांति उन्होंने भी भारत की आत्म कथा को काव्य में साकार किया है ।

ग्राम - संस्कृति के चित्रण में जिस व्यापक , अनुभूति, विशाल जीवन दृष्टि एवं गहरी संवेदना की आवश्यकता होती है । वह द्विवेदी जी के काव्य में पद-पद में व्यक्त हुई है ।

नागार्जुन ने द्विवेदी जी की कविताओं को जिनमें ग्राम्य संस्कृति के चित्रों का सृजन किया गया है , उन्हें भाव मुग्ध ग्रामात्मा की संज्ञा प्रदान की है । उनके अनुसार -

"पं० सोहन लाल द्विवेदी का रोम-रोम ग्राम प्रकृति की ताजगियों, उनके स्वप्नों और वहां की सम्भावित उज्जवलताओं में रमा हुआ है ।"[२]

१- भैरवी पृ०सं० ३७ ।
२- 'एक कवि एक देश' ,पृ०सं० २०३ ।

प्रख्यात साहित्यकार एवं कविनागार्जुन ने द्विवेदी जी की "ग्राम-बालिका" शीर्षक कविता की ओर संकेत करते हुये लिखा है - यह कैसी विडम्बना है कि ग्राम वासिनी भारतमाता को हम ही भूल बैठे हैं। विकास योजनाओं के नाम पर हमारे मौजूदा शासक चार अक्षत भी उस ग्राम - देवी के निमित्त अर्पित नहीं कर पाये। ग्राम देवी पर ध्यान जाते ही मुझे द्विवेदी जी की अनूठी पंक्तियां याद आ गईं -

"है कोंका बेली लिये हाथ में फूली,
हैं हरे-हरे से नाल लटकते भू पर,
बन-देवी जैसे आती चली नगर में,
हिरणी सी जाती ठिठक, चकुल कुछ लखकर।"[१]

यह तो हुई इन द्विवेदी जैसे भावमुग्ध कवि की निगाहों में बसने वाली उस ग्राम कन्या या ग्राम देवी की बात - "इन्हीं की समकालीन चतुर कवि तो बन फूलों को भूल कर हमेशा के लिये इन्द्र-प्रस्थ महानगर में स्वदेशी शासन पीठ के इर्द गिर्द जम गये।"[२]

"भारत की आत्मा का यथार्थ दर्शन करना हो तो उस कविता की ओर चले जिस कविता को जन-जन ने अपनाया हो हर कंठ ने दुहराया हैजिस कविता में देश का कंकाल डोल रहा है। जिसमें देश की आत्मा बोल रही है। जिस कविता में भाषा सरलता की सीमा छू रही है, भाव गांवों को हमारे सामने प्रत्यक्ष कर देते हैं, यथार्थ का नग्न चित्रण ही वह कविता है -

"है अपना हिन्दुस्तान कहां वह बसा हमारे गांवों में।'

और उस कविता में गांव की माटी में पलने वाले युग कवि पं० सोहन लाल द्विवेदी व्यक्तित्व बोल रहा है।"[३]

१- सोहन लाल द्विवेदी चित्रा सं० १९६२, पृ०सं० ५८।
२- एक कवि एक देश, पृ०सं० २०३।
३- वही पृ०सं० २०६।

द्विवेदी जी ने सौन्दर्य को स्वप्न का विषय नहीं बनाया, संस्कारों का विषय बनाया है। संस्कार भी ऐसे जो सौन्दर्य दृष्टि को संवेदना प्रदान करें, रूप कवि को कारुणिक चेतना से संयुक्त करें। उन्होंने अभावों के आंगन में ही ललनाओं का अलौकिक सौन्दर्य देखा है।

ग्राम संस्कृति के सहज सौन्दर्य का भाव-बोध अभावों में भाव चित्रों में सजीव हो उठा। गांवों में रूखे केशों की रूप कुमारी और चीथड़ों में राजकुमार का देश आर्थिक अभावों की अमां के बीच पूजा और भक्ति के दीप जलाकर जीवन के पूर्णिमा के प्रति आशावान रहा है।

''अपनी उन रूप कुमारी में, जिनके नित रूखे रहे केश,
अपने उन राजकुमारों में, जिनके चिथड़ों से सजे वेश,
अंजन को तेल नहीं घर में, कोरी आंखों के हावों में,
है अपना हिन्दुस्तान कहां, वह बसा हमारे गांवों में।''[१]

''तुलसी का सीत चित्रण राज परिवार में लेत और उत्तर आया। बिहारी की रंग रेलियां भारतीय संस्कारों में धूनियां तापने लगी। कीट्स की रूप लिप्सा की दुर्गन्धि से निर्बन्ध युग कवि की बहू रानी बिछुओं के बोल में सौभाग्य देवता की अर्चना के स्वर बोल पड़े रूप का नहीं आत्मा का श्रृंगार शाश्वत सौन्दर्य का रूप लेकर निर्धनता की बेड़ियों में बनी होकर भी पीतल कांसे के कड़े छड़े भी छविमान हो उठा है।

''सोने चांदी का नाम न लो,
पीतल कांसे के कड़े - छड़े।
मिल जाये बहूरानी को तो,
समझो उनके सौभाग्य बड़े।''[२]

१- भैरवी सं० १९५१, पृ०सं० ११।

२- वही, पृ०सं० ४१२।

कवि ने कुरूपता के बीच रूप का सलोनापन देखा, अंजन के अभाव में , कोरी आंखों के हावों में , जीवन का उन्मुक्त उल्लास देखा । फटे-चीथड़ों में लिपटे हलधर में नर नारायण की छवि देखी ।''[१]

'भैरवी की संस्कृति ग्राम्य प्रधान संस्कृति कृषक प्रधान संस्कृति है । भारतीय ग्राम्य जीवन की ओर संकेत करते हुये गांधी जी ने हमें इसे गांवों की संस्कृति तथा किसानों की संस्कृति भी कहा है । वस्तुत: भारत जैसे खेतिहर देश का मूल ढांचा कृषकों पर ही आधारित है । भारत की समस्याओं को कृषक से अलग करके देखना नितान्त स्वप्न जीवी प्रयत्न होगा । दृष्टा कवि पं० सोहन लाल द्विवेदी ने ''किसान'' शीर्षक कविता में सम्पूर्ण सभ्यता:संस्कृति का आधार कृषक का दधीचि जैसे उत्सर्गमयी मृत्यु पर आधारित बताया है । रंग-भवन, मान-भवन, लीला गृह सभी तो कृषक की श्रमजीवी निष्ठा के ही विकास प्रतीत होते हैं । विश्व का समस्त भैरव कृषक के ही बल पर समर्पित है । कवि के शब्दों में -

''यह रंग महल , यह मान भवन ।
यह लीला गृह , यह गृहउपवन ।
यह क्रीड़ागृह, अन्तं प्रांगण ,
रनिवास वास , यह राज सदन ,
वह तेरी दौलत पर किसान ,
वह तेरी मेहनत पर किसान ,
वह तेरी हिम्मत पर किसान ,
वह तेरी ताकत पर किसान ।''[२]

समस्त ऐतिहासिक उत्सर्ग का आधार भी कवि ने कृषक पर केन्द्रित कर दिया है । ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे कृषक ही महाकाल का काल हो,ऐतिहासिक

१- एक कवि एक देश, पृ०सं० २०६ एवं २०७ ।
२- सोहन लाल द्विवेदी भैरवी सं० १९५१, पृ०सं० २० ।

बोध का अस्तित्व धर्म हो, अतीत का यशस्वी कीर्तिमान हो भविष्य का स्वर्णिम विधान हो, पूजा- आरती और वन्दना की समस्त पवित्र भाव-भूमि हो, जन्म-भूमि के अनुराग का केन्द्री पराग हो इतनी, विशिष्ट और गोपनीय भाव-भूमि में किसान कोचित्रित करने वाले कवि ने किसान की हड्डियों पर पसलियों पर हिन्दुस्तान के जिस सांस्कृतिक स्वरुप को स्थापित किया है , वह ग्राम्य संस्कृति की प्राण - प्रतिष्ठा का काव्यात्मक ही नहीं है, उसके पीछे गांधी का विराट स्वप्न सत्य होने को आकुल है ।

४-द- कविगांधी जी को युग के अवतार के रुप में गृहण कर कहना है कि जिधर गांधी जी चल देते हैं । उनका अनुसरण समस्त भारतवासी करते हैं । 'काका कालेलकर' के शब्दों में ''राष्ट्र कवि सोहन लाल द्विवेदी हमारे जमाने के कवि हैं । वह जमाना आज न रहा लेकिन उस जमाने की भक्ति लुप्त नहीं हुई । इसलिये ,आज भी उनकी कविता पढ़ते वही आनन्द मिलता है जो उस जमाने का था ।

मैं तो चाहूंगा, सोहन लाल जी की कविता में से चयन करके एक संग्रह प्रकाशित किया जाये और आज उसे युवक - युवतियों के हाथ में दिया जाये, जिसके द्वारा उन्हें गान्धी -युग की भावनाओं का परिचय होगा ।''[१]

परम पिता परमेश्वर भगवान राम हुये । जन-जन में उनका प्रवेश हुआ । वे लाखों करोड़ों के आशा के आधार हैं ।

राम का गुणगान हजारों लाखों ने किया । न जाने कितने कवियों ने श्रद्धाजलि अर्पित की । कुछ ने आराध्य देव मानकर, कुछ ने पुष्पाजलि चढ़ाकर और कुछ ने यश और कीर्ति का गान कर उन्हें माना, इसका सारा श्रेय तुलसीदास को था । उन्होंने इसे तुलसीकृत रामायण में लिखा, जो करोड़ों कण्ठों से उद्घोषित होती है और होती रहेगी क्योंकि इसलिये कि उन्होंने इसे शुद्ध सरल भाषा में

१- गान्धायन संस्करण प्रथम प्रस्तावना ।

साधारण से साधारण जनों को समझने वाली भाषा में लिखा । उनके दिल को छुआ । शब्दों का आडम्बर नहीं फिर भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है, आज भी जन-जन के कण्ठ में विराजमान है ।

कवि का गान्धी कोटि चरण, कोटि बाहु, कोटि रुप और कोटि नाम युगाधार युग संस्थापक, युग-परिवर्तक तथा धर्माडम्बर को दूर करके स्वच्छ एवं दीन-हीन, शोषित एवं दलित जनता के प्रति सहानुभूति रखने वाला है । कोटि चरण और कोटि रुप के रुप में कवि की ये पंक्तियां देखिये -

''हे कोटि-चरण, हे कोटि बाहु ,
हे कोटि-रुप, हे कोटिनाम ।
तुम एक मूर्ति, प्रतिमूर्ति कोटि ,
हे कोटि मूर्ति तुमको प्रणाम ।''[१]

एशिया खण्ड की भूमि को गान्धी जी के अवतार के लिये कृत्य-कृत्य माना है । कवि करुणावतार के रुप अपने मनमोहन को पाकर फूला नहीं समाता जिन्होंने बन्दीगृह (जो रौरव नरक के रुप में था) को बैकुण्ठ बना दिया । बापू के नस-नस में मर मिटनेकी ज्वाला धधकती हुई प्रतीत होती है , जिन्होंने साम्राज्य वाद एवं शासन-सत्ता के गर्व को दूर करकर जनसत्ता के लिये नव सन्देश दिया । कवि का कहना है कि गांधी जी के समक्ष हिमालय आदि झुकता सा प्रतीत हो रहा है , ये पंक्तियां देखिये -

''झुकता हिमाद्रि जिसके पद तल ,
अपना गौरव नि:शेष लिये ।
वह आज चला जाता पथ पर
नव-युग का नव संदेश लिये ।''[२]

१-ग्राम्यायन संस्करण प्रथम पृ०सं० १४
''सहस्त्र शीर्षा पुरुष: सहस्त्राक्ष: सहस्त्रपात,
स भूमिर्र सर्व तस्पृत्वा त्यतिष्ठ दशांगुलम् ।।''
''यजुर्वेद ''पुरुष सूक्तम् -
२- ग्राम्यायन संस्करण प्रथम, पृ०सं० ६८ ।

बापू का सत्याग्रह अंग्रेजों के छक्के छुड़ाने वाला वह आयोजन है जिसके समक्ष अंग्रेज नहीं टिक पाये उनकी शासन सत्ता समाप्त हुई जिसके फलस्वरूप देश स्वतन्त्र हुआ। बापू एवं उनके अनुयायियों की रटन कि प्राण भले ही चले जायें किन्तु प्रण से नहीं मुकरेंगे। उनकी ये पंक्तियां देखिये -

"प्राण जायें, छोड़े न प्रण कभी ,
ऐसी टेक निभाता हो ,
स्वतन्त्रता की रटन अधर में ,
जिसका भाग्य विधाता हो।
बलिवेदी पर भीड़ लगी है ,
आज अमर बलिदानों की ,
आज चली है सेना फिर से ,
धीर वीर मस्तानों की ।"[1]

कवि का 'खादी-दर्शन' 'खादी गीत' में उभरा है। वह समझता है कि स्वदेशी कपड़ा पहनने से धन विदेश नहीं जायेगा जिससे देश सबल एवं धनवान बन जायेगा, धन ही सम्पूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति का कारण है कवि का अन्त:करण दलितों के दग्ध हृदय की दाह के रूप में खादी को देखता है कितने ही निर्धन, भिखमंगे खादी का सूत उत्पादन करके अपना भरण पोषण करने में सक्षम हो सकता है। देश-प्रेम का मधुर प्याला 'खादी' ही देश वासियों को पिलायेगी तथा मृत आजादी को संजीवनी बनकर पुन: आजादी को जीवित कर देगी, कवि का यह विश्वास है यह भारत से रूठी आजादी को पुन: वापस लायेगी। ये पंक्तियां देखिये -

"खादी ही बद्ध चरणों पर पड़ ,
नूपुर सी लिपट मनायेगी,
खादी ही भारत से रूठी,
आजादी को घर लायेगी।"[2]

१- गान्ध्ययन संस्करण प्रथम पृ०सं० ७० ।
२- गान्ध्ययन संस्करण प्रथम पृ०सं०-२१ ।

"एक बार गांधी जी मद्रास की ओर एक गांव में गये । वहां उन्होंने एक स्त्री को मैले - कुचैले कपड़े पहने देखा । गांधी जी वहीं रुक गये और उन्होंने उस स्त्री से इतने गन्दे रहने का कारण पूछा । स्त्री ने कहा कि उसके पास एक ही धोती है और गांव में कहीं पानी नहीं है इसलिये कपड़े साफ करने का अवसर नहीं मिलता । उसने यह भी कहा कि आप बड़े आदमी हैं , हम गरीबों का दुःख नहीं जान सकते । हमारे जैसे करोड़ों बहनें भाई उसी प्रकार रहते हैं । गांधी जी को स्त्री की बात घर कर गई और गांधी जी स हम गये और उन्होंने व्रत लिया कि जब तक देश के सभी भाई-बहन पूरे कपड़े नहीं पहनेंगे तब तक वे भी शरीर में आधे कपड़े पहनेंगे एक लंगोटी भर लगायेंगे । गान्धी जी ने स्त्री को समझाया कि यदि वह चरखा कातना प्रारम्भ करे तो देश की सभी गरीबी दूर होगी । पता नहीं, उस स्त्री ने चरखा चलाया या नहीं किन्तु उस दिन से गांधी जी ने लंगोटी पहनकर जीवन बिताया।"[१] बापू की प्रतिज्ञा-परक कविता देखिये -

"बापू ने किया संकल्प , चले जोकि कल्प-कल्प ।
जब तक कोटि भाई-बहन ,
रहते हैं यों अ- वसन ,
उनसा रहूंगा मैं भी , सुख-दुख सहूंगा मैं भी ,
सेवा ग्राम का यह यती, तब से अर्ध नग्न व्रती,
जिसकी नित्य जनता उतारती है आरती ।
गाते गीत नहीं कभी थकती है भारती ।।"[२]

कवि देश वासियों को बेगुनाह बेवाओं की चीत्कारों, देशभक्ति की, देश भक्ति के नारों के दासता की बेड़ियों में कसी हुई जंजीरों की झनकारों की शपथ देकर मातृभूमि को स्वतन्त्र कराने के लिये निज शीश कराने का सलाह देता है, दृश्य देख मत -

"तुम्हे शपथ है , दृश्य देख मत -
जननी की बरबादी का ,

१- चेतना, पृ०सं० ३ ।
२- चेतना, पृ०सं०६ ।

पहले अपना काट शीश ,
फिर काट शीश आजादी का ।''[1]

कवि वर्ग-विहीन समाज की स्थापना करना चाहता है । ऊँच-नीच का भेदभाव, वर्ग समुदाय का भेदभाव देश के उत्थान के लिये करना चाहता है । राम राज्य में ऐसी ही व्यवस्था थी जैसा तुलसीदास ने अपने राम चरित मानस में लिखा है कि -

''फूलहि फरहि सदा तरु कानन ।
रहहि एक संग गज पंचानन ।।''

की उक्ति को पुन: साकार करने के लिये कवि ऐसी कामना करता है उनकी ये पंक्तियां देखिये -

''वह वर्गहीन नव स्वर्ग आज ,
इस भूतल में ले रहा जन्म ।
जिसमें बसने के लिये देवता ,
लगे आज फिर ललचाने ।।''

साम्यवाद ही मार्क्सवाद का पूरक है कवि की भावना इससे अछूती नहीं रही वह चाहता है कि श्रम का फल वही पावे जो श्रम करे उसके पीछे दूसरा न लाभ उठा पावे एक अन्य कवि ने समाज में व्याप्त अर्थ भेद को निम्न रूप से प्रतिपादित किया है -

स्वानों का मिलता, दूध - दही,
भूखे बच्चे तड़पाते हैं ,
मां की हड्डी से ठिठुर-चिपक ,
जाड़े की रात बिताते हैं ,
मिल मालिक तेल फुलेलों में ,
पानी सा द्रव्य बहाते हैं ।''

१- चेतना, पृ०सं० २० ।
२- वही, पृ०सं० ३० ।

कवि अर्थ-भेद की समस्या को सुलझाकर यह बता देना चाहता है कि जिसका श्रम है वह श्रम से उपार्जित धन के उपभोग का अधिकारी है ये पंक्तियां देखिये -

> "जनका श्रम है उनकी धरती ,
> जिनका हल है उनकी धरती ,
> इतने दिन बाद अभागों को,
> सौभाग्य चला है अपनाने ।"[१]

कवि आपस में मिल जुल कर रहने की सलाह देता है । उनका कहना है कि चाहे जिस धर्म के मानने वाले हों आपस में हम सब भाई-भाई हैं सभी एक ही परम पिता परमेश्वर की सन्तान हैं हमें मन्दिर,मस्जिद , यानी धर्म के ढकोसले का सहारा लेकर कदापि नहीं लड़ना चाहिये क्योंकि यदि हम आपस में लड़ेंगे तो हमारा विकास कदापि नहीं हो सकता कवि हिन्दू और मुसलमानों को सम्बोधित करते हुये कहता है कि -

> "मेरे हिन्दू औ मुसलमान ।
> रे अपने को पहचान जान ।
> हम लड़ जाते हैं आपस में ,
> मंदिर मसजिद है लड़ जाती ।
> हम गड़ जाते हैं धरती में ,
> मंदिर मसजिद हैं गड़ जातीं ।"[२]

कवि संसार को मिथ्या एवं परमेश्वर को सत्य मानता हुआ , भगवान के भजन एवं राम नाम लेने की सलाह देता हुआ भगवान से यहां तक भी कहने को तैयार है जिन्होंने मिथ्या जगत के माया मोहमें फंसकर आपका नाम नहीं लिया है उन्हें भी सद्बुद्धि दीजिये जिससे उनका भी कल्याण हो ये पंक्तियां देखिये -

---

१- चेतना, पृ०सं० ३१ ।

२- वही, पृ०सं०-१०५ ।

"उनको भी सद्बुद्धि राम दो ।
मूले हैं जो नाम तुम्हारा ,
मूले हैं जो नाम तुम्हारा ।
उनको भी श्रद्धा अकाम दो ।

+ + + +

व्यथित ग्रथित सुख दुख से कातर,
ढरो आज उन पर करुणाकर ,
उनको भी दुख में विराम दो ,
उनको भी सद्बुद्धि राम दो ।"[१]

स्वदेशी का पालन करते हुये मृत्यु भी हो जाये तो अच्छा है , परदेशी तो भयानक है ही यह गान्धी जी का अटूट मत रहा । स्वदेशी के सिद्धान्त को समाज पर लागू करने का आवश्यक और सबसे महत्वपूर्ण परिणाम खादी है । केवल खादी ही करोड़ों भूखों का पेट भर सकती है । अपने देश की वस्तु थोड़ी घटिया भी होतोहू उसे अपनाना चाहिये ।

गांधी जी मशीनों के विरोधी नहीं थे , किन्तु ऐसी मशीनों को वे राष्ट्रहित में नहीं समझते थे , जिनसे करोड़ों आदमियों की बेकारी होती है । चरखा भी मशीन है, किन्तु उससे बेकारी का हल निकलता है न कि बेकारी बढ़ती है ।

'बड़े कारखाने राष्ट्र की सम्पत्ति या राज्य के नियंत्रण में होने चाहिये । उनका काम अत्यन्त आकर्षक और आदर्श परिस्थितियों में होना चाहिये । वह व्यक्तिगत लाभ के लिये नहीं , अपितु मानवजाति के कल्याण के लिये होना चाहिये । जो यन्त्र हमारा स्वामी बन जाये , उसका मैं सख्त विरोधी हूं ।" गांधी जी ने कहा- मैं साफ शब्दों में अपना यह विश्वास प्रकट कर देना चाहता हूं कि बड़े पैमाने पर माल तैयार करने का पागलपन ही आज के विश्व संकट के लिये जिम्मेदार है । मेरे मंत्र अत्यन्त प्रारम्भिक ढंग के ही होंगे , जो लाखों के घरों में रखे जा सकेंगे । मुझे विशेषाधिकार और एकाधिकार से घृणा है । मेरे लिये वह वस्तु निषिद्ध है, जिसमें सबका भाग न हो ।

१- गान्धीयन संस्करण प्रथम पृ०सं० १०७ ।

४-य- बौद्ध धर्म से प्रेरित करुणा एवं मानवीय संवेदना की अभिव्यक्ति हमें 'वासवदत्ता' में देखने को मिलती है यह ठीक है कि इतिहास में बुद्ध और वासवदत्ता की कथा नहीं मिलती। या तो बुद्ध के स्थान पर उपगुप्त चाहिये या वासवदत्ता को आम्रपाली करना होगा, पर इससे ही वासवदत्ता के वासवदत्ता काव्य का मूल्य क्या कम हो जायेगा ?

यह भी ठीक है कि वासवदत्ता की कथा वस्तु की अभिप्राय वाणी ही 'उर्वशी' में दुहराई गई है - पर अर्जुन और बुद्ध, उर्वशी और वासवदत्ता में एक गहन अन्तर है। और इस दुहरावट से उर्वशी का मूल्य कम नहीं हो जायेगा ?

'वासवदत्ता' और उर्वशी के बाद सरदार चूड़ावत बौद्ध और पुराण काल के पश्चात् जैसे राजपूत काल आ गया हो, एकदम बदला हुआ उर्वशी और वासवदत्ता में स्त्री का मान मर्दन हुआ, चूड़ावत में स्त्री ने पुरुष को पराजित किया फिर विजयी बनाया उसे अमर बनाया उसे -

''वीर सरदार चूड़ावत छिन्न शिर हेर ,
समझ गये सभी, कि पलभर कहीं न देर ,
रुद्र के समान शीश कण्ठ में माला कर,
चला युद्ध करने , क्रुद्ध स्वर में माला कर,
जाता जिस ओर प्रलय घटा बन छाता उधर,
पाट-पाट भूमि, लदा लदा नरमुंडों से ,
कोटि मुंडमाल रणचंडी के चरणों में ,
अर्पित समर्पित कर बना वह अजेय ,
नित्य गेय।''[१]

यद्यपि यह भी ठीक है कि 'कर्ण-कुन्ती' में कर्ण के साथ पृष्ठ चित्र की भांति कुन्ती भी एक ही संस्कृति के विधान का अंग है , उनकी यह आत्म ग्लानि कि -

---

१- 'वासवदत्ता' संस्करण तृतीय पृ०सं० २५।

"होती है व्यथा विशेष ,
हा । मैंने ही तुम्हें मेरे नक्षात ।
अपने गर्भ से निकाल ,
अंचल मुख पर संभाल,
शंकित पग, ढूंढ मग, भ्रमित दृग,
त्याग आई थी कहीं दूर महानिर्जन में ,
ढकने को कलंक ,
अंक में न रख सकी ,
यह सत्य है इतिहास,
अपना स्तन्य-पय तुझको न पिला सकी ,
छाती पर रख तुझे जग में न जिला सकी ।"[१]

'कर्ण' को महानता प्रदान कर सकते हैं । पर संस्कृति की उज्जवलता को निष्कलंक नहीं कर सकते , पर क्या इससे ही 'कर्ण-कुन्ती' का अन्तस्काव्य विद्रूप हो जायेगा ?

यह भी भले ही ठीक हो कि एक बूंद का उपसंहार-भाग अनावश्यक है, और एक बूंद की कथा के उत्कर्ष को मन्द कर देता है, पर , उसमें उसका जहां सौन्दर्य है , वह तो अक्षुण्ण है न ?

भले ही कुणाल में भी कुणाल भी वासवदत्ता और उर्वशी का ही भाव आधार भूल हो - पुरुष का स्त्री के निमंत्रण को ठुकरा देना , पर यह भी धर्म के बौद्ध आदर्श से अभिमंडित अपनी निजी विशेषता रखता है । भले ही अशोक के आतंक का उसके राज्य काल के अन्तिम दिनों में यह वर्णन -

"आये जल्लाद ,
लिये कर में खर प्रखर धार ,

१- वासवदत्ता पृ०सं० २७-२८ ।

तलवार तीक्ष्ण धार ,
साहस था किसमें ,
शक्ति किसमें ,
जो सके बोल ,
वाणी को सके खोल,
एक असिधार में उतारा जाये , वह भी अभी ।''[१]

अनैतिहासिक प्रतीत हो , पर , कवि को क्या इन्हीं दृढ़ सीमाओं में से देखा जायेगा ?

और भिक्षा प्राप्ति में त्याग का उत्कर्ष - शोषण को प्रोत्साहन देने वाला ही सा क्यों न हो , काव्य के ओज में व्याघात नहीं डालता ।

अन्तिम महाभिनिष्क्रमण - घोर अन्तर्द्वन्द्व की संकल्प में अन्तिम परिणति -व्यष्टि की समष्टि में विरति ढूंढें तो इसमें भी अनेक अभाव । पर, क्या अभाव ही देखा जायेगा ? जो अठीक है उसे ही सामने रखा जायेगा ?

तब क्या इन तत्वों की उपेक्षा की जायेगी ? कवि ने 'आमुख' में कहा है -

'वासवदत्ता में युग-युग की भारतीय संस्कृति के अंकित करने का प्रयास है ।' आपत्ति हो सकती है कि 'वासवदत्ता' के आठ काव्य प्रबन्धों में चार बौद्धयुगीन हैं , दो पुराण-साहित्य के , एक राजपूत कालीन, एक कल्पना लोक का और विषयों की दृष्टि से पांच काम पर विजय प्राप्त करने से सम्बन्ध रखते हैं । एक में स्वामिभक्ति- दृढ़ता एक में करुणा , एक में दान का आदर्श - यों शेष तीन हैं । इसे भी कवि ने समझा है और इस प्रकार अपनी मान्यता

१- वासवदत्ता संस्करण, तृतीय - पृ०सं० ५३ ।

प्रकट की है -

'बारम्बार इस रचना (वासवदत्ता) के पढ़ने का अर्थ यही होगा कि जब कभी जीवन में कोई 'वासवदत्ता' हमारे सामने उसी हाव-भाव और कटाक्ष से यौवन समर्पित करेगी, हम एक बार सजग हो जायेंगे यह कथानक उस समय, हमें गौतम के गौरव प्राप्त करने का ही प्रलोभन नहीं देगा, प्रत्युत आत्म शक्ति भी। यदि हम सचमुच ऐसे परीक्षा के समय में वासना को नीचे दबा सकें और ऊपर उठ सके तो इससे अधिक कविता से और क्या आशा करनी चाहिये ? यही मैं समझता हूं कि साहित्य का , कला का उद्देश्य पूर्ण हो जाता है।'

इस मान्यता में बल है , यों यह आपत्ति की जाये कि वासना को नीचे दबाना क्या ठीक होगा ? और फिर सबसे मौलिक प्रश्न होगा कि युग -२ की भारतीय संस्कृति क्या यही है ? कविता और कला क्या इसी कर्म के लिये हैं ? पर इन आपत्तियों के उठाने का समय कौन सा है ?

कविता के रस से हट जाने के बाद का ।

+ + + +

वासवदत्ता का कवि इतिहास लिखने नहीं बैठा , वह कवि है और उसका पहला सम्बन्ध मानव के उज्ज्वल मनोभावों को उभारना , उन्हें पुष्ट करना और उनमें तन्मयता लाना है।

कवि भाव लोक में ऊंचे उठकर जिस सत्य का साक्षात्कार करता है , वही हमारे लिये अभीष्ट है और अभिनन्दनीय है। काव्य का इतिहास का मुखापेक्षी नहीं हुआ करता ।

'वासवदत्ता' का कवि 'ऊहा' का कवि नहीं, वह ऊंची उड़ानें नहीं भरता और कल्पना की कलाबाजी में उसे कवि कर्म नहीं मिलता । 'वासवदत्ता' का कवि छायावाद की रहस्योन्मुख अस्पष्ट प्रणाली का पोषक नहीं । वह युग का

सन्देश देने भी नहीं आया । युग-युग को युग के लिये रखना चाहता है । वह भी भारतीय युग-युग को जहां इतिहास अपनी संकरी गलियों को छोड़कर प्राचीन धूल मिट्टी का मोल नहीं आंक रहा , वरन , जहां संस्कृति का तरल रूप 'मानव' के द्वारा अभिव्यक्त हो उठा है ।

संस्कृति की इस तरलता में व्यक्ति मानव तो दीख पड़ता है) उसका नाम गौण हो जाता है । उसे आप बुद्ध कहिये,, चाहे उपगुप्त, चाहे दयानन्द कहिये । भारतीय संस्कृति का जो युग-युग का मानवीय पहलू है , वह बुद्ध से पहले भी होगा और आज तक उस संस्कृति के उपासकों में मिलती है । कामदेव को भस्म करने वाले या मार विजय करने वाले भारत की मौलिक संस्कृति से घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं , संस्कृति के अनेक रूप -रंग हैं । कवि ने वासवदत्ता में एक बूंद और भिक्षा प्राप्ति को छोड़कर शेष सब प्रबन्धों में प्रलोभन स में संयम और हृदय की उदात्त भावना के पक्ष को ही अपनी ओजपूर्ण वाणी में रखा है ।

अध्याय- पांच

द्विवेदी जी के काव्य के सांस्कृतिक काव्य की सम्भावित कसौटी और मूल्यांकन

५-अ- "वाणी का प्रकाश त्रैलोक में अपना कार्य करता है।"[१]

दार्शनिक पृष्ठ भूमि के आधार के बिना काव्य का स्वरुप और विधान और आस्वाद विमर्श नहीं किया जा सकता। प्रत्येक कवि के काव्य में उसका जीवन-दर्शन संग्राहित रहता है। द्विवेदी जी के काव्य का जीवन-दर्शन का आधार मानवीय करुणा और राष्ट्रीय जीवन वैशिष्ट्य है। मानवीय करुणा का आधार कवि का मनोवैज्ञानिक जीवन, सम्पन्नताओं के बीच मानसिक विरक्ति की पृष्ठ भूमि और बौद्ध-दर्शन की करुणा है। इन सबने मिलकर कवि को मानवीय संवेदनाओं से सम्पृक्ति प्रदान की और करुणा की उस भाव-भूमि पर कवि को लाकर खड़ा कर दिया,है। जहां से जीवन के अवदात्य समानान्तर रुप से वरण कर सकें। कवि के राष्ट्र प्रेम का आधार युगीन परिस्थितियां, महामना मालवीय और युगद्रष्टा गांधी जैसे महान युग-पुरुषों की सानिध्य और उनकी प्रेरणायें तथा आदर्शोन्मुख नैतिक जीवन मूल्य रहा है ऐसा उनके काव्य और उनके व्यक्तित्व दोनों से प्रमाणित होता है। काव्य भारती के इस कवि ने वैदिक कवियों की भांति राष्ट्र देवता को ही वाग्देवता के रुप में चुन लिया है। कविता केवल जीवन की अभिव्यक्ति का साधन ही नहीं बनी, वह समूचे देशकाल की प्रवाहमान धारा के रुप में युग-जीवन के समानान्तर प्रवाहित हुई है। तप:पूत ऋषियों की वाणी में आत्मा साधना का बल रहता है। बाल्मीकि, कालिदास, तुलसी, कबीर ऐसे ही कवि हैं जो आत्म-साधना को काल-जयी स्वर प्रदान करते हैं। सोहन लाल द्विवेदी इन ऋषि

१- आचार्य दण्डी: काव्यादर्श १/४।

कवियों के उत्तराधिकारी बनने की सामर्थ्य रखते हैं क्यों कि उनकी कविता भी राष्ट्र-प्रेम की उज्जवलतम विभूति से युक्त होकर आत्म-साक्षात्कार कराती है। आत्मवेत्ता ऋषि जैसे जीवन के प्रति निर्भीक होते हैं, मृत्यु के भय से मुक्त होते हैं, वैसी ही निर्भीकता द्विवेदी जी के राष्ट्रीय काव्य के अन्तराल से व्यक्त होती है। वे मरण को जीवन का धर्म मानते हैं।

"संकल्प की सिद्धि के लिये भावना का मार्ग आवश्यक है। बिना संकल्प भावना के संकल्प में ऊपर आरोहण की शक्ति नहीं आ सकती।"[1]

द्विवेदी जी राष्ट्रीय चेतना के साथ ही साथ करुणा से रसान्दोलित हैं। उनके काव्य में जहां एक ओर भैरवी का अमन्द राग है, वहीं दूसरी ओर वासवदत्ता की औदात्यपूर्ण सांस्कृतिक संवेतना है। जहां एक ओर सौन्दर्य का समुद्र तरंगायित है, वहीं दूसरी ओर कवि का सर्वधर्मी सत्य उद्घोषित है। उनके काव्य में राग और विराग के भावात्मक छोर एक ही केन्द्र में केन्द्रित हो उठते हैं। हेमकुम्भ की मधुधारा में आत्म प्रबोध की सत्यानुभूति तक बिस्तार गामी है। रुप की हिल्लोर है, तो प्रेम की अमर्त्य धारा। मातृक प्रेम की वात्सल्य तरंगे हैं, तो वैदिक, ऋत्विक की मांगलिक ऋचायें। आत्म-विस्मृत का वरदान है, तो जन जागरण का ज्वार। भावनाओं की इतनी समर्थ-पूर्ण अभिव्यक्ति द्विवेदी के काव्य को भाव सम्पदा की दृष्टि से जो विभूति प्रदान करती है, वह कितनी चिरंतन और सम्पूर्ण भावकता का उद्योतन करती है। अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

द्विवेदी जी के काव्य में जीवन-दर्शन, धर्म संस्कृति और काव्य साहित्य सामान्यीकृत रुप में अन्तरव्याप्त है। उनका काव्य विलास और वैभव का काव्य नहीं है। उनका दर्शन देश और जाति में सांस्कृतिक विकास का अमृतोपम

१- कुबेर राय : महाकवि की तर्जनी सं० १९६६, पृ०सं० १२६।

निस्पन्द है। कवि की काव्य सर्जना उनका काव्यास्वाद, काव्य के मूल गम्भीर व्यापक लोक कालाति क्रान्त करने वाले ज्योतिष पुंजों की भांति सघन है। उन सबकी थाह लेना इतना सरल नहीं है फिर भी शोध की परिनिष्ठ प्रणाली और व्यवहारिक प्रक्रिया से परीक्षण करने के बाद उनके काव्य दर्शन के तत्व विमर्श की उपलब्धि की जा सकती है।

द्विवेदी जी का राष्ट्रीय काव्य इतना अधिक चर्चित रहा कि उनकी श्रृंगार, सौन्दर्य और प्रणय की प्रवृत्तियों के मूल्यांकन के प्रति अवसर ही नहीं प्रदान किया गया अथवा उनकी ओजस्विता के सूर्य के प्रकाश को देखकर उनकी ज्योत्स्ना भरी रजनीगंधा का सुरम्य पहिचानने में ही नहीं आया। मूलवर्ती राष्ट्रीय धारा के कवि होकर भी द्विवेदी जी के कृतित्व की एक मुख्य विशेषता यह है कि उन्होंने आदर्शवादी कवियों की भांति श्रृंगार और प्रेम के प्रति उपेक्षा नहीं बरती और न ही उन्होंने श्रृंगार और प्रेम के आलम्बन धर्म को युद्धभूमि में लाकर खड़ा कर दिया। वे युद्ध की भूमि में एक सच्चे सैनिक की भांति भैरव राग गाते हुये मरण में जीवन का नव उन्मेष देखते हैं, तो दूसरी ओर प्रेम के महान धर्म की भूमिका में वे प्रेम और बलिदान, विरह और वेदना की गीत भी उतनी ही ईमानदारी के साथ गाते हैं। उनके काव्य में प्रणय भावना का स्रोत क्या है, उसका आलम्बन प्रसाद के आंसू की भांति अदृष्ट है या उसकी सत्ता करुणा में द्रवीभूत हो गई है, वह मांसल है अथवा प्रेरणा का कोई अमूर्त तत्व है उसके संकेत भर तो उनके काव्य में उपलब्ध है किन्तु उनका प्रणय इतना प्रशान्त है कि उसके आवेगों को कोई संज्ञा देना कठिन लगता है। द्विवेदी जी रूप के चितेरे कवि नहीं और न ही वह किसी परकीया प्रेम के विलास और मदिर मनोवेगों के कवि हैं। वह तो रूप के निरंजन के रंजन धर्मा हैं। वह दृष्टि के ज्योतिर्मय अंजन धर्मा हैं। कवि के द्रष्टा ने रूप के एक बिन्दु से समग्र चेतना के विकास को नाप लिया है। उन्होंने जिस रूप को

निहारा है वह उनकी आत्मा का प्रतिबिम्ब धर्म है। रूप और सौन्दर्य द्रष्टा कवियों के लिये आत्मा का ही पर्यवसान है। द्विवेदी जी का द्रष्टा कवि ऐसा ही है जिसने रूप के असीम को दृष्टि की सीमा में आबद्ध नहीं होने दिया।

''देखा क्या ऐसा रूप कहीं ,
जो समा न सकता आँखों में।''[१]

रूप केवल दृष्टि सम्वेदना का विस्तार नहीं है, वह तो आकुल मन की एक स्नेहमूलक गीतात्मक अभिव्यक्ति है -

''जो बनकर गीत बिखरता हो ,
जो पाकर स्नेहनिखिरता हो ,
बनकर बसन्त ऋतु खिलता हो ,
यौवन की नव-नव शाखों से ,
देखा क्या ऐसा रूप कहीं।''[२]

रूप यौवन की नवोन्मेषपूर्ण शाखाओं में वासंतिक ऋतु बनकर, ऋतु का समग्र उल्लास बनकर प्राणों को पवित्र करता है। ऐसी रूपात्मक वासन्तिकता तो ''वासन्ती'' के कवि में ही मुकुलित हो सकती है। रूप अभिलाषाओं की मादक भाषा है। व्यन्जना के गहरे रहस्यों के बिम्बों से रूप को एकत्रित करने का प्रयत्न द्विवेदी जी के कवि द्रष्टा की मौलिक विशेषता है। चाहे अभिलाषायें अभिव्यक्ति के लिये भाषा का सम्बल चाहती हैं वैसे ही रूप एक भाषा है जिससे जीवन की अभिलाषायें मुखर होती हैं। कितने ऐसे सौन्दर्य द्रष्टा हैं जो उस स्तर पर रूप का आख्यायन गा सकते हैं , गा ही नहीं उसे जी सकते हैं ? एक मौन प्रेम का संगीत जो स्वर के पंखों में मन के अन्तराल के अवर्णनीय सत्यों को उदघाटित करता है। जो स्वप्न की दृष्टि हो और जगत का दुर्लभ तत्व हो, ऐसी रूप दृष्टि जो भारतीय संस्कृति की प्राणवर्ती धारा के रूप

१- सोहन लाल द्विवेदी वासन्ती सं० १९५१ पृ० सं० १२ ।

२- सोहन लाल द्विवेदी वासन्ती सं० १९५१ पृ०सं० १४ ।

में प्रवाहित होता रहा है , वही राष्ट्र कवि के प्राणों में प्रेम का संचार करता है । पार्थिव की यह पावनता उन्हीं के शब्दों में -

"जो जगता हो बन अभिलाषा ,
हो गूंथ रहा मादक भाषा ,
मन में कुछ रह रह होता हो ,
जो खुले न स्वर के पातों में ,
देखा क्या ऐसा रूप कहीं ।"[1]

द्विवेदी जी के प्रेम काव्य में प्रेम पीड़ा की अपेक्षा रूप व्याकुलता अधिक है । देखिये उन्हीं के शब्दों में जहां कवि रूप के इन्द्रधनुष पर विकल हो रहा है -

"आज फिर बढ़ती विकलता ,
रूप का सुरधनु निकलता ।"[2]

रूप और अतिन्द्रिय सौन्दर्य के कवि ने वासन्ती के गीतों में एक प्रश्न पूछते हुये उससे आत्मरूप बनने का अनुरोध कर रहा है । नेत्रों में कोमल स्वप्नों की एक रेशम डोर है और उस डोर से मन का घट बंधा है । पर उस घट की पूर्णता तो तभी है जब यह छवि के जल कूप में संतरण कर सके जीवन की सार्थकता भी वैसी ही है जहां मन घट को रूप सलिल से संतृप्त होने का अवसर मिल सके । "रीते गागर" रीते मूल्यों का प्रतीक है । मूल्य विहीन जीवन का अर्थ ही क्या जीवन के मांगलिक कलश भी प्रेम को पाकर ही परिपूर्ण होते हैं । कवि की यह याचना जीवन और संस्कृति की एक अनिवार्यता लिये हुये है । कवि के ही शब्दों में -

"क्या तुम मेरे रूप बनोगे ? मेरे नयन डोर मन घट के ।
चिर छवि जल के कूप बनोगे ? क्या तुम मेरे रूप बनोगे ?"[3]

१- सोहन लाल द्विवेदी वासन्ती सं० १९५१, पृ० सं० २४ ।
२- सोहन लाल द्विवेदी चित्रा सं० पंचम पृ०सं० ६६ ।
३- सोहन लाल द्विवेदी वासन्ती सं० १९५१ पृ०सं० १५ ।

कवि रुप की स्थिरता को स्वीकार करता है। वह स्थायित्व को जीवन का एक मूल्य मानता है। इतना ही नहीं यह रुप आंखों में तृष्णा और पांवों में प्रगति की सामर्थ्य से युक्त है यह रुप मन विहंग के लिये नन्दन कानन की तरह और मधुमयी छाया में धूप की तरह से जीवन ऊष्मा और ज्योति का प्रसन्न प्रासादन है। उन्हीं भावों को कवि वाणी ने अभिव्यंजना प्रदान की है-

"तृष्णा बनोगे इन आंखों की ,
प्रगति बनोगे इन पांवों की ,
मन विहंग के नन्दन कानन ,
मधुमय छाया धूप बनोगे ?
क्या तुम मेरे रुप बनोगे ?"[१]

रुप की यह खोज आत्मरुप की ही खोज है और रुप के इस स्तर का अन्वेषी कवि "रुपम् रुपम् प्रतिरुपम् बभू:" के भावलोक तक पहुंचता है। इतना ही नहीं संगीत के बिम्बों द्वारा कवि ने रुप को अभिव्यक्ति दी है। जैसे मृदु-तानों के स्पंदन में मीड़ की भूमिका होती है और मीड़युक्त मृदुताने रस से परितृप्त करती हैं वैसे ही कवि की दृष्टि में प्राणों को परितृप्त करने वाला प्रेम संगीत है और इस संगीत में मीड़ की भूमिका का कार्य संगीत करता है। सौन्दर्य ही प्रेम का रुप ले लेता है। इस तथ्य को और इसके सूक्ष्म तात्त्विक अन्तर को द्विवेदी जी ने मीड़ और तान जैसे संगीत के रुपकों से स्पष्ट किया है :-

"मीड़ बनोगे मृदु तानों की,
तृप्ति बनोगे इन प्राणों की,
मेरी कविता के कुसुमों के ,
तरल मरंद अनूप बनोगे ?
क्या तुम मेरे रुप बनोगे ?"[२]

१- सोहन लाल द्विवेदी वासन्ती सं० १९५९ पृ०सं० १६ ।
२- सोहन लाल द्विवेदी वासन्ती सं० १९५९ पृ०सं० १६ ।

रुप को कवि ने कुसुम न कहकर कुसुम को मरंद कहा है। मरंद ही कुसुम का रसनिधि संचित जीवन कोष है। रुप मात्र देह धर नहीं है। देह में संचित सौन्दर्य का कुसुम कोष है। इससे ही यह रुप का निरुपण कवि-द्रष्टा की चेतना में कितना दिव्य और पावन है।

रुप दर्शन के लिये आंख से ज्यादा जरुरी सम्वेदना होती है। आचार्य राम चन्द्र शुक्ल के अनुसार "दृश्य" शब्द के अन्तर्गत केवल नेत्रों के विषय का ही नहीं, अन्य ज्ञानेन्द्रियों के विषयों - शब्द, गन्ध, रुप रस का भी ग्रहण समझना चाहिये।"[१]

यही करुणा जब आंखों में प्रविष्ट हो जाती है तो रुप एक भिन्न प्रकार का अस्तित्व लेकर सामने आता है। कवि की कारुणिक दृष्टि भी अपने प्रेम के अभीष्ट का मुस्काता हुआ रुप नहीं देख पाता। मुस्काते हुये रुप में आनन्द है किन्तु रुप के उस आनन्द को देखने के लिये कवि की दृष्टि तो करुणा की मिली है। करुणा से आनन्द की यह यात्रा कैसी अद्भुत मानसिक और सांस्कृतिक यात्रा है। कवि के रुप - चिन्तन में दर्शन और संस्कृति का कितना मंजुल, कितना ललित अनुबन्ध बन पड़ा है। वह तो वैसे ही शब्दातीत है जैसे कवि का अभीष्ट प्रेमी शब्दातीत है। कवि ने अन्य सौन्दर्य द्रष्टा मनीषियों से भिन्न स्तर पर रुप का दृश्य देखा है। वह कपोलों की अरुणिमा में अनुराग को अनुरंजित नहीं देखता बल्कि कपोलों पर शब्द विहीन आंसुओं की सूख गई एक लकीर देखता है। कैसा मार्मिक दर्शन है। यह रुप का जहां आरुणिक कपोलों पर शेष रह गई आंसुओं की एक कहानी वही कहानी जो आंसू से एक लकीर बन गई है, आंसू का इतिहास "प्रसाद" के अतिरिक्त कौन लिख सकता था। प्रसाद जैसा समानधर्मा कवि पं० सोहन लाल द्विवेदी के अतिरिक्त कौन हो सकता है।

१- आचार्य राम चन्द्र शुक्ल चिन्तामणि द्वितीय भाग पृ०सं०- ।

अभिव्यंजन की मौलिकता में कवि "प्रसाद" से कम प्रसादान्त नहीं है। "प्रसाद" की अन्तस्चेतना में गूंजने वाली विकल रागिनी करुण की कहानी बनकर आंखों से बरबस छलक पड़ती है और द्विवेदी जी की प्रेम की गोपन व्यथा आरक्त कपोलों में अश्रु का आलेख प्रस्तुत करने के लिये कवि की दृष्टि सम्वेदना में विरह का दारुण रेखांकन करने लगती है। अदृष्टि का यह दृश्य कैसा सम्बोध है। कवि के ही शब्द बिम्ब में -

"ऐसा कहीं प्रेम देखा है ? देख न पाते छलछल लोचन,
प्रियतम का मुस्काता आनन, नीरव रह कोमल कपोल पर,
सूख गई जल की रेखा है ऐसा कहीं प्रेम देखा है ?"[१]

अदृश्य का यह कैसा नियम है। अभीष्ट किस प्रकार दृष्टिपथ से ओझल हो जाता है, सौन्दर्य का यह सार शायद चन्द्र परिवर्तित प्रत्यावरण के घन चक्र की ओट छिप जाता है और आलम्बन धर्म के अभाव में जलनिधि हा-हाकार मचाता हुआ केवल लहरों के माध्यम से तट पर शीश पटकता रह जाता है। विरह की पीड़ा का ऐसा मार्मिक अवलेखन द्विवेदी के अतिरिक्त और कहां उपलब्ध है, यह अनुसंधान का विषय है। पीड़ा की इस परिणति का एक चित्र देखें :-

"शशि आकर घन में छिप जाता,
जलनिधि हाहाकार मचाता,
तट पर पटक शीश रह जाता,
यह किस दुख का अवलेखा है,
ऐसा कहीं प्रेम देखा है ?"[२]

कवि के लिये प्रेम अर्थवन्त है, वैसे ही जैसे काव्य रचना में शब्द और अर्थ का सम्बन्ध है। महाकवि कालिदास की वाणी में "शब्द और अर्थ ही वागर्थ की अविच्छिन्नता है।"[३] तुलसी ने "गिरा अर्थ जल बीच सम" कहकर शब्द और अर्थ

१-सोहन लाल द्विवेदी बासन्ती सं० १६५१, पृ०सं०-२७ ।
२-सोहन लाल द्विवेदी बासन्ती सं० १६५१ पृ०सं० -२८ ।
३- वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थ प्रतिपत्तये ।
जगत: पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ ।।

के सम्बन्ध पर प्रकाश डाला है। काव्य प्रक्रिया के निर्माण में रचनात्मक प्रतीत के लिये असमर्थ और अर्थहीन वरण की विसंगत को काव्य का अवरोधक कहा गया है। अर्थ और शब्द के अविच्छेद्य संहिति को 'भवभूति' की महत्ता कहकर करुणाके उत्कर्ष को उद्घाटित किया गया है। द्विवेदी जी के काव्य में प्रेम की अभिव्यंजना शब्द और अर्थ, अर्थ और शक्ति, रस और भक्ति के अविच्छेद्य सम्बन्धों से अभिव्यंजित हुई।

''मेरे शब्दों के अर्थ बने मेरे अर्थों की शक्ति बने,
निर्मम। क्यों इतने ढले आज मेरे मानस की भक्ति बने।''[१]

५-ब- कवि के पास शब्दों की सम्पदा है किन्तु प्रेम ही उन शब्दों को अर्थवत्त करता है। प्रेम ही कवि की शब्द सृष्टि का गुरुत्वाकर्षण लिये हुये अर्थ की शक्ति बन जाता है। प्रेम ही कवि के मानस में द्रवीभूत होकर मानसिक भक्ति बनकर सम्पूज्यता को वरण कर लेता है। कैसी है कवि की यह पूजा, जो राष्ट्र प्रेम के भी पूजागीत लिखती है और प्रेम के भी पूजागीत लिखती है। पूजा की वस्तु तो एक ही है, प्रेम। इसके अतिरिक्त और पूज्य हो ही क्या सकता है? कवि ने उसी को अपनी उर्वशी के अर्घ्य में चढ़ाया है और उसी प्रेम को जननी जन्म भूमि गरीयसी को भैरवी राग में भरकर अर्घ्य आहुतियों में समर्पित किया है। द्विवेदी जी के प्रणय काव्य का आलम्बन ''क्षणे क्षणे यन्नुपैति काव्यम्, तदेव रूपम् रमणीतायाः'' की भांति नित्य नव-नव छवियों से युक्त शोभा की सम्वृद्धि करने वाला और उसी रूप में आलम्बन को पुकारता है। इन्द्रियों के व्यापारों में उसे बांधना चाहता है। दृगों में सुषमा के रूप में, श्रुति पथ में गुंजन के रूप में, हृदय कमल में पराग के रूप में, अधरों में पराग के रूप में, अधरों में माधुर्य के रूप में, प्राणों में स्पन्दन के रूप में, रोम-रोम में अपने प्रेमिल प्राण को पुकारता है। उसका प्रेमी रोम-रोम में रमे और प्रेम का मानसी भक्त बन जाये, प्रणय की इस मधुरिम कामना को इस

१- सोहन लाल द्विवेदी वासंती सं० १९५१ पृ०सं०-२०।

मधुरिम स्वर में देखें-

,, नव-नव रुप धरे चिर सुन्दर ,
मेरे अंग बसो ।
बसो दृगों में नव सुषमा बन ,
श्रवणों में मधुमय मृदु गुंजन ,
हृदय कमल में मृदु पराग बन ,
मधु वर्षा बरसो ।''[१]

प्रेम कवि के जीवन में या तो छन्द रचता है या तो ऋचा । प्रेम यौवन की मधुऋतु में सौरभ की पताकायें उड़ाता है , अवनी और अम्बर में उल्लास का संचार करता है और जड़त्वपूर्ण जीवन के हिमखण्डों का द्रवीकरण करता है । कवि अपने प्रणय के आराध्य से आत्मीय पूर्ण शैली में ''अलि'' सम्बोधित करते हुये अत्यन्त प्रगाढ़ता का परिचय देता है और उस प्राण वल्लभा अलि से छन्द रचने को कहता है । सन्तों ने जहां रुप के छल छन्द बाचे हैं वहीं द्विवेदी जी रुप और सौन्दर्य के छन्दों का गायन करना चाहते हैं । पर कवि में छन्द कैसे अवतरित हों ? छन्द टूट गया है पर छन्द के अंचल से बंधी हुई राग की रश्मियां अभी तक अंतर के आलोक से आबद्ध हैं । छान्दस, विज्ञान सृष्टि रचना का विज्ञान है, राग का विज्ञान है । रागात्मक अनुभूतियों को छन्द के माध्यम से अभिव्यक्त करके कवि ने जिस वैदिक छान्दस परम्परा को पुनर्जीवित किया है वह स्तुत्य है । धन्य हो कविमंत्रिणी तुम । प्रणय के प्रणव छन्द बाचने वाले छान्दस ऋषि तुम ।

''अलि रचो छन्द
मधु के मधुऋतु के सौरभ के,
उल्लास भरे अवनीनभ के ,
जड़ जीवन का हिम पिघल चले ,
हो स्वर्णभरा प्रतिचरण मंद ,
अलि रचो छन्द ।''[२]

१- सोहन लाल द्विवेदी वासन्ती सं० १९५९, पृ०सं० २२ ।
२- सोहन लाल द्विवेदी वासन्ती सं० १९५९, पृ०सं०२६ ।

प्रेम कवि के लिये आम्र निकुंजों में अभिनव पल्लव की भांति समग्र हरीतिमा को आत्मसात करने वाला है प्रेम कवि की उत्फुल्ल पुष्प-वाटिका में मधुमयी कलानुकारी अनुरंजन करने वाला है , नीरवता की पिकी स्वर में स्वर की अनुगुंज छोड़ने वाला है और सौमनस्य में राग का मरंद विकीर्ण करने वाला है -

"अमराई में अभिनव पल्लव ,
फुलवाई में मधुमय कलरव ,
नीरव पिक का स्वर गूंज उठे,
सुमनों में भर जाये मरंद ,
अलि । रचो छन्द ।" [१]

इस प्रकार कवि ने अपने मनोराज की कल्पना कलियां प्रतीकों के माध्यम से विकसित की हैं । बहुलतायें और स्नेहालिंगन कुंज मलयानिल और मकरंद, यौवन और लावण्य, अनुताप और करुणा, पलक और अलक कवि के भावोन्माद में उसकी श्वास और निश्वास पर नाचते, उनके गीत गुंजन के प्राण हैं ।

उपालम्भ शैली में कवि अपने प्रेम के आलम्बन से अपने हीर मन को नयनों की रेशम डोरी से न गूंथने की वर्जना करते हुये भी उस निषेध में अपनी स्वीकृत प्रदान करता है । मधुमय बंधनों की पीड़ा की उपेक्षा वह निर्जन के निर्वासन को स्वीकार करने को तैयार है और प्रिय की निष्ठुरता की झकझोरियों से एकाकीपन को ही भला मानता है । इसका आशय यह नहीं कि वह प्रेम से पलायन करना चाहता है बल्कि विपरीत लक्षणाशक्ति से शब्द के अर्थ उल्टे ही ध्वनि प्रदान करते हैं । अर्थात कवि का आशय यह है कि प्रेम पीड़ा का व्यापार है । "सूर" के - "प्रीति कर काहू सुख न लह्यो" की भांति द्विवेदी जी का गीत -

मत गूंथो मेरा हीरक मन
अपनी कोमल बरजोरी से ।" [२]

प्रेम के प्रति निषेधात्मक या नकारात्मक दृष्टिकोण नहीं व्यक्त करता

१- सोहन लाल द्विवेदी बासन्ती सं० १९५१ पृ०सं० २९ ।
२- सोहन लाल द्विवेदी बासन्ती सं० १९५१ पृ०सं० २९ ।

बल्कि प्रेम की एक गहरी कचोट को व्यंजना के माध्यम से ध्वनित करता है और यह संकेत करना चाहता है कि एकाकी निर्वासन में जितनी पीड़ा होती है उससे अधिक पीड़ा की अनुभूति विरह के क्षणों में होती है। इस तथ्य को कवि ने स्वयं स्वीकार किया है कि उसका प्रिय उसके अन्ततम को भेदता रहा है और वह प्राणों में प्रेरणा बनकर प्रवेश कर गया है। प्रेम की विरहानुभूति की इसी अंतरंग दशा का आकुल अभिव्यंजन ही तो कवि कंठ से फूट पड़ा है :-

"रहने दो उसको निर्जन में, बांधो मत मधुमय बंधन में,
एकाकी ही है भला यहां, निठुराई की झकझोरी से।"[१]

प्रेम की प्रतीक्षा, मिलन की आतुरता और प्रेम की जाने कितनी अन्तरदशायें द्विवेदी जी के श्रृंगार काव्य के मानस मुक्तामणि बने हुये हैं। मधुमयी वसन्ती रात्रियों में जब सुरभि रजनीगंधा का रूप ले लेती है, ऐसे क्षणों में कवि को प्रिय की स्मृति आती है और वह प्रिय को आमंत्रित करता है :-

"मधु वसन्त की खिली यामिनी चुपके-चुपके आ जाना,
सुरभि बने रजनीगंधा में जाकर प्राण। समा जाना।"[२]

कवि स्मृति संचारी के माध्यम से प्रेम की मनोदशाओं को व्यंजित करता है। वह स्मृति के स्थान पर विस्मृति को बुलाने लगता है क्यों कि स्मृतियां विगत ज्वालाओं को और भी प्रज्जवलित करती है। व्यथा का भार मन को और भी बोझिल करता है। ऐसी स्थिति में कवि के लिये यह कठिन है कि वह स्मृति के माध्यम से उस पीड़ा को सहन कर सके। उसी भाव को कवि ने व्यक्त किया है :-

"मेरे मानस के मौन प्यार। मत सुधि बन आओ बार बार।
गत सुख की आहुति डाल डाल मत धधकाओ फिर ज्वालमाल।"[३]

कवि के प्रेम का वृन्दा-विपिन दग्ध हो चुका है। उसमें न तो अब रूप सौन्दर्य के कदम्ब ही पल्लवित होते हैं और न वैसी रूपराशि की रमणीयता ही

१- सोहन लाल द्विवेदी वासन्ती सं० १९५१, पृ०सं० ३३।
२- वही, पृ०सं० ३९।
३- वही, पृ० सं० ४१।

रह गई है -

> "इस जले वृन्दा-विपिन में फिर न मृदु मुरली बजाओ ।
> रोक लो इस मांधुरी को, सुख मिले कुछ माधुरी को ,
> शूल ही में फूलने दो फूल के बन मत खिलाओ ।"[१]

कवि अब और अधिक देर तक बंशी अब का वादन नहीं सुनाना चाहता क्योंकि यह बंशी अब विरही जीवन को और अधिक पीड़ा पहुंचाती है । इसका स्वर पसुंलियों तक प्रवेश कर जाता है ।

कवि के प्रेम में निमिष का दर्शन है, भोग की आकांक्षा नहीं । वह निमिष मात्र का दर्शन चाहता है । कवि प्रेम के एक शान्त क्षितिज की खोज में है और इसीलिये वह कोलाहल के जगत से हटकर, जहां प्रकृति का आदिम नित्य और निरंजन अनादि संगीत सुनाई पड़ता हो, उसी निर्भ्रान्त लोक में जाना चाहता है । कवि की यह यात्रा "प्रसाद" की भांति -

> "ले चल मुझे भुलावा देकर
> मेरे नाविक धीरे-धीरे ।"[२]

वाली यात्रा प्रतीत होती है जो "तज कोलाहल की अवनी रे" की भांति सुख-दुख की एक सत्यभूमि की यात्रा बन जाती है । द्विवेदी जी के प्रेम का लोक भी कोलाहल से दूर किसी सत्य के आलोक, लोक की यात्रा है -

> "इस कोलाहल जगती की जहां न जाती स्वर लहरी ,
> शान्त प्रहर हो खड़े टहलते बनकर कुटिया के प्रहरी ।"[३]

मृग शावकों की मनुहार भरी अरण्य वीथिकाओं में क्रीड़ाओं को देखकर और किसी के हाथ से दूर्वा के नये नये अंकुरों को छीन कर खाने के सुखद वातावरण को कवि पाना चाहता है । वह शुद्ध स्नेह का आकांक्षी है और जीवन की दोपहरी को प्रकृति के ऐसे ही आरण्यक वातावरण में काटना चाहता है -

---

१- सोहन लाल द्विवेदी वासन्ती सं० १९५१, पृ०सं० ४६ ।
२- वही, पृ०सं० ६१ ।

"मृग-शावक प्रत्यय से आकर पास कँ सहलाते हो ,
दूर्वा के नव - नव अंकुर को छीन हाथ से खाते हो ।"[१]

कवि के प्रणय लोक में बंकिम भृकुटि की रेखायें भी हैं । वह कौन सी परिस्थितियां हैं जिनके कारण कवि के जीवन में न तो पहले जैसा प्यार ही रहा और न तो पहले जैसी रसधार ही रही ।

अब तो कवि के लहराते धानों के खेतों के ऊपर प्रलय घन घिर आये हैं - आशंका की मन: स्थिति है -

"बंकिम आज भृकुटि की रेखा ।
वह पहले का प्यार नहीं है ,
बहती वह रसधार नहीं है ,
लहरातीशाली के ऊपर
आज प्रलय-घन घिरते देखा ।"[२]

कवि की प्रेम व्यथा अब गोपन नहीं रह सकी । हृदय की पंखुडियों में हर्ष और विषाद जिसे कवि ने बहुत दिनों तक छिपाया किन्तु वे आवरण व्यर्थ सिद्ध हुये । कैसे गोपन रहती यह कथा ? व्यथा का उद्दाम प्रवाह जो कवि के रोके नहीं रुका -

"गोपन कौन कथा, रही अब ?
खुली हृदय की शत पंखुडियां ,
देखी तुमने लडियां- लड़ियां ,
देखी हर्ष व्यथा, सभी जब ।
गोपन कौन कथा, रही अब ?"[३]

कवि के प्रेम का आलम्बन रूपगर्विता की भूमिका में भी आता है किन्तु कवि नश्वरता का काल बोध प्रस्तुत करते हुये रूप पर गर्व न करने का संकेत करता है -

"क्यों रूप राशि पर इतराते ?
रजनीगंधा जो आज खिली ,
झोंका आया, कल धूलि मिली,

१- सोहनलाल द्विवेदी बासन्ती सं० १९५२, पृ०सं०६१ ।
२- वही, पृ०सं० ६३ ।
३- वही, पृ०सं० ६७ ।

इस नश्वरता को बरकाते ,
क्यों रूपराशि पर इतराते ?''[१]

प्रेम के संयोग की मुद्रायें भी द्विवेदी जी के काव्य में क्षण भर के लिये आती हैं किन्तु वे क्षणिक नहीं हैं। दो क्षणों का परिचय ही जन्म और मरण की परिधि के पार का ज्योति पुंज बन जाता है। मूलतः वे श्रृंगार की दृष्टि से वियोग के कवि हैं किन्तु कितना पावन है दो क्षण का यह संयोग। कवि की स्मृति में प्रेयसी की निराली अलकें , मीलित पलकें अब भी याद हैं जिसके नव-मधु से कवि दृग घर भरते थे। नेत्रों का नेत्रों से,, प्राण का प्राणों से द्रवीभूत होकर एकाकार होना, कितने सुखदाई थे वे क्षण। वे क्षण जो विस्मरण के थे आज स्मरण के क्षण बन जाते हैं -

''बिखरी थी घुंघराली अलकें, मीलित थीं मदिरामय पलकें,
दृग घट नवमधु से निर्भर थे। नयन घुले नयनों में जाकर,
प्राण घुले प्राणों को पाकर, वे विस्मृति के पल सुखकर थे।''[२]

''इफ विन्टर कम्स स्प्रींग विल नाट लौंग बिहाइन्ड'' की प्रेरणा पर द्विवेदी जी की ये पंक्तियां कितनी प्रभावकारी है :-

''अब कहीं पतझर नहीं है ,
        भाग्य यों ही वो मिलेगा ,
हर्ष का जीवन खिलेगा ,
        कह रहा यह कौन ?
सुन, पतझर जहां मधुऋतु वहीं है।
        अब कहीं पतझर नहीं है।''[३]

यद्यपि द्विवेदी जी भावाभिव्यक्ति में कवि ''शैली'' से बिल्कुल अलग हो गये हैं लेकिन उन्हें इस कविता की प्रेरणा उक्त पंक्तियों से ही मिली होगी।

१- सोहन लाल द्विवेदी वासन्ती सं० १९५१, पृ०सं० ७६।
२- वही, पृ०सं० ७६।
३- वही, पृ०सं० ९६।

५-ख- राष्ट्र-प्रेम द्विवेदी जी के कवि का कर्म और रचना धर्म है किन्तु उनके काव्य की प्रेरणा भूमि श्रृंगार का एक उपेक्षित राग बिन्दु है, इसीलिये वे राग से विराग, अनुरक्ति से विरक्ति की ओर प्रस्थान कर सके। कवि का श्रृंगार करुणा और शान्त से इस प्रकार पर्यवसित हुआ कि वह अदृश्य यौवन और भैरवी का गायक बन गया। किन्तु जब कभी कवि के जीवन में प्रेम के नीरव निशीथ क्षण जागे तो वह -

> "तुम शकुन्तला सी कौन ? सींचती हो यह किसकी फुलवारी।
> कोमल मृणाल कर, लिये सुभग घट अर्ध विनत, छवि बलिहारी।"[१]

के तापस स्वप्न लोक में विचरण करने लगता है।

रवीन्द्र की कविताओं में सौन्दर्य का संगीत शान्त के शिखरों का स्पर्श करने लगता है और द्विवेदी जी के काव्य में श्रृंगार का अरुण राग नगाधिराज हिमालय की पर्वतमालाओं के उत्तुंग शिखर से उत्सर्ग का गीत गाने लगता है। प्रेम का विक्षोभ और पीड़ा ही कवि में तृप्ति के साधन के लिये विरक्ति का कोणोह धारण करती है और प्रेम की वेदना ही सार्वभौमिक करुणा में। अन्य कवियों ने "विरह वर्णन" को कठिन बताया है लेकिन द्विवेदी जी मिलन के वर्णन को कठिनतम बताते हैं।

युद्ध और प्रेम दोनों, कवि के लिये अभीष्ट हैं। राग और विराग, आग और पराग, प्रलय और प्रणय का द्वन्द ही कवि का समग्र जीवन दर्शन है -

> "प्रलय रहेगा और प्रणय भी।
> + + + +

१- सोहन लाल द्विवेदी वासन्ती सं० १९५९ पृष्ठ सं० - १११।

युद्ध करेंगे ? प्रेम करेंगे ,
क्रूर बनेंगे और सदय भी ,
+ + + +
राग रहेगा और विराग भी,
आग रहेगी औ पराग भी ।''[१]

मेघदूत के माध्यम से कालिदास ने विधुर यक्ष प्रणय-पीड़ा को मेघों के द्वारा प्रियतमा तक पहुंचाया था । कवि का प्रणयी यक्ष भी आंसुओं को प्रिय के प्रदेश में बरसाने का अनुरोध करुणाकार से करता है -

''उस प्रदेश में जाकर बरसो है पर- दुख-कातर नवघन ।
जहां छा रहे हों निर्मोही अपलक नयनों के चिंतन ।''[२]

द्विवेदी जी का श्रृंगार काव्य वियोग की अनुभूति की अभिव्यक्ति में कितना निरीह सा हो गया है । प्रिय की प्रतीक्षा में प्रेम और वेदना का एकीकृत रस उनकी कृति में द्रष्टव्य है -

''कब मिलन के क्षण बनेंगे ,
चिर प्रतीक्षा के प्रहर ये ?''[३]

कवि ने अपनी तरुणायी राष्ट्र-प्रेम के नाम सौंप दी है फिर उसकी प्यासी आंखें बूढ़े पनघट पर क्यों कर लौटती हैं ? वे अतीत के सपने क्यों कर देख रहे हैं -

''बढ़ रही ज्यों-ज्यों अवधि, त्यों-त्यों विकलता बढ़ रही है ,
सहज मानस-तट भिगोती कौन विस्मृति चढ़ रही है ,
मूर्च्छा- सी आ गई ? क्या चेतना यह कढ़ रही है ?''[४]

१- सोहन लाल द्विवेदी चित्रा सं० पंचम पृ०सं० ६० ।
२- वही, पृ०सं०-७५ ।
३- वही, पृ०सं०-२० ।
४- वही, पृ०सं०-२१ ।

ऐसा लगता है कि द्विवेदी जी के प्रणयी कवि की मानसिक प्रवृत्तियों का प्रकाशन, भावलोक की गहराई एवं अचेतन दमित आकांक्षाओं का प्रकाशन एकीकृत होकर प्रत्यक्ष हुआ है -

''मधुर आशा पर निराशा के गए लन-घन बहर ये।
कब मिलन के क्षण बनेंगे चिर प्रतीक्षा के प्रहरये।''[१]

उनका प्रणयी कवि अतीत की स्मृति में लीन हो गया है। कम्प, सम्मोह, उन्माद, आदि भाव दशायें उनकी तल्लीनता को प्रकाशित करती हैं -

''वे सोने के दिन अपने वे अपनी चांदी की रातें,
रात-रात भर दिन-दिन भर, रुसरी रिझाने की बातें।''[२]

यही नहीं वह अपने को अपराधी जैसे मानने लगा है। वह कितनी सहजता व ईमानदारी से स्वीकार करता है -

''दिया मुझे जीवन का संबल,
किन्तु दो दिवस रह न सका मैं।''[३]

द्विवेदी जी का कवि स्वच्छंद एवं निर्बन्ध कंठामुक्त प्रेम का पोषक है, उनका प्रेम लोकमंगल भावना से ओत-प्रोत है प्रेम, सौन्दर्य और सत्य का यह समीकरण प्रेम में अद्वैत सम्बन्ध की गुत्थी को सुलझाता है। ''प्रसाद'' की तरह प्रेम का उदात्त स्वरूप कवि की इन पंक्तियों में देखें -

,, लाज तजकर आज प्रियतम। खुले दिन में द्वार आओ।
मिलो मुल-भर उगर पथ में, ज्योति नव-नव भर नयन में,
बहे अविरल प्रेम-धारा, अधर से तन-क्षन पवन में,,[४]

मिलनोत्कंठा की ऐसी रमणीय अभिव्यक्ति द्विवेदी जीकेही बस की बात है। रूप चिन्तन के क्षेत्र में कवि ने कामनियों के कटाक्ष को विलास की तृष्णा की संज्ञा प्रदान की है -

---

१- सोहन लाल द्विवेदी चित्रा संस्करण पंचम पृ०सं० २१।
२- वही, पृ०सं० २७।
३- वही, पृ०सं० ५१।
४- वही, पृ०सं० १८।

"कामनियां कटाक्ष से भरतीं
नव विलास की तृष्णा कान्त ।"[१]

प्रीतिविहीन रुप उद्भ्रान्ति का विषय बनता है और वह सहृदय रसिक का अभीष्ट नहीं हो सकता । इस दर्शन का प्रतिपादन कवि ने किया है -

"रुपसियां आमंत्रित करतीं
किसी रसिक को कर उद्भ्रान्त ।"[२]

अनुपम सौन्दर्य विवेक और संयम की वस्तु है । समन्वय के उपक्रम को, सौन्दर्य के रुप में स्वीकार किया गया है -

"था अनुपम सौन्दर्य , किन्तु करता विवेक सब पर संयम,
रहे समन्वय सब भोगों का ऐसा था विधान उपक्रम ।"[३]

प्रेम की अवधारणा को स्पष्ट करते हुये कवि ने उसे अमृतत्व की संज्ञा प्रदान की है और उसे पुष्टि करता की दिव्य कला कहा है । रुप और सौन्दर्य से प्रेम की पृथक अवधारणा कवि के चिन्तन से उद्भूत हुई है -

"बही स्नेह की अमृत धारा
प्रकटित विधि की दिव्य कला ।"[४]

सौन्दर्य के अवधारण में अन्त: और बाहि: दोनों का समन्वय कवि ने स्वीकार किया है -

"पारदर्शी - से , मुकुर से थे मनोरम अंग,
झलकता अन्त: बहि: जिनमें अलौकिक रंग ।"[५]

सौन्दर्य आत्म विस्मृति का कारण बनता है । सौन्दर्य का आस्वादन देह की परिधि से चेतना को पृथक करता है । यह विधि का एक मधुर वरदान है -

---

१- सोहन लाल द्विवेदी कुणाल संस्करण १९४२, पृ०सं० -५ ।
२- वही, पृ०सं०- ५ ।
३- वही पृ०सं० -११ ।
४- वही, पृ०सं०-१३ ।
५- वही, पृ०सं०-२० ।

"बोलते जिससे, कभी तो ढाल देते प्राण ,
आत्म विस्मृति का उसे मिलता मधुर वरदान ।"[१]

सौन्दर्य की सम्पूर्णता रुप और हृदय की सन्धि में स्थित होती है और यही स्थिति यौवन को अमरता दिलाती है । सौन्दर्य कवि की दृष्टि में मात्र अंगों की मनोहर क्रान्ति ही नहीं है , बल्कि दृगों से प्राण फांक कर सुख शान्ति प्रदान करना है । कवि के शब्दों में -

"युवा हो औ अमरता भी दे रही हो संग,
रुप भी हो, हृदय भी हो भर रहा उत्संग ।

\+ \+ \+ \+

था न यह सौन्दर्य अंगों की मनोहर कान्ति,
प्राण दृग से फांक कर थे दे रहे सुख-शान्ति ।"[२]

सामान्य रुप से नेत्र नेत्रों से सम्भाषण करते हैं किन्तु कवि ने यहां नेत्रों में प्राणों का दर्शन कराया है । इस दर्शन की पुष्टि "चित्रा" के एक गीत से भी हो जाती है, जहां कवि ने यह स्वीकार किया है कि उसकी आंखें, आंखों से मिलकर चार नहीं हुई बल्कि प्राणों में प्राण घुल गये हैं और यही तदाकार रुप ही प्रेम का विषय बनता है ।

"आंखों से आंखें मिलकर अब तक न हुई हैं चार,
किन्तु प्राण में प्राण घुल गये हुये एक आकार ।"[३]

प्रेम की परिकल्पना प्रस्तुत करते हुये कवि ने उसकी संज्ञा निर्धूम ज्वाला से प्रदान की है , एक ऐसी ज्वाला जो मन को विक्षिप्त बनाती है । एक स्वर्ण की तरी है जिसमें कोई पतवार नहीं केवल संतरण के लिये सिन्धु ही सिन्धु है । कवि ने इस तथ्य को "कुणाल" काव्य में प्रकारान्तर से व्यंजित किया है -

---

१- सोहन लाल द्विवेदी कुणाल सं० १९४२ पृ०सं० २१ ।
२- वही, पृ० सं० २२ ।
३- सोहन लाल द्विवेदी चित्रा सं० पंचम पृ० सं० ४६ ।

"तब से निर्धूम लिये ज्वाला विदिग्ध बनी मैं फिरती हूं ,
जिसकी कोई पतवार नहीं, उस स्वर्ण तरी-सी तिरती हूं।" [१]

प्रेम के दाम्पत्य आदर्श को भी द्विवेदी जी ने स्वीकार किया है। पाणिग्रहण का संकल्प सुख-दुःख के कल्प के ऊपर बताया है -

"पाणिग्रहण था किया, किया था ,
तब तो तुमने ही संकल्प ,
कभी तजोगे इसे नहीं तुम ,
कुछ भी सुख-दुख का हो कल्प।" [२]

कवि ने प्रेम के पथ पर कभी छाया की कामना नहीं की। उसे छाया की अपेक्षा धूप ही भली लगी , क्योंकि धूप ही कली के खिलने की शक्ति है। धूप से ही काया कंचन बनती है। कवि ने प्रेम पथ पर संयोग की सुखद छाया नहीं चाही, वियोग की धूप को श्रेष्ठ कहा है। विप्रलम्भ ही काया को कंचन बनाता है। कवि के अनुसार -

"इस छाया से धूप भली है, खिलती मन की जहां कली है ,
बनती कंचन काया, राही। बैठो देख न छाया।" [३]

५-द- द्विवेदी जी का प्रेम जग भर से न्यारा है। वह इतना पूज्य हो गया है कि कवि के लिये वंदना और अर्चना का आश्रय हो गया है। प्रेम और वासना का आलम्बन ही उनकी पूजा और श्रद्धा का आलम्बन बन जाता है। बड़ा आश्चर्य लगता है कि वे जिसे प्रगाढ़ आलिंगन में बांधना चाहते हैं , उसके चरणों में अपना शीश भी झुकाना चाहते हैं। प्रणय में ऐसी याचना उन्हें प्रेमी रूप में रखती है या याचक के रूप में , यह एक प्रश्न चिन्ह खड़ा हो जाता है। एक और गम्भीर संकट तो तब उत्पन्न हो जाता है जब वे जिससे अधरों का दान चाहते हैं, उसी के चरणों पर अपना शीश विनत किये हुये दिखाई पड़ते हैं। उनका प्रेमी कवि या तो पूज्य भाव

१- सोहन लाल द्विवेदी कुणाल सं० १९४२, पृ०सं० ४६।
२- वही, पृ० सं० ७४।
३- वही, पृ० सं० ६९।

से ग्रस्त हो गया है । प्रेम के क्षेत्र में द्विवेदी जी कुछ आपा धापी करते हुये से दिखाई पड़ते हैं । एक ओर वे प्रिय के आगमन की अहिर्निशि प्रतीक्षा में रत हैं दूसरी ओर वे प्रेमिका को इस बात की अनुमति दे देते हैं कि वह किसी एक सीमा में बन्दी न रहकर सर्वत्र पुष्प की गन्ध की तरह जन मन के अनुरंजन का विषय बन जाये । वैसे कवि ने इस प्रकार की स्वच्छन्दता को सम्भवतः इसलिये वरण किया होगा क्योंकि उनके मस्तिष्क में आदर्शवाद काम करता रहा होगा और इसीलिये वो रूप में विचरण करने एवं यदा कदा अपने उद्यान में आने का आमंत्रण करता है । यही लगता है कि द्विवेदी जी का प्रेमी कवि चूक गया और वह असफल प्रेमी के रूप में जीवन भर आहें और उच्छ्वास भरता रहा । कवि का यह कथन कि "मेरा काव्य विधवा विलाप नहीं है" यह अर्थपूर्ण वक्तव्य नहीं लगता । यह तो एक कुंठित व्यक्ति का उद्‌गार जान पड़ता है । थोड़ी देर के लिये प्रेम की इतनी स्वच्छन्दता को आदर्शवाद का आधार मान लें तो भी एक और विरोधाभास सामने आता है कि प्रेमी कभी प्रिय से अलग नहीं होना चाहता फिर द्विवेदी जी का यह प्रेम कैसा है ? यह बात उनकी प्रेम परक कविताओं से स्पष्ट होती है कि वह प्रेमी नहीं सौन्दर्य संग्राहक कवि नहीं है और उनके प्रेम का सुनिश्चित आलम्बन भी नहीं है । यदि ऐसा कुछ होता तो एक कवि कहीं न कहीं ईमानदारी से उस आलम्बन की स्वीकृति देता । वे गीत उसी आलम्बन को समर्पित किये गये होते । और फिर एक बात और चिन्तय है कि यदि उनका प्रेम सच्चे अर्थों में एक निष्ठ होता तो वह एकान्तिक भले होता पर गोपन नहीं । गोपन प्रेम तो किसी वासना लिप्त रूपवादी कवि का विषय हो सकता है । द्विवेदी जी को इस कोटि में रख पाना भी कठिन लगता है । क्योंकि प्राय: उन्हें रहस्यवादी कहकर उनकी अन्य मानवीय प्रवृत्तियों पर लिखी रचनाओं की उपेक्षा कर दी जाती है ।

"मुड़ चली है चरण-वंदन में हृदय की शाखाये ,
शरण दो अपने चरण की । दिव्य गंगाधार में प्रिय !"[1]

द्विवेदी जी प्रणय की नदी में नौकाविहार करते दिखाई पड़ते हैं और मांझी से नावको न बांधने का आग्रह करते ही यहां तक की मांझी की पतवार फेंक देने को कहते हैं भला बतायें नौका विहार करने वालों की क्या स्थिति होगी ? "पंत" तो नौका विहार के समय मांझी और पतवार को एक साथ रखना चाहते हैं और जीवन के जन्म मरण के आर पार के सत्य को देखना चाहते हैं । वहीं द्विवेदी जी -

"आज मांझी नाव को बांधो नहीं ,
आज तुम पतवार को साधो नहीं ।"[2]

कहकर लगता है प्रेम की नदी में डूब जाना चाहते हैं और इस तरह वह "अनडूबे डूबे तरे जो डूबे सब अंग" की भांति प्रेम की गहराइयों में उतरना चाहते हैं किन्तु एक विसंगति फिर उनके साथ खड़ी हो जाती है जहां वे कह उठते हैं :-

"अब इसे बांधो न बंधन में कहीं ,
छोड़ दो जी हो जहां जाये वहीं ।"[3]

उनका प्रेमी कवि जिस स्वच्छन्दता का वरण करता है , आखिर उसका आशय क्या है ? उद्देश्य विहिन तो प्रेम भी कहीं नहीं होता । प्रेम की स्वच्छन्दता का आशय नहीं कि यह नौका बहकर जिधर चली जावे वहीं तृप्ति का घाट होगा । कैसी विसंगति है कि इस नौका में कवि का प्रेमी अकेले ही यदि यह अपनी प्रिया के साथ नौका विहार में होता तब भी ठीक था कि नौका भंग हो जाये यह कहीं भी जलमग्न हो जाये , जीवन संगिनी के साथ वह क्षण ही मुक्ति का क्षण होता पर यहां तो स्थिति ही भिन्न है और इस पर भी कवि का प्रेमी पतवार विहीन नौका को मनमानी बहने का उपक्रम जुटा रहा है । नौका को जिधर जाना चाहे वहीं चली जाये समय का प्रवाह जिधर ले जाना चाहे वहीं ले जावे लहरों का संघात 'इस नौका

१- सोहन लाल द्विवेदी चित्रा सं० पंचम, पृ० सं० २४ ।
२- वही पृ० सं० -६४ ।
३- वही पृ० सं० -६५ ।

को जिस आवर्त में चाहे वहीं ले जाये । यह तो सब उद्देश्यविहीन, आदर्शविहीन लक्ष्यभ्रष्ठ यात्रा की तरह एक स्वच्छन्द इमली के यौवनाचार्य की भांति उन्मुक्त कामना ही आदर्श केवल आरोपित है । अन्त चेतना के उद्गम – काम वृतियां है । सम्भवत: इसका कारण यह है कि राष्ट्रीयता संग्राम के व्यस्त क्षणों में कवि का गार्हस्थिक प्रेम का अवकाश न मिला हो बहरहाल द्विवेदी जी की राष्ट्रीय काव्य धारा में जितना ही अनुशासन है प्रेम के क्षेत्र में उतनी ही अनुशासन विहीन । प्रेम प्राय: द्रगों की सीमा से मुक्त होता है और वह प्राणों के पावन स्नान से सम्बन्धित होता है जबकि द्विवेदी जी प्रेमिका के रूप में द्रगों से ही देखते हैं । किसी विशिष्ट चेतना के धरातल से नहीं ।

"कब तक हम से नहलाते बीतेंगी सूनी रातें ।
कब तक असविन आंखों की पूछोगे कभी न बातें ।"[1]

कवि की प्रेमिका उनसे आंख ही चुराती रही और सम्मुख आने पर लज्जा का अनुभव करती रही :-

"क्यों तुमने आंख चुरा ली अब ?
कल तक तो-ललगते थे शशि-मुख ,
क्यों आते नहीं आज सम्मुख ।"[2]

जबकि दूसरे ओर "खुले दिन के द्वार आओ" के शब्दों में मर्यादा छोड़कर निशा के आमन्त्रण को दिवस का ही आमन्त्रण बना बैठते हैं । इससे तो यही ज्ञात होता है कि उनका प्रेम्य पक्ष तुल्य भाव भूमि पर स्थापित है । कुल मिलाकर उनके गीत उनके व्यक्तित्व के प्रति बिम्ब हैं :-

"क्यों मैं बांधू परिधि तुम्हारी,
बनूं तुम्हारी क्यों लाचारी ?
मुक्त गगन से हिलमिल खेलो ,
जीवन मुक्ति गहो ।
तुम चिर मुक्ति रहो ।"[3]

१- सोहन लाल द्विवेदी चित्रा, सं० पंचम, पृ०सं० -६५ ।
२- वही, पृ०सं० ५० ।
३- वही पृ० सं० ४४ ।

एक और विसंगति उनके प्रेमगीत से स्पष्ट होती है प्रेम तो स्वयं में पावन होता है। जो हर अपावन को पावन करता है पर अद्भुत है कवि का प्रेम लोक। जिसमें वह पावन को भी अपावन करता है। प्रेम को भाषा में बदल लेता है, अमृत के लिये मृत भाव भूमि में आ जाता है और प्रेयसी के सामने अपने को अपराधी घोषित करता है :-

"कलुषित कर से छूकर पावन,
किये स्नेह के फूल अपावन,
सदय रहे फिर भी मनभावन,
दिया अमृत घट मुझे हाथ में,
किन्तु अमृत सा बन न सका मैं।"[१]

इस प्रकार द्विवेदी जी का प्रेमास्वाद अद्वितीय गौरवपूर्ण अमृतमय है किन्तु उनका प्रेमी पार्थिव अपावन और कलुषपूर्ण है। इसीलिये वह क्षमा याचना भी चाहता है और उसके प्रेम में अपराधी मनोवृत्तियों की विम्बिता होती है।

"कैसे गये भूल ?
बोलो सरल प्राण ?
+ + +
यदि मैं गया चूक।
तो हो क्षमा दान।"[२]

प्रेम की एक विसंगति दृष्टव्य है। कवि का कहना है कि एक क्षण का संवाद युगों-युगों तक स्मृति का विषय बन गया, किन्तु एक पीड़ा भी है। कि जीवन भर के समर्थक कवि को पल भी संभालकर नहीं रख सकता प्रेम में इस प्रकार का अनुत्तरदायित्व पूर्ण गम्भीर दृष्टिकोण है। उनके प्रेम की असफलता का क्या कारण है।

प्रेम शिवत्व का विषय है और उसके लिये साधना आवश्यक होती है। द्विवेदी जी का कवि यह स्वीकार करता है :-

---

१- सोहन लाल द्विवेदी चित्रा सं० पंचम, पृ०सं० -५१।
२- वही, पृ०सं० -५७।

"सिद्ध की बेला न हो ,
हो साधना ही यह निरन्तर ।"[1]

निरन्तर साधना की यह कामना उन्हें प्रेम पथ में लाकर खड़ी कर देती है। पर साधक के लिये जिस विश्वास की आवश्यकता होती है। उसकी उनमें कमी है। स्नेही के प्रति भी वे शंकालु हैं। उनकी शंका का कोई मूल भी नहीं है क्योंकि वह प्रेम के आलम्बन को पावन ही मानते हैं। सन्दिग्धता तो अपावनता की स्थिति होती है। जब प्रिय पावन है तो फिर संदिग्धता कैसी ? और यदि संदिग्धता है तो कवि में पावनता कैसी ? और यदि कवि अपावन है तो अपने को साधना का पथिक कैसे स्वीकार करता है ? साधना की निश्छलता एवं अपावन की संदिग्धता अन्तर्द्वन्द की स्थिति उत्पन्न करती है। इस द्वन्द का कारण और निदान तो कवि ही जाने -

"मंदिर तक जाकर फिर आया, सोचा चरण कलंकित मेरे भाव
हृदय के शंकित मेरे उर में कलंक अंकित मेरे,
हो न कहीं अपवित्र मूर्ति मैं अपनी छाया से घबराया ।"[2]

द्विवेदी प्रेम के इस मानस मंदिर में अपने को प्रवेश का अधिकारी नहीं मानते और द्वार तक ही आकर कुण्ठाग्रस्त हो जाते जैसे कोई अपराधी न्यायालय के द्वार में प्रवेश करते ही ग्लानि से भर उठता है। कहीं वह अपने को मन्दिर का दीपक भी कहने लगते। इस प्रकार अपराध और समर्पण का भी अद्भुत द्वन्द ही प्रणय पथ में इस प्रकार की वक्रता की कोई गुंजाइश नहीं है। वहां तो ऋजुता तथा सरलता ही अपेक्षित है।

घनानन्द ने ठीक ही लिखा है :-

"अति सूधो सनेह को मारग है ,
जहां नेकु सयानप बाक नहीं ।
वह सांचे चले तजि आपन पौ ,
झझकै कपटी जे निशांक नहीं ।"[3]

१- सोहन लाल द्विवेदी चित्रा , सं० पंचम पृ०सं० -५२ ।
२- वही, पृ०सं० -५३ ।

प्रेम के निर्धारित और स्वीकृत मूल्यों का वरण द्विवेदी नहीं करा सके । निशंक होने की आवश्यकता थी वे शंकाग्रस्त रहें । जहां निर्भीक और अभय होने की आवश्यकता थी । वहां वे अपराधी मन: स्थिति से भयग्रस्त रहे । इसलिये उनका दीप जैसा समर्पण सात्विक प्रेम के प्रति किया गया समर्पण न होकर अपराधों की स्वीकृति से युक्त एक अपराधी का आत्म समर्पण जैसा जान पड़ता है और ऐसी स्थिति में एक-एक ईमानदार कवि की अभिव्यक्ति करते हुये दिखाई पड़ते हैं ।

''मैं मंदिर का दीप तुम्हारा ,
जैसे चाहो इसे जलाओ ,
जैसे चाहो इसे बुझाओ,
इसमें क्या अधिकार हमारा ?
मैं मंदिर का दीप तुम्हारा ।''[१]

इस प्रकार अपने युग का उद्घोषक और वैतालिक कवि प्रणय को अभिव्यक्ति देने में अद्वितीय हैं ।

१- सोहन लाल द्विवेदी चित्रा सं० पंचम, पृ०सं० -५४ ।

अध्याय-6:

राष्ट्रीय भावनायें

6-अ- हिन्दी के वरेण्य आचार्य डा0 केसरी नारायण शुक्ल हिन्दी की राष्ट्रीय कविता को देश-भक्ति की कविता की संज्ञा दी है । इस कविता के स्त्रोत को उन्होंने भारतेन्दु-युग की राजनीतिक चेतना और राष्ट्रीय जागृति से जोड़ते हुये गांधी युगीन संघर्ष की कविता कहा है । डा0 शुक्ल ने संभवतः पहली बार इस देश भक्ति की कविता को क्रियात्मक कविता की अभिधा दी है । क्रियात्मक कविता से उनका आशय एक ऐसी कविता की धारा से है जो मात्र कल्पना अथवा अनुभूति की वस्तु ही नहीं होती, वरन, जिस कविता का सम्बन्ध देशव्यापी सत्याग्रहों से, राष्ट्र की मुक्ति के आन्दोलनों से तथा राष्ट्रीय प्रमाण के भावों से होता है । ऐसी कवितायें जो भावानुभूति की आन्तरिक गहराई पर रची जाती है, जिन कविताओं के स्वर बन्दीगृह में झंकृत होते हैं, ऐसी देशभक्ति को अभिव्यक्ति देने वाली कवितायें कवियों की साधना की क्रान्तिकारी अनुभूतियां हैं । शुक्ल जी ने आधुनिक देश-भक्ति की कविता की मौलिक प्रवृत्ति के अन्तर्गत वीर पूजा को स्वीकार किया है ।[1]

देशभक्ति की भावना को जागृत करने वाले कवियों में पं0सोहन-लाल द्विवेदी प्रथम पंक्ति के कवि हैं । यद्यपि इस धारा के कवियों में

1- डा0 केसरी नारायण शुक्ल "आधुनिक काव्य धारा सं0 1943 पृ0सं0 290 से 292 के अन्तर्गत

मैथिलीशरण गुप्त को राष्ट्रीय कवियों का "दद्दा" होने का श्रेय प्राप्त है किन्तु डा० हरबंश राय बच्चन के अनुसार -

"जहाँ तक मेरी स्मृति है, जिस कवि को राष्ट्र कवि के नाम से सर्वप्रथम अभिहित किया गया, वे सोहन लाल द्विवेदी थे। बाद में प्रचार युग उन्हें पीछे छोड़कर दूसरे राष्ट्रकवि खड़े करता रहा। फिर भी हिन्दी में राष्ट्रीय धारा की कविता की जब चर्चा होगी, तो उन्हें सर्वप्रथम स्मरण किया जायेगा।"[1]

निश्चय ही "बच्चन" जी का यह कथन द्विवेदी जी के राष्ट्रीय कवि को रेखांकित करता है। इसी मत का समर्थन करते हुये डा०चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित "ललित" का यह कथन द्रष्टव्य है- "द्विवेदी जी के पूर्व राष्ट्र-कवि मैथिलीशरण की "भारत भारती" स्वातंत्र्य चेतना के स्वर को अंकृत कर रही थी, बालकृष्ण शर्मा "नवीन" की "क्रान्ति वीणा" भी दग्ध हो चुकी थी, माखनलाल चतुर्वेदी की राष्ट्रीय प्रेम की तरंगिणी भी तरंगायित हो रही थी किन्तु इन सबके बीच पं० सोहन लाल द्विवेदी के "भैरवी" का स्वर जिस ओज और तेज को लेकर सम्पूर्ण राष्ट्र में भास्वर हुआ उसका प्रभाव दिगंत व्यापी था।"[2]

मैथिलीशरण गुप्त, बालकृष्ण शर्मा "नवीन" और रामधारी सिंह "दिनकर" की राष्ट्र प्रेम की धारा का सर्वस्व वरण करने वाले पं० सोहन लाल द्विवेदी ही है। राष्ट्रीय धारा के इन कवियों के कृतित्व से

1- बाल साहित्य समीक्षा, मासिक, मई, 1981 पृ०सं० 25

2- कालपत्र, साप्ताहिक 15 मार्च, 1982 पृ०सं० 2

जो राष्ट्र राग भैरव जाग्रत हुआ है उस महाराग का तिमिर हरने वाले कवि तो पं0 सोहन लाल द्विवेदी ही हैं। मैथिली शरण जी का अपना महत्व है, किन्तु उनकी कविता पौराणिक आख्यानों, ऐतिहासिक इतिवृत्तों से मुक्ति नहीं हो पायी। "दिनकर" जी की कविता प्रशस्ति परक हो गई है अथवा तमाम ऐसे विषयों को लेकर विकीर्ण हो गई है। द्विवेदी जी की कविता राष्ट्र वादी कवियों में एक कवि की ऐसी कविता के रूप में आती है जिसमें संवेदना का विस्तार है, जिसका कैनवास विस्तृत है, जिसका औदात्य उत्सर्ग पूर्ण है। इस परिप्रेक्ष्य में द्विवेदी जी के साहित्य का जो मूल्यांकन अब तक किया गया है, वह मुझे अधूरा लग रहा है। राष्ट्र प्रेम, उत्सर्ग और स्वातंत्र्य चेतना द्विवेदी जी की काव्य सर्जना की प्रेरक मनोभूमि हैं। द्विवेदी जी पर गांधी वादी होने का आरोप है। उनकी कविता जहाँ रीति, वृत्ति और प्रवृत्तियों में एक महत्वपूर्ण आयाम को लिये हुये काव्य पुरुष की यात्रा के रूप में सामने आती है, जहाँ वह कालिदास की अमर भारती की परम्परा का कवि सिद्ध होता है, बड़ा आश्चर्य लगता है हिन्दी के उनआलोचकों पर जो बिना किसी ठीक परिज्ञान के गम्भीर अध्ययन के और कविता के मूल स्त्रोतों में बिना जाये हुये ही सामान्य टिप्पणी के द्वारा व्यंग्य जैसी बातें कर देते हैं। मैं द्विवेदी जी को केवल गांधी वादी कवि नहीं मानता हूँ औरअगर गांधी वादी कवि के रूप में उनकी स्वीकृति है तो गांधी कोई सामान्य व्यक्ति नहीं था। विश्व के इतने बड़े क्षितिज में करुणा का प्रसार करने वाला गांधी सरीखा दूसरा राष्ट्र पुरुष सामने नहीं आता।

द्विवेदी जी को गांधी वादी कवि कहने का आशय ही है कि वह करुणा के मूल कवि हैं ।

द्विवेदी जी के राष्ट्रीय काव्य पर चिन्तन करते हुये लब्ध प्रतिष्ठ आचार्य विनय मोहन शर्मा ने उनकी राष्ट्रीय कविताओं को दो रूपों में वर्गीकृत किया है-

1- प्रचारात्मक, 2- कलात्मक

"प्रचारात्मक" के अन्तर्गत उन कविताओं को लिया है, जो जन-मन को उद्बोधित करने के लिये लिखी गई है तथा जिनका उद्देश्य राष्ट्रीय-चेतना का प्रचार करना है ।[1]

इस प्रकार की कविताओं को निम्नलिखित उपशीर्षकों में वर्गीकृत करके अध्ययन किया जा सकता है-

॥1॥ युग द्रष्टा गांधी के प्रति लिखी गई कवितायें

॥2॥ राष्ट्रीय नेताओं अभिव्यक्त श्रद्धामूलक कवितायें

॥3॥ अहिंसात्मक असहयोग एवं सत्याग्रह आन्दोलनों से सम्बन्धित कवितायें

कलात्मक वर्ग की राष्ट्रीय कविताओं में वे कवितायें आती हैं जो प्रचारात्मक कोटि से भिन्न प्रकार की है । सुविधा की दृष्टि से इन्हें हम निम्नलिखित वर्गों में विभाजित कर सकते हैं -

॥1॥ विशुध्द राष्ट्र प्रेम की कवितायें

॥2॥ इतिहास एवं संस्कृति मूलक राष्ट्रीय कवितायें

॥3॥ बालकों को राष्ट्र का भावी कर्णधार मानकर लिखी गई कवितायें

॥4॥ प्रकृति प्रेम की कवितायें

1- एक कवि: एक देश पृ०सं० 86,87 के अन्तर्गत

॥5॥ ग्राम्य संस्कृति से सम्बन्धित कवितायें
॥6॥ राष्ट्रीय एकता परक रचनायें

द्विवेदी जी की राष्ट्रीय कविताओं का एक और वर्गीकरण निम्न प्रकार भी किया जा सकता है-

॥1॥ पराधीन युग की कवितायें
॥2॥ स्वतंत्र्योत्तर चेतना की कवितायें
॥3॥ सांस्कृतिक अतीत की कवितायें

इसी वर्गीकरण के आधार पर द्विवेदी जी की राष्ट्रीय कविताओं का अध्ययन किया जा रहा है ।

पराधीन युग की कवितायें -
====================

देश और काल की परिधि को दृष्टि में रखकर लिखी गई कवितायें, द्विवेदी जी के काव्य के मूल स्वरों की कवितायें है । राजनीतिक एवं राष्ट्रीय परिस्थितियों ने इन कविताओं का अभिव्यक्ति के लिये पृष्ठ-भूमि दी है । स्वतन्त्रता के पूर्व की कवितायें, बंदिनी माँ को मुक्त कराने की कतवितायें हैं । इन कविताओं में जकड़ी हुई लोह श्रृंखलायें है, हाथों में खनकती हुई हथकड़ियां हैं और प्राणों में प्रवाहित होने वाली स्वतंत्रता की मुक्तिगामी चेतना है । इस काल की कविताओं को यदि हम कवि की कृतियों के आधार पर वर्गीकृत करना चाहें तो इन्हें "भैरवी के रचना काल की कवितायें कह सकते हैं । "भैरवी" पराधीन राष्ट्र को मुक्ति प्रदान करने वाली स्वाधीन चेतना की भैरवी के रूप में आती है । इस काव्य में परा-धीनता के वातावरण को तोड़ने में क्रान्तिकारी भूमिका का निर्वाह किया है । युद्ध का भैरव-नाद ही इन कविताओं का प्राणतत्व है और भैरवी से

बढ़कर और दूसरा राग इस राष्ट्र-प्रेम को व्यक्त करने में असमर्थ है । भैरवी का स्वर बन्दना और पूजा का स्वर है, किन्तु यह वन्दना न तो पौराणिक अवतारों के प्रति की गई है और न ही इस वन्दना का आलम्बन कोई पराश्रित है । यह पूजा और वन्दना शब्द के लिये समर्पित भावनाओं की एक ऐसी रोली है, जिसकी अरुणाई आज भी कम नहीं हुई ।"

"वन्दना के इन स्वरों में एक स्वर मेरा मिला लो ।"[1]

का गीत जनमानस के आन्दोलन का एक प्रेरणादायी गीत है । यह गीत भारण के मेले में अमर होने वाले शहीदों को ही नहीं प्रेरित करता, सामान्य जन में भी राष्ट्र-प्रेम का भाव आन्दोलित करता है ।

द्विवेदी जी की राष्ट्रीय कवितायें भाववादी कोटि की कवितायें नहीं है और न ही ये कवितायें आस्था के स्वर में गाो जाने वाली कवितायें हैं । इन कविताओं में यथार्थ की एक व्यापक भावभूमि है । ये कवितायें शून्य में नहीं खोती, स्वप्न में अस्तित्व की खोज नहीं करती बल्कि अपने देश-काल के प्रति आँख खोलकर एक सजग दृष्टि देती है ।

"वन्दिनी माँ को न भूलो, राग में जब मत झूलो ।"[2]

जैसी पंक्तियाँ पढ़ते ही स्पष्ट हो जाता है कि कवि एक दायित्व बोध लिये हुये है और इस दायित्व बोध की सीमा व्यक्ति से बड़ी है, क्योंकि यह व्यक्ति में राष्ट्र बोध जगाती है । इतना ही नहीं, यह राष्ट्र बोध केवल बौद्धिकता या मानसिकता का ही स्पर्श नहीं करता, बल्कि यह राष्ट्र को माँ के रूप में, एक ममतामयी माँ के रूप में तथा पराधीन माँ के रूप में

1- सोहन लाल द्विवेदी, भैरवी सं० 1951 पृ० सं० ।

2- वही

देखने के लिये एक रागात्मक दृष्टिकोण भी प्रदान करता है । साथ ही कवि यह भी संकेत करना चाहता है कि हमारे राष्ट्र की तरूणाई कहीं प्रणय राग में ही न खो जाय, इसी लिये वह राग के झूले में मतवाले होकर झूलने वालों को एक चेतावनी भी देता है तथा राष्ट्र के ज्वलन्त प्रश्न को उनके सामने छोड़ता है। वन्दिनी माँ को न भूलने का संदेश देने वाला यह कवि राष्ट्रीय चेतना में आशाओं का संचार करने वाला कवि है ।

राष्ट्र ही वन्दना का आधार धर्म है । राष्ट्र ही अर्चना का अधिकारी है । कवि "अर्चना के रत्नकण में एक कण मेरा मिला लो ।"[1] कहकर इस ओर संकेत करता है कि वन्दना के समूचे स्वर, राष्ट्र के यशोगान के लिये समर्पित हो जायं तथा प्रत्येक इकाई एक स्वर के रूप में अपनी वन्दना का भावपुष्प समर्पित कर दे । आराधना की इस भाव भूमि में कवि कविता के दायित्व से आगे चलकर एक मुक्त कोटि में सामने आता है । किन्तु द्विवेदी जी की भक्ति का स्वर "सूर" और "तुलसी" की भक्ति से भिन्न भाव-भूमि पर पल्लवित हुआ है । कवि अर्चना के लिये स्तुति करता है, पर उसके स्त्रोत आध्यात्मिक न होकर राष्ट्रीय है । हृदय के तार यहां भी प्रकम्पित होते हैं, किन्तु इन तारों का स्पन्दन आध्यात्म से परिचालित न होकर राष्ट्र राग से परिचालित होता है । हृदय के स्पन्दित तारों को झंकृत होने के लिये वह समय उपयुक्त होगा जब श्रृंखला के बन्द टूट चुके हों । जब तक जंजीर नहीं टूटती तब तक हृदय की वीणा स्पन्दित होकर क्या करेगी ? वीणा के गीत तभी मुखरित हों जब राष्ट्र में स्वतन्त्रता का

1- सोहन लाल द्विवेदी, भैरवी सं0 1951 पृ0सं0-1

अरूणिम प्रभात हो । इस प्रभात को लाने के लिये कितने बलिदान होंगे, कितने शीश चढ़ेंगे, कितने शहीद होंगे ? इन्हीं अगणित मुण्डमालाओं के बीच " एकशीश" और चढ़ा देने के लिये पं0 सोहन लाल द्विवेदी जी का पूजा गीत व्यग्र है और यही भैरवी का प्रथम गीत है । पूजा-गीत से ही स्पष्ट हो जाता है कि स्वतन्त्रता पूर्व कवि ने राष्ट्रीय चेतना की जो चिन्गारियाँ जलाई हैं, उनमें राख नहीं है, अंगारे ही अंगारे हैं । उत्सर्ग की भावना, स्वातंत्र्यचेतना और मातृ-प्रेम की मंजुल धारायें द्विवेदी जी की राष्ट्रीय चेतना की धारा में मिलकर एकाकार हो जाती है । इन प्रवृत्तियों को हम उस युग के राष्ट्रीय कवियों में अन्य जगह भी देख सकते हैं, किन्तु द्विवेदी जी का भी भैरवी का स्वर सबसे अलग और विशिष्ट सुनाई पड़ता है । उस विशिष्टता का एक कारण यह भी है कि उनकी राष्ट्रीय कवितायें गांधी जी के संस्पर्श से पावन है, यह गांधी का संस्पर्श किसी व्यक्ति का संस्पर्श नहीं है । समूचे युग की चेतना का संस्पर्श है, करूणा और प्रेम का संस्पर्श है, हिंसा के वातावरण में अहिंसा का संस्पर्श है । द्विवेदी जी की कविता भी इसी गांधी दर्शन को छूकर समूचे देश में एक लहर बनकर फैलती है । भैरवी के स्वर में हिंसा का कोलाहल नहीं है, उसमें रक्त रंजित लोभ, हर्ष विनाश की छाया नहीं मंडराती, उसमें शान्ति और अंहिसा की सीमाओं का महाप्रमाण दिखाई पड़ता है । गांधी के असहयोग आन्दोलन का चित्र भी दिखाई पड़ता है । युगाधार गांधी का युगावतरण मूर्तिमान होता है । तथा सबसे बढ़कर राजतंत्र के खंडहर में एक स्वतंत्र भारत का अरूणिम भविष्य उदित होता है, द्विवेदी जी के शब्दों में -

" कंपता असत्य, कंपती मिथ्या, बर्बरता कंपती है थर-थर ।
कंपते सिंहासन, राजमुकुट, कंपते खिसके आते भू पर ।
है अस्त्र-शस्त्र कुंठित लुंठित, सेनायें करती गृह-प्रयाण।
रण भेरी तेरी बजती है, उड़ता है तेरा ध्वज निशान ।
है युग टूटा, है युग सृष्टा, पढ़ते कैसा यह मोक्ष मंत्र ।
इस राजतंत्र के खंडहर में उगता अभिनव भारत स्वतंत्र ।"[1]

द्विवेदी जी की पराधीन युग की कविताओं में गांधी का स्तवन प्रमुख है । किन्तु गांधी काल-चक्र के रक्त सने हुए दांतों को उखाड़ने वाला है । गांधी की यात्रायें दिग्विजयी हैं । इस काल की कविताओं में शांति और अहिंसा की सुखाद अनुभूतिमूलक कवितायें कम है । संघर्षमय शान्ति और अंहिसा भी संघर्ष से पृथक होकर नहीं जीते । वे भी संघर्ष के एक अंग बन जाते हैं । संघर्ष के क्षणों में द्विवेदी जी का कवि विप्लव गीत गा उठता है-

" रवि गिरने दे, शशि गिरने दे गिरने दे , तारक तारे,
अचल हिमांचल चल होने दे जलधि खोलकर फुंकारे,

× × × ×

खंड, खंड भूखंड अंड ब्रम्हांड पिंड नभ में डोलें
मेरे मृत्युजंय की टोली जब मां की जय-जय बोले ।"[2]

इस युग में खादी आन्दोलन का भी अपना महत्व रहा है । खादी का सम्बन्ध मात्र उद्योग से नहीं था । गांधी के अनुसार खादी एक वस्त्र ही नहीं एक विचार भी है । द्विवेदी जी की कविताओं में जहां कहीं खादी से सम्बन्धित भाव व्यक्त हुये हैं, वे वस्त्र की अपेक्षा विचार के ही अधिक निकट हैं । खादी आत्मीयता का, आत्म सम्मान का, तथा शोषक वर्ग के अपमान का प्रतीक मूल्य लेकर आती है ।

1- सोहन लाल द्विवेदी, भैरवी सं० 1951 पृ०सं० 4,5,
2- सोहन लाल द्विवेदी, भैरवी सं० 1951 पृ०सं० 130

कवि के शब्दों में-

"खादी के धागे धागे में अपने पन का अभिमान भरा,
माता का इसमें मान भरा, अन्यायी का अपमान भरा ।"[1]

खादी जो गरीबों का तन ढकती है, उनकी आहों को सान्त्वना प्रदान करती है, उसी खादी में भारत के कोटि कोटि नंगों एवं भिखमंगों की आशायें सन्निहित हैं । वस्तुतः खादी देश-प्रेम का आर्थिक समृद्धि वाला आधार ही नहीं है, भावात्मक समृध्दिवाला राष्ट्र-प्रेम का एक आन्तरिक व्यापार भी है । इस प्रकार द्विवेदी जी के राष्ट्रीय काव्य में जिन प्रवृत्तियों ने अपना स्थाना बनाया है, उनमें खादी भी एक प्रमुख भूमिका लेकर आती है । द्विवेदी जी की पराधीन युग की कवितायें भारतीय राष्ट्रीयता की गति की ताल पर रची गई कवितायें हैं इन कविताओं में सामयिकता है और उनमें आदेश का स्वर है ।

स्वातन्त्र्योत्तर चेतना की कवितायें :-

राष्ट्रीय तेजस्विता के कवि द्विवेदी जी ने स्वातंत्र्योत्तर काल की रचनाओं को "मुक्ति गंधा" में "आवाहन" "आत्मचिन्तन", जागते रहो, "अभिवाद" और "अक्षत चंदन" शीर्षकों में समायोजित किया है । स्वतंत्रता की उपलब्धि ने जहाँ कवि के स्वप्न को साकार रूप प्रदान किया है, कवि स्वतन्त्रता के स्वागत में व्याकुल कंठ से उल्लास के गीत गाउठा है -

" मुक्ति के मंगल दिवस की , आज पूजन अर्चना है।
मुक्ति के नूतन दिवस की, आज नूतन वन्दना है ।"[2]

मुक्ति का पर्व राष्ट्र-भक्ति की गर्व बेला को लेकर आया हुआ

1- सोहन लाल द्विवेदी, भैरवी सं0 1951 पृ0सं0 6
2- सोहन लाल द्विवेदी, चेतना सं0 1954 पृ0सं034

है और ध्वज तिरंगे त्रिवेणी की भांति जय केतन के रूप में अम्बर में इन्द्र धनुष की भांति रंजित हो उठा है । कवि की राष्ट्र-रंजना की कैसी उत्कृष्ट अभिव्यंजना बन पड़ी है-

" पहरा फिर जयकेतन पहरा,
तरल त्रिवेणी सा तिरंग ध्वज,
इन्द्र धनुष बन नभ में छहरा,
पहरा, फिर जयकेतन पहरा ।"[1]

स्वतंत्रता के उल्लास में डूबकर कवि राष्ट्र-धर्म को विस्मरण नहीं करता, देश-प्रेम की ज्वाला को अमंद रखने के लिये वह बार-बार सतर्क करता है-

" इस स्वतन्त्रता की अमर ज्योति की ज्वाला मन्द न हो ।
प्राणों का स्नेह चढ़ाने की वह धारा बन्द न हो । "[2]

कवि छन्दों की अगर धूप से स्वतन्त्रता सेनानियों की आरती उतारने को आकुल है क्योंकि सेनानी के उत्सर्ग ने ही तो स्वतन्त्र भारत की भारती को भास्कर बनाया है -

" तेरे गीतों से संचारित, नव भारत की भारती ।
किन छन्दों की अगर धूप से, बन्धु उतारूं आरती ।।"[3]

सुख के मादक क्षणों में वह सो नहीं जाना चाहता । स्वतन्त्रता की उपलब्धि पर वह हर्षोन्माद का गीत ही नहीं गाना चाहता, मुक्ति के उत्कर्ष पर वह जागरण का एक और गीत गाना चाहता है-

" अब न गहरी नींद में तुम सो सकोगे ,
गीत गाकर मैं जगाने आ रहा हूं ।

1- सोहन लाल द्विवेदी, चेतना सं0-1954 पृ0सं0 36

2- सोहन लाल द्विवेदी, मुक्तिगंधा-सं01972 पृ0सं0 20

3- सोहन लाल द्विवेदी, मुक्ति गंधा, सं01972 पृ0सं012

अतल अस्ताचल तुम्हें जाने न दूंगा,

अरुण उदयाचल सजाने आ रहा हूँ।"।

भैरवी का गायक मुक्तिगंधा तक आते-आते अरुण उदयाचल को अस्ताचल जाने से रोक रखना चाहता है। कैसा अद्भुत सामर्थ्य है राष्ट्र रथी की इस वाणी में। ऐसा प्रतीत होता है वह समय के सूर्य को अस्त होने से रोक रखना चाहता है, स्वातंत्र्य का यह सूर्य ही तो राष्ट्र का जीवन-धर्म है। इसका अस्ताचल गमन देखना किसी भी राष्ट्र भक्त के लिये अभीष्ट नहीं होगा। फिर इसके अरुण उदयाचल में बलि पंथियों का बलिदान है। इसी बलिदान की व्यंजना तो कवि ने अरुण उदयाचल से की है। अरुण सूर्य के अतिरिक्त अनुराग का संकेत देता है और कवि की सामर्थ्य का भी द्योतनकरता है। राष्ट्र-प्रेम की अपरिमित भावना भी धन्य हो उठी है।

सांस्कृतिक अतीत की कवितायें :-

अतीत ही वर्तमान का प्रेरक होता है और भविष्य को दृश्य देने वाला होता है। इतिहास के पृष्ठों पर वीर शिवाजी और राणा प्रताप जैसे देश भक्तों के बलिदान अविस्मरणीय हैं। द्विवेदी जी की दृष्टि भी जहां अपने वर्तमान के देशकाल को व्यक्त करती है, वहीं वह अतीत के प्रेरक प्रसंगों को सामने लाकर राष्ट्रीय-चेतना को जागृत करती है। द्विवेदी जी की "महाराणा प्रताप" सम्बन्धी कविता को उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किया जा सकता है। इस कविता के सम्बन्ध में डा० भुवनेश्वर नाथ मिश्र "माधव"

1- सोहन लाल द्विवेदी, मुक्तिगंधा, सं०1972 पृ०सं० 3

की टिप्पणी उल्लेखनीय है-

"द्विवेदी जी की राणा प्रताप कविता को सुनकर पूज्य मालवीय जी महराज अपने आसन से उठते हैं- उनकी आँखें सजल हो गई हैं, वे सोहन लाल जी को अपने वात्सल्य स्नेह की अंक वार में बाँध लेते हैं-फिर उनके सिर पर हाँथ फेरते हुये सर्वान्तःकरण से आशीर्वाद की वर्षा करते हैं:- "युग-युग जियो सोहन लाल, युग-युग जियो और देश का, भारत माता का मुख उज्ज्वल करो, राष्ट्र भारती हिन्दी का मस्तक तुम्हारी सेवाओं से ऊँचा उठे, युग-युग जियो, युंग-युग जियो, ऐसे पुत्र को जन्म देकर माँ की कोख धान्य हुई यह हमारा विश्वविद्यालय धान्य-धान्य हुआ ।"[1]

महामना मालवीय इस कविता पर क्यों न मुग्ध होते ? इस कविता का सम्पूर्ण कथ्य राष्ट्र-प्रेम के रंग से रंगा हुआ है । कवि के कंठ से नहीं, अश्रु धारा से फूटा हुआ यह गीत राष्ट्र की संतप्त पुकारों का गीत है । इस गीत में मेवाड़ देश का लक्ष्य है किन्तु यह मेवाड़ अतीत की सीमाओं से मुक्त होकर वर्तमान का मेवाड़ हो गया है । ~~मेवाड़ हो गया है~~। मेवाड़ ही नहीं, वह प्रांत की सीमासे निकलकर सम्पूर्ण राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करने लगा है । यह शक्ति द्विवेदी जी की कविता की शक्ति है जो कल्पना पर आधारित न होकर अनुभूति और भाव की प्रबलता पर आधारित है । राष्ट्रीय भावों केजागरण में ऐसी कवितायें मंत्र-शक्ति के रूप में राष्ट्रीय चेतना का संचार करती हैं ।

1- एक कवि एक देश पृ0सं09।

"जागो ! प्रताप, मेवाड़ देश के, लक्ष्य भेद हैं जगा रहे,
जागो ! प्रताप, माँ-बहनों के, अपमान छेद हैं जगा रहे ।
जागो ! प्रताप, मतवालों के, मतवाले सेना सजा रहे ।
जागो ! प्रताप, हल्दी घाटी में, बैरी भेरी बजा रहे ।
मेरे प्रताप, तुम फूट पड़ो, मेरे आँसू की धारों से,
मेरे प्रताप, तुम गूँज उठो, मेरी संतप्त पुकारों से,
मेरे प्रताप तुम बिखर पड़ो, मेरे उत्पीड़न भारों से,
मेरे प्रताप, तुम निखर पड़ो, मेरे बलि के उपहारों से ।"[1]

राणा प्रताप ही नहीं, अतीत के अनेक ऐसे प्रेरक बिन्दु हैं जिन ऐतिहासिक और राष्ट्रीय चरित्रों की ओर द्विवेदी जी की दृष्टि जाती है और ऐसी कवितायें राष्ट्रीय भावों का उद्दीपन करती है । लेकिन महाराणा प्रताप पर लिखी गई इस एककविता ने ही द्विवेदी जी को तत्कालीन श्रेष्ठतम कवियों की पंक्ति में लाकर खड़ा कर दिया था । इसी कविता ने आचार्य पं0केशव प्रसाद मिश्र को अभिभूत किया । वे भाव-विभोर होकर क कह उठे-"जब से सोहन लाल द्विवेदी की यह कविता मैंने पढ़ी है तब से मैं इन्हें अपना शिष्य नहीं, बल्कि अपना शिक्षक मानने लगा हूँ ।"[2]

राष्ट्र प्रेम की यह कविता इतनी महत्वपूर्ण सिध्द हुई है कि वह द्विवेदी जी की सम्पूर्ण काव्य-यात्रा को प्रभावित करती रही है । यह एक सुखद संयोग ही है कि मैंने , द्विवेदी जी की उस अप्रकाशित डायरी को प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की, जो अभी तक प्रकाशकों के हाथ में नहीं पड़ी। इन बिखरे हुए पृष्ठों में द्विवेदी जी के हाँथ के लिखे हुए ऐसे संकेत भी प्राप्त होते हैं जिनसे उनकी कविताओं को समझने में सहायता ही नहीं प्राप्त होती बल्कि अनुसंधान के नये सूत्र भी पकड़ में आ जाते हैं । डायरी के एक विकीर्ण

1- सोहन लाल द्विवेदी, भैरवी सं0 1951 , पृ0सं0-36
2- एक कवि एक देश, पृ0सं0-125

पत्र का अंश उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत है-

"राजस्थान,वीर भूमि मेवाड़,हल्दी घाटी मेरी काव्यात्मा का प्रेरणा केन्द्र रहा है । तत्प्रथम रचना, जिसने मुझे कवि के रूप में हिन्दी जगत में प्रतिष्ठित किया है, उसका शीर्षक है "महाराणा प्रताप के प्रति"- जो त्याग भूमि में 1928 में प्रकाशित हुई थी ।"

अतीत के चित्रण की इन कविताओं का उद्देश्य चाहे बालकों के चरित्र में राष्ट्रीय तत्वों का समावेश करना हो अथवा युवकों में वीर भावों को उद्दीपन करना है । वे राष्ट्र-प्रेम से अवश्य जुड़ी हुई है । शिवाजी, झांसी की रानी, आदि से सम्बन्धित कवितायें स्वदेश के गौरव-मय अतीत की सुधि तो दिलाती ही है, साथ ही देश की स्वतंत्रता और समृद्धि के लिये आत्माहुति देने को प्रेरित भी करती हैं । द्विवेदी जी के पेशवा शिवा । कविता की कुछ पंक्तियां देखिये-

" मेरी जननी के जन-जन में, फिर एक बार
जागो मेरे तेजस ओजस, फिर दुर्निवार ।
तेरे अखण्ड भारत का फिर,हो स्वप्न पूर्ण।
दम्भी, कायर ,क्लीवों का हो अभिमान चूर्ण ।"[1]

अतीत के गौरव चित्र ऐतिहासिक अथवा धार्मिक आख्यान लिये हुये होते हैं किन्तु उनमें देश-प्रेम की पीड़ा का स्वर अवश्य मुखरित होता है।

"कहाँ खो गये वे दिन अपने कितने तोड़े कारा के ताले ?
सुना रहा हूं तुम्हें भैरवी जागो मेरे सोने वाले ।
भूल गये वृन्दावन,मथुरा भूल गये क्या दिल्ली, झांसी?
भूल गये उज्जैन,अवन्ती,भूले सभी अयोध्या,काशी ।
यह विस्मृति की मदिरा तुमने कब पीली मेरे मतवाले ।
सुना रहा हूं तुम्हें भैरवी, जागो मेरे सोने वाले ।

1- सोहन लाल द्विवेदी, मुक्ति गंधा-सं0 1972,पृष्ठ0-93

"भूल गये क्या कुरुक्षेत्र वह जहाँ कृष्ण की गूँजी गीता,
जहाँ न्याय के लिये अचल हो पाण्डु पुत्र ने रण को जीता।"[1]

अतीत की महिमा और गरिमा वर्तमान की विषमताओं की ओर भी झकझोर देती है। अतीत शक्ति से सम्बन्धित और वर्तमान शक्ति शून्य और अकर्मण्य, इस प्रकार कवि के द्वारा अतीत का स्मरण किसी इतिहास की पुनरावृत्ति नहीं है। बल्कि स्वतंत्रता के इतिहास को शक्ति प्रदान का उद्दीपन धर्म है। कवि के शब्दों में-

"है कहाँ वह पूर्व महिमा ? है कहाँ वह दर्प गरिमा
आदि शक्ति। अशक्ति कैसी ? पददलित अभिमानिनी।"[2]

ऐतिहा ऐतिहासिक महापुरुषों के माध्यम से कवि राष्ट्र को अनुराग का, विरक्ति का, अहिंसा का और वीरता का संदेश देना चाहता है। अशोक के माध्यम से वह हिंसा के विपरीत अहिंसा का, राणा प्रताप के माध्यम से भोग के विपरीत त्याग का, वासव दत्ताके माध्यम से वासना के विपरीत प्रेम का सन्देश देना चाहता है। यही राष्ट्रीय और सांस्कृतिक स्वर उनके "कुणाल" में भी व्यक्त हुआ है। अतीत के चित्रण के साथ राष्ट्रीयता पिरोकर द्विवेदी जी ने जिस काव्य-कौशल का प्रदर्शन किया है, वह अद्वितीय है। उनकी एक प्रभावशाली कविता इस कथन को पुष्ट करने के लिये द्रष्टव्य है:-

"गोकुल के गोपाल कहाँ है, कहाँ अयोध्या के श्री राम ?
बलदाऊ बलराम कहाँ है, कहाँ बन्धु लक्ष्मण अभिराम ?
है जानकी कहाँ मिथिला की, कहाँ उर्मिला है गुणग्राम ?
कौशल्या, कैकेयी कहाँ है, कहाँ जनक दशरथ बलधाम ?

1- सोहन लाल द्विवेदी, भैरवी, सं0 1951, पृ0सं0-112
2- सोहन लाल द्विवेदी, पूजागीत, सं01959, पृ0सं0-12

वह सावित्री सत्यवान वह, कहाँ आज नल दमयन्ती ?
पांडव कहाँ ? भीम और अर्जुन, कहाँ द्रौपदी औ कुन्ती ?
कहाँ कर्ण हैं कहाँ युधिष्ठिर, कहाँ भीष्म औ द्रोणाचार्य?
एकलव्य है कहाँ, कहाँ गान्डीव, शब्द भेदी आचार्य ?
नन्द बाबा है कहाँ आज वह, वेद पुराणों के गायक ?
कालिदास भवभूति कहाँ, सरस कथा के उन्नायक ?
कहाँ विक्रमादित्य आज हैं, चन्द्रगुप्त का राज्य कहाँ ?
आज कहाँ चाणक्य देव है, हे विस्तृत साम्राज्य कहाँ ?
वीर सपूतों की सन्तति तुम, उनके नव अवतार बनो ।
ले अतीत का गौरव उज्ज्वल, जननी का श्रृंगार बनो ।"[1]

प्रचारात्मक राष्ट्रीय काव्य :-
=====================

युग दृष्टा गांधी के प्रति लिखी गई कवितायें :-
===================================

द्विवेदी जी ने गांधी जी को युग पुरुष माना है । लेकिन अपने काव्य का भी विषय गांधी जी को बनाया । गांधी दर्शन को लेकर लिखे गये उनके काव्य, चाहे वह "पूजागीत" हो या " युगाधार", "गान्ध्यायन" हो अथवा जय गांधी सभी युग दृष्टा गांधी के लिये समर्पित कृतियां हैं । श्री घनश्याम दास बिड़ला के शब्दों में-

" जितनी रचनायें f गांधी जी के सम्बन्ध में लिखी गई हैं, कदाचित् किसी मानव शरीर धारी व्यक्ति के सम्बन्ध में नहीं । ये भावोद्गार गद्य में ही नहीं पद्य में भी निकले हैं । और ये अन्तर्तम की अनुभूति होने के कारण साहित्य की अमर सम्पत्ति बन गये हैं । द्विवेदी जी का "जय गांधी" तो बापू जी का एक साहित्यिक स्मारक ही है ।"[2]

"जयगांधी" के अन्तर्दर्शन में श्री हरिभाऊ उपाध्याय ने लिखा है-

---

1- सोहन लाल द्विवेदी, बिगुल सं0-1976, पृ0 सं0-51-52
2- सोहन लाल द्विवेदी, जयगांधी, सं01956, पृ0सं04

" सोहन लाल जी की व्यथा का उद्गम राष्ट्र से होता है और उसकी अभिव्यक्ति भावात्मक तथा राष्ट्र व्यापिनी होती है । सोहन लाल जी को मैं युग-कवि मानता हूँ । गांधी जी ने युग की आत्मा को प्रकाशित किया है इसीलिये वे "युगावतार" हैं। सोहन लाल जी ने युग के स्वर में स्वर मिलाया है, अतः वे युग-कवि हुये ।"[1]

राष्ट्र के प्राण पुरुष गांधी को जितनी विराट भावभूमि में द्विवेदी जी ने चित्रित किया है, कदाचित उतने विराट रूप में हिन्दी क्या, अन्य भारतीय भाषाओं में भी उपलब्ध नहीं होता । द्विवेदी जी की राष्ट्रीयता को गांधी से सर्वथा अनुप्राणित होने के कारण गांधीवादी राष्ट्रीयताकी संज्ञा दी जा सकती है । जिस युग की समस्त चेतना गांधी को ही लेकर प्राणवती हुई हो, जिस युग की हर धड़कन में गांधी ही समाया हुआ हो, जिस युग में गांधी व्यक्ति न रहकर विराट्ट राष्ट्र का प्रतिनिधि हो गया हो, उस युग के प्रतिनिधि कवि की वाणी में यदि सम्पूर्ण रूप चित्रित हो गया है तो इसे गांधी वादी चारण की संज्ञा देना सर्वथा अनौचित्यपूर्ण है । यह प्रयत्न गांधी की न तो कीर्ति गाथा है और न ही गांधी की प्रशस्ति चारिणी वृत्ति है । चारिणी वृत्ति का सम्बन्ध तो किसी सामन्तवादी व्यवस्था की यश प्रशस्ति से होती है । गांधी जैसे संत एवं युग-पुरुष की प्रशस्ति किसी व्यक्ति की पूजा न होकर समूचे राष्ट्र की ही वन्दना का उपक्रम है । मानव जाति के इतिहास में गांधी का योगदान सर्वोपरि महत्व का है, इसी कारण द्विवेदी जी की गांधीवादी कवितायें भी

1- सोहन लाल द्विवेदी, जयगांधी, सं0 1956,पृ0सं0-2

अपने उन्नत दर्शन, पुष्ट राष्ट्र -प्रेम एवं अहिंसा से अभिमण्डित होने के कारण काव्य क्षेत्र में सर्वोपरि महत्व विभूति की कवितायें हैं। गांधी की भाँति ही ये कवितायें भी वन्दनीय हैं। वन्दना के स्वर स्वयं ही अभिनन्दन के अधिकारी है। उनकी इन कविताओं को किसने नहीं गाया ?

कोटि-2 कंठों ने - " चल पड़े जिधर दो डग मग में ,
चल पड़े कोटि पग उसी ओर "

के गीत गाये हैं। इन गीतों ने आजादी के दिनों में मर मिटने की प्रेरणा दी है। जिस कवि को कोटि-कोटि कंठों ने दुहराया है। उससे बढ़कर उसका सार्वजनिक अभिनन्दन हो ही क्या सकता है ?

गांधी कवि की चेतना में इस प्रकार समाया हुआ है कि वह निकलने का नाम नहीं लेता। मुक्ति का उल्लास हो या संघर्ष की "भैरवी" मुक्ति की अगवानी करने वाला कवि अपने स्वरों में गांधी का हर प्रमाण मुखारित करता है। महा निर्वाण की पीड़ा को कवि ने प्रति हिंसा से नहीं गांधी के संकल्प से व्यक्त किया है-

" बलि हो जाओं स्वयं, नहीं अब मानव का बलिदान करो।
करो सत्य का वरण, अहिंसा के पथ पर प्रस्थान करो।"[1]

और

" जोगांधी ने कहा, उसी की तिल-तिल पूर्ति करेंगे हम।
आज राष्ट्र के कण-कण को गांधी की मूर्ति करेंगे हम।"[2]

गांधी के निर्वाण से देश पर जो वज्रपात हुआ उसकी अन्तर्वेदना को द्विवेदी जी के कवि ने अभिव्यक्ति दी है-

"भारत का सौभाग्य सूर्य हो गया अस्त जाते गांधी।"[3]

1- सोहन लाल द्विवेदी, चेतना सं0 1954, पृ0सं0-42
2- सोहन लाल द्विवेदी, चेतना सं01954, पृ0सं0-45
3- सोहन लाल द्विवेदी, चेतना सं01954, पृ0सं0-41

बापू के जानेके बाद कवि के लिये न तो बसंत में वैसा उल्लास रह गया है और न ही होली में वैसा अनुराग । पीड़ा की व्यग्रता का कैसा अन्तर्नाद है कवि के स्वर में-

"माँ ने शिर की रोली धो ली,
कैसा बसंत ? कैसी होली ? "[1]

गांधी के निर्वाण के बाद गांधी के नाम पर अनुगमन करने वालों के भ्रष्ट राजनैतिक व्यक्तित्व पर व्यंग्य बाण चलाने में द्विवेदी जी की निर्भीक वाणी कितनी सशक्त है-

" गांधी की जय बोलो मत,
बन गांधी के अनुयायी
क्या तुम इसके योग्य आज हो,
सच कहना मेरे भाई ।"[2]

इन कविताओं से प्रमाणित होता है कि द्विवेदी जी के लिये गांधी गांधीवाद नहीं है, वह राष्ट्रीय उत्सर्ग की प्रेरणा का आदर्श है । निश्चय ही गांधी जी द्विवेदी जी के काव्यादर्श थे ।

गांधी ही द्विवेदी जी का एक वृहदतर स्वप्न है । इस स्वप्न को साकार करनेके लिये वह हर गांव को सेगांव बनाना चाहता है । हर व्यक्ति में मोहन का प्रतिरूप देखना चाहते हैं । उजड़े हुये वृन्दावन को फिर से बसाने की यह लालसा गांधी से चलकर ही तो पूर्णता को प्राप्त करेगी । कवि की मनोकामना का एक दृश्य चित्र देखों-

"से गांव बनें सब गांव आज, हममें से मोहन बनें एक ।
उजड़ा वृन्दावन बस जावें फिर दुखा की बंशी बजे नेक ।
गूंजे स्वतन्त्रता की तानें गंगा की मधुर बहावों में
है अपना हिन्दुस्तान कहाँ ? वह बसा हमारे गांव में ।"[3]

1- सोहन लाल द्विवेदी, चेतना, सं01954, पृ0सं0-51
2- सोहन लाल द्विवेदी, मुक्तिगंधा, सं01972, पृ0सं0-35
3- सोहन लाल द्विवेदी, भैरवी, सं01951, पृ0सं0-16

गांधी द्विवेदी जी के काव्य उपजीव्य बनें, राष्ट्रीय-चेतना के विकास में गांधी की छाप ने उनकी कविताओं को प्रमाणिकता प्रदान की । इतना ही नहीं, द्विवेदी जी के सांस्कृतिक काव्य के तत्वों में जिस करुणा और अहिंसा के दर्शन होते हैं । उसके बीज गांधी दर्शन से ही विकसित हुये हैं । कवि ने अपने काव्य में जिन राष्ट्र नायकों के प्रति श्रद्धा व्यक्त की है, उनमें पूज्यपाद पं० मदन मोहन मालवीय ,पं० जवाहर लाल नेहरू, सुभाष चन्द्र बोस, सरदार पटेल आदि प्रमुख हैं । किन्तु सर्वोपरि महत्व तो गांधी जी को ही दिया है । युगावतार के रूप में गांधी ही युग विधायक व्यक्तित्व पा सके हैं । कवि की वाणी में गांधी का यह युग द्रष्टा रूप स्वतंत्र भारत का स्वर्णिम अवतरण है ।

" युग परिवर्तक, युग संस्थापक, युग संचालक, हे युगाधार,
युग निर्माता युग मूर्ति तुम्हें, युग-युग तक युग का नमस्कार ।

× × × ×

"हे युग द्रष्टा, हे युग स्रष्टा, पढ़ते कैसा यह मोक्ष मंत्र ।
इस राजतंत्र के खंडहर में, उगता अभिनव भारत स्वतंत्र ।"[1]

अपनी "चेतना" काव्य संग्रह की विज्ञप्ति में द्विवेदी जी ने अपनी कविताओं की गांधी जी से सम्बध्दता व्यक्त करते हुये जो अभिमत दिया है, वह इस प्रकार है-

" आलोचकों का मत है कि मैंने अपनी रचनाओं से गांधी जी को बहुत ऊपर उठा दिया है । किन्तु बात तो इसके प्रतिकूल है । सच तो यह है कि बापू ने मेरी रचनाओं को ऊपर उठा दिया है । मेरी काव्य-साधना गांधी जी को आराध्य देवता मानकर धन्य हो गई है ।

1- सोहन लाल द्विवेदी, भैरवी सं०1941, पृ०सं०-2-3

मैं मानता हूँ कि गांधी जी को ही केन्द्र बिन्दु मानकर विगत कई युगों से राष्ट्र की चेतना परिधि बनकर घूमती रही है । मैं मानता हूँ मेरी रचनाओं का जो महत्व है, वह उनकी ही भक्ति का प्रसाद है, और उनमें जो लघुता है, वह मेरी अपनी है ।"

काव्य ग्रन्थ की इस प्रस्तावना में व्यक्त विज्ञप्ति से स्वत: प्रमाणित है कि कवि का काव्य गांधी दर्शन को ही केन्द्र बिन्दु मानकर विकसित होता है । चेतना संग्रह की कुछ कवितायें , जिनमें अर्धनग्न, राष्ट्र देवता, उपवास, महानिर्वाण तथा आज राष्ट्र के कण-कण को गांधी की मूर्ति करेंगे हम, आदि कवितायें गांधी की ही अनुगूँज से अनुगुंजित हुई है । "अर्धनग्न" शीर्षक कविता अत्यन्त मार्मिक एवं हृदय विदारक कविता है । इस कविता का प्रेरणा बिन्दु गांधी जी के जीवन में घटित एक यथार्थ घटना पर आधारित है । जिस घटना ने महात्मा की आत्मा को इतना द्रवीभूत कर दिया कि उसने एक धोती में लज्जा को लपेटे हुये निर्धनता की विवशता को देखकर अर्धनग्न रहने का व्रत धारण कर लिया । इस कविता का प्रारम्भ " चर्चा और अर्चा है जिसकी आज घर-घर में होती है किन्तु कविता का उत्कर्ष गांधी की कारुणिक वृत्ति से सम्बन्धित है-

"सिहर गई आत्मा, अस्थिर महात्मा ।
अपने उत्तरीय को निकाल
नारी पर दिया डाल
प्राणों की गहन पीर, बोल उठी हो अधीर
कातो सूत मेरी बहन
व्रत करो यह ग्रहण ।

× × × × × ×

बापू ने किया संकल्प, चले जो कि कल्प- कल्प
जब तक कोटि भाई, बहन रहते हैं यों
रहूँगा मैं भी, दुखा दुखा सहूँगा मैं भी
सेवाग्राम का यह यती, सब से अर्ध नग्न व्रती ।"[1]

राष्ट्र-देवता की बन्दना करते हुये द्विवेदी जी के स्वर न तो थकते हैं और न विराम लेना चाहते हैं । सच तो यह है कि कवि के शब्द उस शब्दातीत को व्यक्त करने में सीमा का अनुभव करते हैं, भावमूक हो जाते हैं, छन्द और स्वर धारा अवरुद्ध हो जाती है तथा कवि के सामने भाषा की समस्या उत्पन्न हो जाती है ।"राष्ट्र देवता" शीर्षक कविता का एक भाव चित्र देखें :-

" किस भाषा में करूँ आज मैं, देव,तुम्हारा वंदन ?
शब्द नहीं कर पाते हैं, समुचित सम्मान तुम्हारा,
भाव मूक हो जाते हैं,गाते गुणगान तुम्हारा,
छंद-मंद पड़ जाते हैं, रुक जाती है स्वर धारा,
उठ-उठ कर झुक-झुक जाता, मेरी वीणा का कंपन ।"[2]

" युगाधार" काव्य की "बापू के प्रति"," रेखाचित्र", " बापू", "गांधी", "सेवाग्राम की आत्मकथा ", "सेवाग्राम"आदि कविता में युगाधार गांधी को ही लक्ष्य करके लिखी गयी हैं । इन कविताओं में गांधी सांस्कृतिक चेतना के वरेण्य पुरुष के रूप में चित्रित हैं । वे करुणा के पावन प्रवाह और सत्य के गंधावाह भी हैं-

"कृत जीवन के तुम जन्म प्राण ।
तुम नव-संस्कृति के नव विधान ।
तुम करुणा के पावन प्रवाह,
तुम अमर सत्य के गन्धावाह,
समता ममता के नव वितान
तुम नव संस्कृति के नव विधान ?"[3]

1- सोहन लाल द्विवेदी, चेतना सं0 1954 ,पृ0सं0 5-6
2- सोहन लाल द्विवेदी, चेतना सं0 1954, पृ0सं0 7
3- सोहन लाल द्विवेदी, युगाधार, सं01975, पृ0सं0-2

कवि ने मुट्ठी भर हड्डियों वाले गांधी के व्यक्तित्व को भारत के नग्न फकीर के रूप में चित्रित किया है-

"है मुट्ठी भर हड्डियां, भले ही, यह लो, तुम इसको शरीर,
संसार कंपाता चलता है, यह भारत का नंगा फकीर।"[1]

गांधी को आत्म साधना के यात्री के रूप में चित्रित किया है, द्विवेदी जी ने। गांधीयुग के अभिराम राम हैं। राम को पाने के लिये वन पथ के पुरवासियों और पुरवधुओं की आंखें बिछी रहती हैं। सेवापथ पर चलने वाले से गांव के सन्त के स्वागत करने में गांवों की आंखें लगी हुई हैं क्योंकि यह गांधी ही तो गांव का देवता है। ग्राम संस्कृति को लोक प्रतिष्ठा देने वाला लोकनायक है -

" ग्रामों की उत्सुक आंखा लगी थी अपने नव अभ्यागत पर, किसको सौभाग्य प्रदान करें सब उत्कंठित थे स्वागत पर।"[2] सेवाग्राम को कविवर द्विवेदी जी ने हृदय के तीर्थ की संज्ञा दी है। तीर्थ से उसकी पावनता की अभिव्यंजना की है। गांधी के निवास, सेवाग्राम, को तपोभूमि, कर्मभूमि, धर्मभूमि कहने वाले कवि की गांधीवादी आस्था कितनी भक्तिमयी है। गांधी कवि के आराधन का विषय है क्योंकि वह युगाराधन का विषय है। इसीलिये गांधी का सेवाग्राम आश्रम भी अर्चना और साधना का केन्द्र है। आराध्य की प्रिय वस्तुयें भी प्राप्ति के उपादान बन जाते हैं। सेवाग्राम इसीलिये कवि की दृष्टि में पावन एवं जनगण के राष्ट्र का भाग है। सेवाग्राम का एक वस्तु चित्र देखें जो भाव चित्र से संयुक्त होकर मूर्त हुआ है-

---

1- सोहन लाल द्विवेदी, युगाधार सं0 1975, पृ0सं0 9
2- सोहन लाल द्विवेदी, युगाधार सं0 1975, पृ0सं0-16

" कहाँ से दूर सुदूर बसा है एक मनोहर मधुर ग्राम ,
जिसका है सेवाग्राम नाम है जिसमें लघु-लघु बने धाम ।"[1]

" से गांव का सन्त " नामक कविता में गांधी को नवयुग का संदेश प्रदान करने वाला कहा गया है । उसके अहिंसा के दान को कवि ने करुणा का अशेष दान कहकर युगावतार गांधी को करुणावतार की संज्ञा दी है । करुणावतार की संज्ञा देने के पीछे कवि का उद्देश्य यह है कि मानो गांधी के रूप में बुद्ध का अवतार हो गया, करुणावतार का यह सम्बोधन सिद्ध करता है कि कवि ने गांधी दर्शन में व्याप्त करुणा को आधार मानकर उसे राष्ट्रीय महायज्ञ में आत्माहुति करने वाला कहा है-

"करुणावतार, फिर क्या आया,
करुणा का दान अशेष लिये ?
यह कौन चला जाता पथ पर,
नवयुग का नव संदेश लिये ?"[2]

द्विवेदी जी का यह करुणावतार बैकुण्ठ बिहारी विष्णु नहीं है । वह तो बन्दीगृहों को ही बैकुण्ठ बनाने वाला मानवीय स्वातंत्र्य चेतना का युगावतार है-

" बैकुंठ बन गया बन्दीगृह, जो था रौरव के क्लेश लिये ,
यह कौन चला जाता पथ पर, नव-युग का नव संदेश लिये ?
किसने स्वतन्त्रता की आगी, पग-पग, मग-मग में सुलगादी ?"[3]

गांधी भले ही पवन की आंधी की भांति अम्बर में सत्यकेतु फहराने के लिये अवतरित हुआ है-

" फहरा अम्बर में सत्यकेतु, दिशि-दिशि के छोर प्रदेश लिये,
यह कौन चला जाता पथ पर, नवयुग का नव संदेश लिये,
वह मलय पवन, वह है आंधी वह मन मोहन, वह है गांधी ।"[4]

1- सोहन लाल द्विवेदी, युगाधार सं0 1975, पृ0सं0-19
2- सोहन लाल द्विवेदी, भैरवी सं0 1951, पृ0सं0-45
3- सोहन लाल द्विवेदी, भैरवी सं0 1951 पृ0सं0-45
4- सोहन लाल द्विवेदी, भैरवी सं0 1951 , पृ0सं0-46

हिन्दी के सुप्रसिद्ध आलोचक श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा के अनुसार-
"गांधी एक संस्कृति है और वह द्विवेदी जी में समायी हुई है। गांधी और गांधी-युग का चित्रण करने वाला कोई अन्य कवि द्विवेदी जी के बराबर नहीं है।"[1]

गांधी का विराट दर्शन द्विवेदी जी की "गांधी-दर्शन" नामक कविता में व्यक्त हुआ है। कवि ने गांधी को शारीरी व्यक्ति के रूप में न चित्रित कर अशरीरी, दृढ़ संकल्पी मन के रूप में चित्रित किया है। वह गांधी की पाषाण प्रतिमा का उपासक नहीं है। समग्र रूप में गांधी कवि के लिये एक वैचारिक जीवन-दर्शन है। इसी प्रस्तावना को गांधी दर्शन कविता में अभिव्यक्त किया गया है -

"गांधी मिट्टी का नहीं, न पत्थर का तन है।
गांधी अशरीरी है, दृढ़ संकल्पी मन है।
गांधी विचार ही, नव जीवन का दर्शन है।
गांधी निर्बल का बल है, निर्धन का धन है।"[2]

धर्म की संस्थापना के लिये ही गांधी का अवतरण हुआ है। वह अविरत कर्म का उपासक है। उसके जीवन का मर्म दलितों का उत्थान है। गांधी मानवीय सामर्थ्य है। वह बलिदान पंथ का जीवन है तथा सम्पूर्ण मानवता का सुखाद सृजन है। कवि के शब्दों में -

"गांधी है अविरत कर्म, धर्म का संस्थापन।
गांधी जीवन का मर्म, दलित का उत्थापन।
गांधी बल है, बलि पंथी का जीवन।"
गांधी भाव में नव मानवता का सुखाद सृजन।"[3]

गांधीजी की विविध भाव मुद्राओं को, विविध स्थानों में गांधी

1- लक्ष्मी कान्त वर्मा, की टेप की गयी वार्ता का एक अंश
2- सोहन लाल द्विवेदी, मुक्तिगंधा सं0 1972, पृ0सं0-80
3- सोहन लाल द्विवेदी, मुक्तिगंधा सं0 1972, पृ0सं0-80

की उपस्थिति को, यहाँ तक कि उनके जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं के चित्र खींचने में कवि नहीं चूकता । बापू की चप्पल खो जाने तक की घटना उसकी कविता में संकल्प के रूप में व्यक्त हो जाती है । कवि घटनाओं का लेखा-जोखा नहीं करना चाहता पर ये घटनायें इतनी प्रभावी होती हैं । कि उनके प्रभाव को कवि विस्मरण नहीं कर पाता । उसका कारण कवि का गांधी के प्रति विशेष अनुराग ही नहीं, राष्ट्र-प्रेम भी है । चप्पल खो जाना उतना महत्वपूर्ण नहीं जितना चप्पल का न पहनने का तथा पैदल चलने का संकल्प । यही संकल्प तो युग-कल्प बन जाता है । संकल्प का बिन्दु ही गांधी में राष्ट्रीय चेतना का सिन्धु जागृत कर देता है । इसी बिन्दु को पकड़कर कवि की कविता भी राष्ट्रीय क्षेत्र में प्रवेश कर जाती है ।

" एक बार खो गये बापू के चप्पल
चलने लगे इसलिये रात-दिन पैदल,
धरती की राह में तो सभी कुछ मिलते,
कंकड़ भी, कांटे भी,
तलुवे भी छिलते ।"

× × × × ×

बापू नित्य पैदल ही चलते,
छाले भी पड़ते, फफोले भी पड़ते,
किन्तु बापू कहाँ अपने पथ से विचलते ?
यह था वह संकल्प, जो चलता है युग, कल्प-कल्प,
साहस का देख अथ, देता है हिमालय पथ,
सिन्धु बना बिन्दु
झुक जाता पद तल में ।
श्रद्धा के पल में ।" [1]

हिन्दी छायावाद की प्रख्यात कवयित्री एवं समालोचक श्रीमती महादेवी वर्मा ने द्विवेदी जी की गांधी निष्ठा को एकान्त समर्पण की

1- सोहन लाल द्विवेदी, मुक्तिगंधा-सं0 1972, पृ0सं0-81-82

संज्ञा से अभिहित किया है-

"मैं समझती हूँ कि गांधी वाद के सबसे अच्छे व्याख्याता हैं और बापू के सम्बन्ध में उनका एकान्त समर्पण रहा है --------- वैसे हिन्दी के सभी कवियों ने गांधी जी के विषय में कुछ न कुछ लिखा है । पंत जी ने भी लिखा है, दद्दा मैथिलीशरण जी ने भी लिखा है । पर सोहन लाल जी तो एकान्त समर्पित है, इसलिये बहुत लिप्त है और बार-बार मुझको उनका स्मरण आता है, जब मैं गांधी जी का स्मरण करती हूँ ।" [1]

राष्ट्रीय नेताओं के प्रति अभिव्यक्त श्रद्धामूलक कवितायें -

स्वाधीन चेतना के कवि द्विवेदी जी के काव्य में जिन राष्ट्रीय नेताओं के प्रति श्रद्धा के स्वर व्यक्त हुये हैं, उनमें गांधी के अतिरिक्त पं० जवाहर लाल नेहरू, सरदार पटेल, लाल बहादुर शास्त्री, राजर्षि टंडन, राजेन्द्र प्रसाद, पं० मदन मोहन मालवीय आदि प्रमुख हैं । एशिया महाद्वीप के राजनीतिक स्वतंत्रता के पक्षधर जवाहर लाल नेहरू का योगदान भारतीय स्वतंत्रता के इतिहास में युगान्तकारी महत्व का है । द्विवेदी जी ने नेहरू की, वैभव को त्याग कर, आनन्द की छाया को छोड़कर बन्दीगृह तथा स्वतंत्रता के लिये विरागी जीवन जीने की मुक्त कंठ से अभिशंसा की है । नेहरू में गौतम की छाया को देखना द्विवेदी जी की समग्र दृष्टि का ही परिणाम है-

" शुद्धोदन के सिंहासन के, सुख की ममता का त्याग ।
किस गौतम के यौवन में, जागा यह परम विराग ?

x x x x

बोल उठीं गंगा की लहरें, यह है वह नर नाहर ।
जिसकी जग में विमल ज्योति, जननी का लाल जवाहर ।" [2]

1- पं० सोहन लाल द्विवेदी जी की हीरक जयन्ती, पं० पर महादेवी वर्मा का टेप की गई वार्ता का एक अंश ।
2- सोहन लाल द्विवेदी, भैरवी सं० 1951, पृ०सं०-42

पं०मदन मोहन मालवीय के प्रति द्विवेदी जी का एक विशेष अनुराग परिलक्षित होता है । वे उनके संस्कारों में रचे,बसे हैं । इतना ही नहीं मालवीय जी स्वयं द्विवेदी जी की राष्ट्रीय भावनाओं पर आधारित कविताओं के प्रशंसक रहे हैं । "राणा प्रताप " विषयक कविता ने मालवीय जी को कितनी दूर तक प्रभावित किया, इसका प्रमाण मालवीय जी के उस कविता पर व्यक्त उद्गारों में स्वतः परिलक्षित होता है । द्विवेदी जी के संस्कारों की रचना में मालवीय जी विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा काल में ही समा गये थे । उनकी स्नेहमूर्ति एवं भारतीय संस्कृति के प्रतिबिम्बधामी मूर्ति कवि के मानस पटल पर श्रद्धा का सम्बल लेकर बरबस ही अभिव्यंजित हो उठी है -

" तुम्हें स्नेह की मूर्ति कहूँ, या नव जीवन की स्फूर्ति कहूँ ,
या अपने निर्धन भारत की, निधि की अनुपम मूर्ति कहूँ ।"[1]

राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन की राष्ट्रीय सेवायें हिन्दी एवं भारतीय संस्कृति के प्रति उनकी त्याग और तपस्या की बलिदानी भावना को द्विवेदी जी के कवि ने अपनी श्रद्धा का विषय बनाया है । कवि के अनुसार राजर्षि का व्यक्तित्व पक्ष और विपक्ष की सीमा से ऊपर गांधी की आँधी के रूप में प्रदेश एवं राष्ट्र के जीवन को संजीवन प्रदान करने वाला सिद्ध हुआ।ह कवि के अनुसार राजर्षि टंडन का व्यक्तित्व अचल सुमेरु की भाँति अडिग आस्था का, संकल्पों का एक पौरुषेय व्यक्तित्व है-

" ऐ मेरे राजर्षि, अधिक इससे क्या होगा अभिनन्दन ?
नहीं भक्त ही,पर विभक्त भी, करते हैं तेरा वंदन ।
तू सुमेरु सा रहा अचल ही, बही प्रबल झंझा आँधी ।
तेरा मस्तक नहीं,झुका तेरे प्रण पर मेरा गाँधी ।"[2]

1- सोहन लाल द्विवेदी, भैरवी सं0 1951, पृ0सं0-38
2- सोहन लाल द्विवेदी, चेतना सं0 1954,पृ0सं0-62

डॉ० राजेन्द्र प्रसाद स्वतंत्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति हैं, जिन्हें कवि ने राष्ट्र देवता के रूप में चित्रित किया है। उनकी त्याग और वैराग्य वृत्ति को विदेह की परम्परा में रखकर कवि ने उनके शुभ्र पुंडरीक जीवन को स्वर्ण ज्योति से आपूर्ण केशर कुंकुम को विकीर्ण करने वाला कहा है -

" तुम विदेह की परम्परा के राज्य नियामक,
जहाँ भोग में भोग रहा जीवन भर व्यापक,
विमल रहे तुम नित्य नील नीरधि में ऐसे,
शुभ्र कमल हो, पुण्डरीक पावनम् जैसे। " [1]

पार्थिव मृत्तिका से राष्ट्र-प्रेम की जो गन्ध उद्भूत होती है, उसमें चरित्र के संकल्पवान बीजों का अंकुरण होना स्वाभाविक है। लाल बहादुर शास्त्री का व्यक्तित्व भी धरा-पुत्र का व्यक्तित्व है, जो इतिहास निर्माण करने में अनन्त आकाश की ऊँचाइयों को छूने वाला है। चरित्र की सत्य निष्ठा से द्विवेदी जी का कवि संपूर्ण रूप में अभिभूत हो उठा है। एक सामरिक योध्दा के उत्कर्ष पर श्रद्धांजलि उदगारित करनेके लिये आकुल हो उठा है -

" वह अशोक का पुत्र, समर का विजयी योधा।
शान्तिचक्र का धर्म प्रवर्तक, शान्ति पुरोधा।
उठा धरा से शिखर पहुँच,आकाश बन गया।
धरा देखती रही पुत्र, इतिहास बन गया। " [2]

स्वतन्त्रता के लिये बलिदान करने वालों में, शान्ति और क्रान्ति दोनों मार्गों के सेनानियों के प्रति कवि श्रद्धावनत है। शान्ति के पुरोधा गांधी ,जवाहर,लाल बहादुर शास्त्री के प्रति जैसा समादर का भाव है, वैसी ही निष्ठा लौह पुरुष सरदार पटेल ,क्रान्ति पुरुष सुभाष चन्द्र बोस,

---

1- सोहन लाल द्विवेदी, मुक्तिगंधा सं० 1972, पृ०सं०-101
2- सोहन लाल द्विवेदी, मुक्तिगंधा सं० 1972, पृ०सं०-95

रक्त पुरुष आजाद के प्रति अपरिमित सम्मान का भाव भी व्यक्त हुआ है। क्रान्तिकारियों के प्रति कवि की निष्ठा ने उसे दलीय घेरों से ऊपर उठाकर स्वातंत्र्य के गायक कवि के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। लौह पुरुष सरदार बल्लभ भाई पटेल का अभिनन्दन करने के लिये कवि शब्दों की सीमा की ओर संकेत करने लगता है -

"लौह पुरुष सरदार! करूं वन्दन ? तेरा किन शब्दों में?
राष्ट्र पुरुष तुझसे मिलते हैं, किसी राष्ट्र को अब्दों में।"[1]

सुभाष जैसे क्रान्तिकारी के महाप्राणों का बलिदान, उनका महाभिनिष्क्रमण" द्विवेदी जी की क्रान्ति दृष्टि में प्राणों की आहुति का महान उदाहरण है। कवि के शब्दों में -

" शान्ति की निर्मम निशा में, आज वह गृह त्याग कैसा ?
देश के अनुराग ही में, आज मौन विराग कैसा ? "

चन्द्रशेखर आजाद के खूनी इतिहास को मूर्त रूप देने वाली द्विवेदी जी की वाणी इतनी मार्मिक है कि वह आजाद की रक्तरंजित अर्थी को अन्तिम बेला में कंठ न लगा सकने की पीड़ा में रो उठी है। ओज के कवि का यह रुदन राष्ट्रभक्त आजाद के प्रति आंसुओं से भरी हुई एक हार्दिक श्रद्धान्जलि है। परतन्त्रता के बीच छटपटाती हुई लोकतन्त्र की आत्मा की आकुल पीड़ा है। कवि की यह ग्लानि, कि हम आजादी के लिये लड़ने वाले भारतीय आजाद के शहीद होने पर उसकी अन्तिम विदाई के समय अपने कन्धों को अर्थी में लगाने से वंचित रह गये। रक्त का बलिदान कितना मंहगा है। साम्राज्यवादी नियंत्रण के कठोरतम एवं क्रूर नियंत्रण में छटपटाती हुई यह पीड़ा मात्र कवि की ही नहीं, समूचे बन्दी लोकतन्त्र के पीड़ा की

1- सोहन लाल द्विवेदी, चेतना सं० 1954, पृ०सं०-21

अभिव्यक्ति है । शोक से संवेदित यह श्रद्धान्जलि समूचे राष्ट्र की ओर से अभिव्यक्ति कारुणिक श्रद्धान्जलि है, जो अत्यन्त मर्मान्तिक, हृदय विदारक है-

" वीर तुम्हारा अन्तिम दर्शन किस तरह,
पाते हम सब भीरू, हमें अधिकार क्या ।
× × × ×
अन्तिम बेला तुम्हें लगाकर कण्ठ से,
जी भर रो लेते, मिट जाती साध यह ।"[1]

द्विवेदी जी ने सूरदास, तुलसीदास, प्रसाद, रत्नाकर, प्रेमचन्द्र, पंत, आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल, निराला, हरिऔध और राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त से सम्बन्धित कविताओं में इन कवियों एवं रचनाधर्मियों की गुणात्मक विशेषताओं का संकेत करते हुये प्रकारान्तर से उनके द्वारा राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक सेवाओं की ओर संकेत किया है ।

6-ब- दर्शन शब्द दृश् । दृशिर प्रेक्षणे । धातु से करण में ल्युट प्रत्यय का योग करने पर सिद्ध होता है । "दृश्यते नेनेति" दर्शनम्", अर्थात जिसके द्वारा देखा जाता है, उसे दर्शन कहते है । यह दर्शन या तो इन्द्रिय जन्य निरीक्षण हो सकता है, या प्रत्ययी ज्ञान अथवा अन्तर्दृष्टि द्वारा अनुभूत हो सकता है ।[2] ज्ञानदृष्टि या दिव्य-दृष्टि से देखना ही दर्शन शब्द का अभिधेय है ।[3] जिसके द्वारा आत्मदर्शन हो, वही दर्शन है । दर्शन का अंग्रेजी पर्यायवाची शब्द फिलासफी । (Philosophy) । दो ग्रीक शब्दों के सम्मिश्रण से बना है , फिलास अर्थात् प्रेम या अनुराग और सोफिया

1- एक कवि एक देश- पृ०सं०237, यह कविता अत्यधिक क्रान्तिकारी होने के कारण अंग्रेज शासन द्वारा जब्त कर ली गयी थी ।

2- भारतीय दर्शन- डा०राधा कृष्णन्-विषय प्रवेश पृष्ठ-37

3- दृश्यते यथार्थतत्वमनेनेति दर्शनम् - हलायुध कोष

अर्थात् विद्या । अतः फिलासफी का अर्थ हुआ विद्या का प्रेम ।[1] किन्तु व्यवहार की दृष्टि से फिलासफी शब्द का प्रयोग दर्शन से भिन्न अर्थ में होता है । मानविकी पारिभाषिक कोश में "दर्शन" शब्द की व्याख्या करते हुये कहा गया है कि व्युत्पत्ति के अनुसार दर्शन ज्ञान के प्रति अनुराग का नाम है । यहाँ ज्ञान का अर्थ तथ्यों की जानकारी नहीं ,वरन् विश्व और मानव जीवन के गहनतम् प्रश्नों के सम्बन्ध में अभिज्ञता है । सुकरात ने दर्शन को आन्तरिक अध्ययन की ओर मोड़ा और कहा कि आत्मज्ञान ही दर्शन का मुख्य उद्देश्य है । दर्शन अस्तित्व और जीवन के मूलभूत तथा विश्वव्यापी प्रश्नों और मूल्यों का व्यवस्थित अध्ययन है यह अध्ययन कभी विश्लेषणात्मक होता है और कभी संश्लेषणात्मक ।[2] डा० चटर्जी का मत है कि "युक्ति पूर्वक तत्वज्ञान प्राप्त करने के प्रयत्न को दर्शन कहते हैं।"[3]

भारत वर्ष में पारिभाषिक अर्थ में "दर्शन ," तत्वज्ञान, आत्मज्ञान, या परमात्मज्ञान का वाचक है । यहाँ आत्मा को ही दर्शन , मनन और चिन्तन का विषय बतलाया गया है ।"[4]

मनु का मत है कि " सम्यक् दर्शन से सम्पन्न मनुष्य कर्म-बन्धन में नहीं पड़ता ।"[5]

1- भारतीय दर्शन- पं० बलदेव उपाध्याय-उपोद्घात पृ०-6

2- मानविकी पारिभाषिकी कोश-दर्शन खण्ड सम्पादक, डा० नगेन्द्र पृष्ठ-156

3- भारतीय दर्शन- चटर्जी और दत्त पृष्ठ-1

4- आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः- बृहदारण्यक उप० 2/4/5

5- सम्यग्दर्शन सम्पन्नः कर्मभिर्न निबध्यते ।
दर्शनेन विहीनस्तु संसारं प्रतिपद्यते ।।- मनुस्मृति- 6/74

खखख   खादी दर्शन खादी के प्रयोग के साथ ही ग्रामोद्योग पर बहुत बल दिया । खादी अहिंसक युद्ध का केवल प्रतीकात्मक औजार नहीं है, वह सत्य के समर्थन में अन्याय से लड़ने का एक साधन भी है । दलितों के दग्ध हृदय की आह को, उनकी कराह को, खादी सम्वेदना के आँसू प्रदान करती है -

" खादी से दीन विपन्नों की उत्तप्त उसास निकलती है ।
जिससे मानव क्या, पत्थर की भी छाती कड़ी पिघलती है,
खादी में कितने ही दलितों के दग्ध हृदय की दाह छिपी,
कितनों की कसक कराह छिपी, कितनों की आहत आह छिपी "[1]

स्वराज्य की प्राप्ति हेतु असहयोग आन्दोलन का सूत्रपात गांधी जी ने किया तथा इस सम्बन्ध में अपना वक्तव्य दिया- " मेरी राय में स्वराज्य शीघ्र प्राप्त करने का साधन स्वदेशी, हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य, हिन्दुस्तानी को राष्ट्रभाषा मानना, और प्रान्तों का भाषाओं के अनुसार नये सिरे से निर्माण करना है ।"[2] असहयोग आन्दोलन के लिये आत्म त्याग की आवश्यकता थी । इन आन्दोलनों को जनव्यापी बनाने के लिये प्रचार की आवश्यकता थी। द्विवेदी जी के काव्य में असहयोग आन्दोलन का रूप व्यक्त हुआ है । असहयोग के लिये जिस अनुशासन व आत्म त्याग की आवश्यकता थी, उस भावना को उनकी कविताओं ने विकसित किया है । विदेशी वस्त्रों के स्थान पर हाथ की कताई पर गांधी ने बल दिया था, द्विवेदी जी की कवितायें भी इस आन्दोलन के सूत्र को लेकर चलती है । गांधी की ऐतिहासिक दाण्डी यात्रा से सम्बन्धित द्विवेदी जी की कविता गांधी के आन्दोलन

1- सोहन लाल द्विवेदी, भैरवी सं0 1951, पृ0सं0-7

2- श्री हरिभाऊ उपाध्याय द्वारा अनुवादित पट्टाभि " सीता रमय्यी कांग्रेस का इतिहास प्रथम खण्ड सं01948, पृ0 सं0-151

का ही तो दस्तावेज है । गांधी जी अपने 79 साथियों को लेकर 12 मार्च 1930 को दांडी की कूच पर निकले । यह यात्रा विद्रोहियों की यात्रा थी। गांधी ने यात्रा प्रारम्भ की । ग्राम कर्मचारियों ने त्यागपत्र दिये । नमक सत्याग्रह अंग्रेजी की सत्ता के खिलाफ कोटि-कोटि भारतीयों के विद्रोह का परिचय था । गांधी जी के दांडी यात्रा पहुँच कर नमक कानून तोड़ने में सम्पूर्ण देश में सविनय अवज्ञा प्रारम्भ होने की स्थिति थी तथा गांधी ने 5 अप्रैल को दांडी पहुँच कर प्रातः काल की प्रार्थना के पश्चात् समुद्र तट से नमक बीन कर नमक कानून को तोड़ दिया । नमक कानून तोड़ते ही उन्होंने यह वक्तव्य प्रकाशित किया "नमक कानून विधिवत भंग हो गया है । अब जो कोई सजा भुगतने को तैयार हो वह जहां चाहे और सुविधा देखें नमक बना सकता है । मेरी सलाह यह है कि सर्वत्र कार्यकर्ता नमक बनावें । जहां उन्हें शुद्ध नमक तैयार करना आता हो, वहां उसे काम में भी लावें और ग्रामवासियों को भी सिखा दें । परन्तु उन्हें यह अवश्य जता दें कि नमक बनाने में सजा होने की जोखिम है और यह लड़ाई नमक कर के खिलाफ है ।"[1] नमक सत्याग्रह की इसी आन्दोलन प्रविधि में द्विवेदी जी ने स्वयं भाग लिया तथा बिन्दकी के पास ग्रामीण अंचल में नमक बनाकर इस सत्याग्रह में सक्रिय भाग लिया । उनकी दांडी-यात्रा नामक प्रसिद्ध कविता राष्ट्रीय भावनाओं को गांधी के सत्याग्रह के माध्यम से व्यक्त किया कवि के शब्दो में -

" या तो होगा भारत स्वतंत्र कुछ दिवस रात्रि के प्रहरों पर,
या, शव बन लहरेगा शरीर, मेरा समुद्र की लहरों पर ।

1- श्री हरिभाऊ उपाध्याय द्वारा अनुवादित पट्टाभि सीता रमय्या कांग्रेस का इतिहास सं0 1948 , पृ0सं0-308

बरसाने की आ गई याद धारसाने की उस यात्रा में
हो गया ध्वंस साम्राज्य बंधा जब लवण बना लघु मात्रा में ।
नव-युग का नव आरम्भ हुआ कुछ नये नमक के टुकड़ों पर
आजादी का इतिहास लिखा दांडी के कंकड़-पत्थरों पर ।"[1]

प्रस्तुत कविता में गांधी के द्वारा लगाई जाने वाली प्राणों की बाजी का चित्र खींचता है ।इसी प्रकार "बरसाने की आगई याद, धारसानेकी उस यात्रा में" से कवि ने गांधी द्वारा धारा साना नामक स्थान में धावा बोलने का संकेत किया है । धारासना सूरत जिले का एक स्थान है । गांधी जी ने वायसराय को पत्र द्वारा सूचना दी थी "ईश्वर ने चाहा तो ~~अमुक~~ धारासना पहुंच कर नमक के कारखाने पर अधिकार करने का मेरा इरादा है । मेरे साथी मेरे साथ ~~ज्वाला~~ होंगे । जनता को यह बताया गया है कि धारासना व्यक्तिगत सम्पत्ति है । धारासना पर सरकार का उतना ही वास्तविक नियंत्रण है, जितना ~~प~~ वायसराय की कोठी पर । अधिकारियों की स्वीकृति के बिना चुटकी भर नमक कोई वहां से नहीं ले सकता । इस धावे को रोकने के तीन उपाय हैं -

1- नमक कर उठा लेना । 2- मुझे और मेरे साथियों को गिरफ्तार कर लेना परन्तु जैसी मुझे आशा है, यदि एक के बाद दूसरे गिरफ्तार होने के लिये आते रहेंगे, तो यह उपाय कारगर न होगा । 3- खालिस गुण्डापन परन्तु एक का सिर फूटने पर दूसरा सिर फुड़वाने को तैयार रहेगा, तो यह वार भी खाली जावेगा ।"[2]

1- सोहन लाल द्विवेदी, भैरवी सं0 1951, पृ0सं0-76

2- श्री हरिभाऊ उपाध्याय द्वारा अनुवादित पट्टाभि सीता रमय्या: कांग्रेस का इतिहास, प्रथम खण्ड सं01948, पृ0सं0-312

द्विवेदी जी की धारसाने की उस यात्रा में इन्हीं आन्दोलनकारी सूत्रों का संकेत है । कवि ने स्पष्ट स्वीकार किया है -

" हो गया ध्वंस साम्राज्य बंटा,
जब लवण बना लघु मात्रायें ।"

कवि ने नमक के कुछ टुकड़ों पर ही नये युग का शुभारम्भ होना स्वीकार किया है तथा दांडी के कंकड़ पत्थरों पर आजादी का इतिहास लिखा हुआ पाया है । इस प्रकार यह दांडी-यात्रा स्वाधीनता के समर की एक गाथा है । इस यात्रा में चलनेवाले सैनिक योगी हैं, जो अपना शरीर उतार कर चलते हैं कवि ने इस ओर संकेत किया है-

" आश्रम में गूंज उठा सन्देश कल प्रात समर यात्रा होगी,
जिसको चलना हो चले साथ जो हो अपने घर का योगी ।"[1]

इस यात्रा में पुरुषों के साथ स्त्रियों ने भी भाग लिया । आन्दोलन की तथ्य परक स्थितियों का कैसा भावपूर्ण चित्रण कवि ने किया है-

" पति से यों पत्नी ने पूंछा,
हे नाथ, साथ ले चलो मुझे ।"[2]

इसी ओर संकेत करता है इस यात्रा में -

" पति चले चली पत्नी पुलकित
भाई बहनें चल पड़ीं संग
चल पड़ी जननि चल पड़े पुत्र
कुछ चले किशोर किशोरी भी ।"[3]

यात्रा में चलने वालों की यह टोली सम्पूर्ण वर्गों का प्रतिनिधित्व करने वाली टोली है । यह टोली ब्रिटिश राज्य के अन्याय के खिलाफ

1- सोहन लाल द्विवेदी, भैरवी सं0 1951, पृ0सं0 71
2- सोहन लाल द्विवेदी, भैरवी सं0 1951, पृ0सं0 71
3- सोहन लाल द्विवेदी, भैरवी सं0 1951, पृ0सं0 72

सत्याग्रह पर निकली हुई है । साबरमती आश्रम से नंगे फकीर गांधी के साथ चलने वाली मतवालों की यह टोली देश के दीवानों की टोली है । वस्तुतः इन कविताओं को पढ़ने से पता चलता है कि कल्पना लोक से भले ही चित्रों को सजीवता प्रदान करता है, किन्तु उसमें प्राण भरने का काम तो दांडी-यात्रा ही करती है । इतिहास का यह कठोर सत्य ही कविता का सत्य है और कवि के लिये वहीं सुन्दरम् और अभीष्ट भी है ।

दांडी-यात्रा में 5 मई, 1930 को गांधी जी बन्दी बनाये गये, जिसकी प्रतिक्रिया सारे देश में आन्दोलन के रूप में फैल गई । विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार हुआ । आन्दोलनकारियों नेहंसते-हंसते लाठियां और गोलियां खाईं । हजारों जेल में ठूंस दिये गये । दांडी-यात्रा का ज्वलन्त चित्रण द्विवेदी जी ने किया है -

" पूंछा तरूओं ने आस पास, यह है किस आसव की यात्रा,
तब काली कोयल कुहुक उठी, यह बापू की दांडी-यात्रा ।"[1]

5 मार्च सन् 1931 को गांधी- इरविन पैक्ट के अन्तर्गत सत्याग्रह संघर्ष स्थापित कर दिया गया, जो सुभाष बब्बू बाबू को स्वीकार नहीं था । अंग्रेजों द्वारा ऐसी परिस्थितियों भी पूर्ण स्वराज्य की मांग को ठुकरानेके कारण गांधी जी के नेतृत्व में भारत छोड़ो आन्दोलन प्रारम्भ हुआ । उधर नेताजी सुभाष चन्द्र बोस आजाद हिन्द की फौज की स्थापना कर, अंग्रेजी शासन को भारत से उखाड़ फैंकने के लिये संघर्षरत हुये । अन्ततोगत्वा, 15 अगस्त, 1947 को लार्ड माउन्ट बैटन ने भारत के स्वतन्त्र होने

1- सोहन लाल द्विवेदी, भैरवी सं० 1951, पृष्ठ सं० 70

की घोषणा की तो, किन्तु अखण्ड भारत को दो टुकड़ों में बांट दिया गया । द्विवेदी जी की कवितायें आन्दोलनों की गतिविधियों को, सत्याग्रह के संघर्षों को और राजनीतिक परिवर्तनों को दर्पण की भांति दिखाती ही नहीं चलतीं, बल्कि उनके सम्बन्ध में अपना एक सुनिश्चित दृष्टिकोण भी लेकर चलती है । उदाहरण के लिये गांधी -इरविन समझौते पर द्विवेदी जी का दृष्टिकोण देखें -

" यह क्षणिक सन्धि-सन्देश, सिमिटने वाली पल में छाया है,
इसके अंचल में मत सेना, यह छलना है, यह माया है ।" [1]

सचमुच द्विवेदी जी की भविष्यवाणी सर्वथा सत्य प्रमाणित हुई है थी ।

कांग्रेस आजादी के संघर्ष के काल में कोई सामान्य दल या पार्टी ही नहीं थी, वह व्यापक रूप में एक ऐसी संस्था थी जो स्वतन्त्रता के लिये संघर्षरत थी । सन् 1939 में जबलपुर में, "त्रिपुरी कांग्रेस " नामक कविता में इसका संकेत करते हुये लिखा है -

" सन् उनतालिस की ग्यारह को जब रात बदल कर बनी ऊषा,
जन गण में कोलाहल छाया मन प्राणों में छा गया नशा ।" [2]

त्रिपुरी कांग्रेस का यह जुलूस कवि के लिये स्वराज्य का एक स्वर्णिम स्वप्न था । जुलूसों और आन्दोलनों में द्विवेदी जी ने जनतंत्र की शक्ति को पहिचाना है, और इसी लिये इन आन्दोलनों को अपनी कविता का विषय बनाया है । इतिहास लेखन के लिये न ही, इतिहास को प्रेरणा का बिन्दु

1- सोहन लाल द्विवेदी, भैरवी सं0 1951, पृ0सं0-124
2- सोहन लाल द्विवेदी, भैरवी सं0 1951, पृ0सं0-97

बनाकर उत्सर्ग के भावों को जगाने के लिये त्रिपुरी कांग्रेस के इस जुलूस को कवि ने किस रूप में देखा, इसका एक शब्द चित्र देखें -

" क्या बतलाऊं क्या था जुलूस ?
यह है वह युग-युग का सपना ।
भारत में जब होगा अपना
भारत यह जब होगा अपना ।
टूटेंगी अपनी हंथ कड़ियां
ढह जायेगा यह राजतंत्र,
होगी भारत- जननी स्वतंत्र
होंगे भारत-वासी स्वतंत्र ।।"[1]

गांधी के सत्याग्रह में भाग लेने वाला कोई चरित्र वाला नहीं, उसमें तो वही प्रवेश पा सकता है जो मां- भारती की अर्चना में शीश चढ़ाने के लिये तैयार हो । सूक्ष्म दृष्टा गांधी वादी कवि का शब्द चित्र देखें -

" सत्याग्रही बने वह जिसका, देश-प्रेम से नाता हो,
अपने प्राणों से भी प्यारी, जिसको भारत माता हो ।
प्राण जायं, छोड़े न प्रण कभी, ऐसी टेक निभाता हो,
स्वतंत्रता की रटन अधर में, जिसका भाग्य विधाता हो ।"[2]

प्रेरक प्रसंग के अज्ञात होने पर कवि की सर्जना का यथार्थ मूल्यांकन नहीं किया जा सकता । " जायसी " के " पद्मावत " की शिला पर ही " राम चरित मानस " के भवन का निर्माण हुआ है । साहित्यकारों के साहित्यिक प्रासाद किसी न किसी प्रच्छन्न प्रेरक भूमि पर स्थापित होते है । बुन्देलखंड के सुप्रसिद्ध कहानीकार श्री कृष्णानन्द गुप्त से बेतवा का सत्याग्रह " की कथा सुनकर द्विवेदी जी इतने प्रभावित हुये कि सत्याग्रह से सम्बन्धित वाद की पत्रावली जो कि जनपद हमीरपुर की सिविल कोर्ट

1- सोहन लाल द्विवेदी, भैरवी सं० 1951, पृ०सं०-105
2- सोहन लाल द्विवेदी, युगाधार सं०1975, पृ०सं०-54

में आज भी सुरक्षित हैं , का अवलोकन करके सम्पूर्ण घटना का एक जीवन्त चित्र उपस्थित किया । कविता की कुछ पंक्तियाँ देखें -

" भारत माता की जयकार हुई, कूलों में,और कछारों में ।
गांधी जी की जय-जय गूँजी, लहरों में और कगारों में ।
कारागृह भेजे गये वीर, वे चले हँसते मुसकाते ।
जो बढ़ते दुःख मिटाने को, वे दुःख नहीं मन में लाते ।"[1]

द्विवेदी जी को विश्वास है जन शक्ति पर । उन्हें युग परिवर्तन के संकेत मिलने लगे हैं, स्वतंत्रता का आभास होने लगा है -

"युग परिवर्तन का युग आया, अब चल न सकेगा अनाचार,
सोई जनता है जाग उठी,युग धर्म रहा सबको पुकार ।।"[2]

स्वदेश की पराधीनता की कड़ियाँ जब तक नहीं टूटी, जनता के लिये जनता की भाषा में जनता के कवि ने जो जनगीत लिखे वह जन-जन कंठहार बन गया । छायावाद के स्रष्टा प्रतिष्ठ कवि पं० सुमित्रा नन्दन पन्त ने द्विवेदी जी की आन्दोलन परक कविताओं को स्फूर्तिदायिनी रचनाओं की संज्ञा दी है, उनके अनुसार -

" दाण्डी-यात्रा और त्रिपुरी कांग्रेस सजीव मार्मिक भावना में ओत-प्रोत सुन्दर काव्य के नमूने हैं । दांडी यात्रा में कवि की भावना का उद्ग्रीव सिन्धु मुखर हो उठा है । त्रिपुरी कांग्रेस में कवि ने अपनी कल्पना के बल से धरती के स्तर को चीरकर,पुरातन कौशल से साम्राज्य के ध्वज को फिर से उठा दिया है । ये सभी सबल एवं स्फूर्ति दायिनी रचनायें हैं ।"[3]

स्वतंत्रता के पूर्व की परिस्थितियाँ, सत्याग्रह और असहयोग

1- सोहन लाल द्विवेदी, युगाधार सं० 1975, पृ०सं०-354
2- सोहन लाल द्विवेदी, युगाधार सं० 1975, पृ०सं०- 76
3- एक कवि एक देश, पृ०सं० 182

आन्दोलनों के विषय में द्विवेदी जी ने अपनी दैनन्दनी में संस्मरण के रूप में अंकित किया है, जिसका एक अंश देखें -

" 1921 - देश में असहयोग आन्दोलन स्वतंन्त्रता के आन्दोलन का युग पुरुष के नेतृत्व में अरुणोदय हो रहा था । देश में, जनता में एक आग सुलग रही थी देश को स्वतन्त्र करनेकी । आये दिन आग्नेय भाषण होते। क्या किशोर, क्या तरुण, क्या वृद्ध सभी बलिवेदी पर प्राणोत्सर्ग करने को मचल रहे थे । खादी वेश में सत्याग्रहियों की सेना सुसज्जित हो रही थी, जेल जाने की सबमें उद्दाम आकांक्षा थी और फांसी के तख्ते में मुस्कराते हुये झूम जाने की ।"[1]

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व जनमानस में व्याप्त उत्साह एवं उमंग के विषय में द्विवेदी जी लिखते हैं -

" स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व जनमानस में व्याप्त उत्साह, मर मिटने की उमंग थी उसकी कल्पना भी आज की पीढ़ी नहीं कर सकती । उत्साह स्वयं काव्य के लिये प्रेरणा का प्रबल स्त्रोत है । जन-जन में एक आग धधक रही थी, दासता की श्रृंखला को ब टूक-टूक कर देने के लिये ।"[2]

सत्याग्रह और आन्दोलन का स्वरूप अहिंसात्मक होने के कारण कवि का काव्य, क्रान्ति के रक्तपात वाले स्वरूप को छोड़कर शान्ति के बलिदानी मार्ग का अनुसरण करने वाला सिद्ध हुआ । द्विवेदी जी के काव्य में अहिंसा का साम्प्रदायिक स्वरूप न होकर उसका व्यापक रूप में प्रतिपन्न हुआ है । वह अहिंसा गांधी के राजनीतिक एवं सांस्कृतिक जीवन को मानवीय धरातल पर

1- द्विवेदी जी की हस्तलिखित दैनन्दनी से ।
2- द्विवेदी जी की हस्तलिखित दैनन्दिनी से ।

प्रतिष्ठापित करने वाली सिद्ध हुई। अहिंसा गांधी युग की हीनहीं, सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति की सारभौम तत्त्व रही है। गांधी ने उसे राजनीति के क्षेत्र में भी व्यावहारिक बनाया। द्विवेदी जी की अहिंसा विषयक भावना उनके राष्ट्रीय काव्य की अन्तर्वर्ती चेतना बनकर अभिव्यक्ति हुई है। कवि ने हिंसा की पराजय और अहिंसा की विजयिनी मांगलिक शक्ति का संकेत किया है -

" जय हो तेरी मातृ भूमि की, तेरे सत्य अहिंसा की,
जय हो तेरी और पराजय हो, भय की प्रतिहिंसा की।"[1]

अहिंसा को कवि ने युगजीवन का सुख समृद्धि का एवं जन क्रान्ति का युग व्यापी तत्व स्वीकार किया है -

" आज देश में है जो कुछ भी सुख समृद्धि या शान्ति,
एक अहिंसा से सुखमय है, जीवन में जन क्रान्ति।"[2]

राष्ट्र का मानचित्र, कवि, रक्त-क्रान्ति से नहीं शान्ति और अहिंसा के रंगों से रंगना चाहता है। जनजीवन के प्राणों में सहिष्णुता को व्याप्त करना चाहता है -

" यदि न अहिंसा के द्वारा होती स्वतंत्रता प्राप्त,
तो न राष्ट्र के प्राणों में होती सहिष्णुता व्याप्त।"[3]

कवि के लिये अहिंसा राजनीतिक हथकंडा नहीं है, वह गांधी र संस्कृति का विधायक रचना तत्व है। सम्पूर्ण मानवता का, मानवीय मूल्यों का पोषण करने वाली अहिंसा करूणा की एक पावन धारा है, जो प्राणों के अन्तराल से प्रवाहित होकर जनतंत्रीय क्रान्ति के रूप में समाविष्ट हुई है।

1- सोहन लाल द्विवेदी, मुक्तिगंधा, सं० 1972, पृ०सं० 84
2- सोहन लाल द्विवेदी, चेतना, सं० 1954, पृ०सं० 53
3- सोहन लाल द्विवेदी, चेतना, सं० 1954, पृ०सं० 52

आचार्य पं० किशोरी दास बाजपेई के अनुसार पं० सोहन लाल द्विवेदी उशना कवि हैं । उनके अनुसार -

"अंग्रेजी शासन से मुक्त होने के लिये जो संघर्ष चला था उसमें जिन कवियों से प्रेरणा मिली, उन्हें हम राष्ट्र-कवि कहते हैं । राष्ट्र कवि तो राष्ट्र के सभी कवि हैं, पर उस विशिष्ट वर्ग के कवियों के लिये यह एक पारिभाषिक नाम समझिये । हम ऐसे कवियों को "औशनस कवि" भी कह सकते हैं - उशना - सम्प्रदाय के कवि औशनस । उशन् प्रातिपादिक का पद है - "उशनः" संस्कृत में विसर्ग हटाकर हिन्दी में "उशना" पद । श्री कृष्ण ने उशना को संसार का सर्व श्रेष्ठ कवि कहा है : कवीना - मुशनः कविः । उशना = शुक्र - कवि का नाम है । वे असुर कवि थे । जब देवासुर- संग्राम हो रहा था, तब शुक्र कवि (उशना) ने असुरों को बार बार विजय दिलायी । प्रसिद्ध है कि शुक्र को संजीवनी विद्या आती थी , जिससे वे मरे हुये असुरों को जीवित कर देती थी । कायर से कायर को समर - रसिक बना देती थी । कृष्ण ने उसी वाणी की प्रशंसा की है । उसी औशनस सम्प्रदाय के कवि हैं पंडित सोहन लाल द्विवेदी ।"[१]

भैरवी के कवि पं० सोहन लाल द्विवेदी भी देवासुर संग्राम के ही तो कवि हैं । विजातियों द्वारा राष्ट्र को पराधीन बनाने तथा राष्ट्रीय युद्ध में जन-जातियों का समर्थन करने वाला कवि एक प्रकार से दिव्य समर काव्य की

१- एक कवि एक देश, पृ०सं० ५४ से ५६ के अन्तर्गत ।

रचना करता है, वह किसी महाभारत के युद्ध से कम महत्व का नहीं होता।

भारत को स्वाधीन बनाने के लिये किया जाने वाला युद्ध आधुनिक युग का महाभारत है, देवासुर संग्राम है और उस युद्ध में भैरवी सुनाने वाला कवि निश्चय ही ओजस्वी कवि या राष्ट्रकवि है।

डा० सूर्य नारायन व्यास ने भी द्विवेदी जी को विशुद्ध रूप से राष्ट्र कवि की श्रेणी में स्वीकार किया है। व्यास जी की मान्यता इस सम्बन्ध में इस प्रकार है -

" राष्ट्रीय चेतना में जिनकी कविता की गूंज हिन्दी जगत में सर्व-प्रथम सुनाई दी, वे थे मैथिली शरण गुप्त। उनकी भारत-भारती ने जो कार्य किया है, वह नींव का कार्य है। उनसे बहुतों ने प्रेरणा ली है और कवि ने अपना एक युग निर्मित किया है। उसके बाद "नवीन " जी का और " एक भारतीय आत्मा " का नाम लिया जा सकता है। दोनों ही राष्ट्र जागरण में अवश्य ही अपना स्थान रखते हैं, किन्तु मूलतः दोनों ही कवि श्रृंगार और प्रेम के मर्म मृदुल भावना शील कवि हैं। इस कारण दोनों ने जन-हृदयों में प्रवेश किया है। अवश्य ही उनकी राष्ट्र चेतनामयी कवितायें ओजपूर्ण हैं, अनेक हृदय में चिनगारियां उठाई हैं। किन्तु जो स्थान कविवर सोहन लाल जी का है, वह अपनी जगह अनन्य है। वे विशुद्ध रूप से राष्ट्र कवि माने जा सकते हैं। वे जागरण-काल के राष्ट्र वैतालिक ही हैं। गांधी-युग के प्रतिनिधि के रूप में वही एक मात्र विशिष्ट कवि हैं।" [1]

डा०शिव मंगल सिंह "सुमन " ने भी युगाधार कवि के रूप में

1- एक कवि एक देश, पृ०सं० 61

द्विवेदी जी के काव्य को राष्ट्रीय जागरण का काव्य स्वीकार किया है।

उनके अनुसार -

" स्वातन्त्र्य प्राप्ति के संघर्षों और आवेशों में इतना अवकाश ही नहीं था कि गांधी वाद के सांस्कृतिक स्वरूप अथवा उसके अन्तर्पक्ष पर कवि की दृष्टि ठहर पाती, पर उस समुद्र मंथन के दौरान में दानवों और असुरों के संघर्ष का जो प्रथम विस्फोट हुआ उसके क्रिया-कलापों और अनुष्ठानों के हृदय वर्णन में वह पूर्ण सक्षम प्रमाणित हुआ। साहित्य के सिपाही का दाय उसने पूर्ण उत्तरदायित्व के साथ निभाया। इसीलिए राष्ट्र के जागरण और उत्सर्ग की बेला की मानसिक उथल-पुथल के दोनों छो " एक भारतीय आत्मा " की पुण्य अभिलाषा और पंडित सोहन लाल द्विवेदी के वन्दना गीत के रेशमी डोर से जुड़े हुये हैं -

" जब हृदय का तार बोले
  श्रृंखला के बन्द खोले
  हो जहाँ बलि शीश अगणित
एक शिर मेरा मिला लो,
  वन्दना के इन स्वरों में
    एक स्वर मेरा मिला लो।"

यह एक गीत ही सदा-सदा के लिये वीणा वादिनी की वीणा का श्रृंगार बनने के लिये पर्याप्त है।" [1]

देश भक्ति का अनुराग और राष्ट्रीयता ही द्विवेदी जी की कविताओं का उन्मेष है। इन कविताओं की मंत्र शक्ति " वन्दे मातरम् " जैसी है।

1- एक कवि एक देश, पृष्ठ० 83

इन कविताओं में राष्ट्रप्रेम की ही पीड़ा है । " के बले मा तुमि अबले ?" की भावना उनकी कविताओं में वंदिनी माँ के रूप में चित्रित हुई है । द्विवेदी जी की कविता राष्ट्र-प्रेम की दीप शिखा है, जो मातृ की महिमामयी मूर्ति को समर्पित की गई है । यह मूर्ति मृण्मय न होकर ममत्व से युक्त है । वे मुख्य रूप से राष्ट्रवादी कवि हैं । श्री अमृत लाल नागर के शब्दों में- "जिस तरह छायावादी काव्यधारा की चतुष्टयी में पंत-, निराला, प्रसाद और महादेवी वर्मा के नाम लिये जाते हैं, उसी तरह यदि राष्ट्रवादी कवि चतुष्टयी का चुनाव किया जाय तो गया प्रसाद शुक्ल "सनेही" माखन लाल चतुर्वेदी, मैथिलीशरण गुप्त और सोहन लाल द्विवेदी के नाम ही हमारे सामने आयेंगे ।"[1]

राष्ट्र-प्रेम की जैसी उर्जा कविवर द्विवेदी जी की " शहीद " शीर्षक कविता में व्यक्त हुई है, वह सर्वथा अप्रतिम है । स्वतंत्रता का सौदा प्राणों पर ममता करने वालों से नहीं किया जा सकता है । बिना तेल के दीप जलाने का प्रश्न अत्यन्त जटिल है-

" प्राणों पर इतनी ममता और स्वतंत्रता का सौदा ।
बिना तेल के दीप जलाने का है कठिन मसौदा ।।"[2]

स्वतंत्रता के लिये आँसू की लड़ियों को बिछाना पड़ेगा बिना शीश चढ़ाये हुये हथकड़ियाँ कैसे टूटेंगी । कवि के ही शब्दों में -

" आँसू बिखराते बीतेगीं जलती जीवन की घड़ियाँ,
बिना चढ़ाये शीश टूटती नहीं देश की कड़ियाँ ।।"[3]

राष्ट्र के लिये बलिदान हो जाना ही कवि के लिये सबसे बड़ा सुख है और वही जीवन जीने की सार्थकता है । माखन लाल चतुर्वेदी जी ने एक

1- एक कवि एक देश, पृ०सं० 92
2- सोहन लाल द्विवेदी, भैरवी सं० 1951, पृ०सं० 85
3- सोहन लाल द्विवेदी, भैरवी सं० 1951, पृ०सं०85

फूल के माध्यम से देश-प्रेम के भावों को अभिव्यक्ति दी है । वह न तो देवों के शीश पर मंडराना चाहता है और न ही सुन्दरियों के वृक्ष का हार बनना चाहता है । वह तो शहीदों की राह पर उत्सर्ग होना चाहता है -

"मुझे तोड़ देना बनमाली उस पथ पर देना तुम फेंक,
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने जिस पथ जायें वीर अनेक ।"[1]

द्विवेदी जी की यही कामना एक दूसरे रूप में व्यक्त हुई है । वह शहीदों के पैरों के नीचे नहीं कुचलना चाहता बल्कि शहीदों के जनाजे की भाँति बलि पथ का पंथी बनना चाहता है, जिसमें जन-जन के श्रद्धा के फूल चढ़ सकते हों तथा जीवन की सार्थकता का एक अपेक्षित माधुर्य अपनी आकांक्षाओं को पूर्णता प्रदान करता है । -

" दुनिया में जीने का सबसे सुन्दर मधुर तकाजा,
ओ, शहीद उठने दे अपना फूलों भरा जनाजा ।"[2]

बंदीगृह की हथकड़ियां राष्ट्रीय उत्सर्ग के कवि को मणियों की लड़ियां की भाँति दिखाई पड़ती है । इन हथकड़ियों में कवि मातृभूमि की सेवाओं की स्वीकृति की जयमाल का समारोह मनाता है । यह हथकड़ियां मानों किसी कृष्ण-तीर्थ की ओर ले जाने वाली मधुरगली है अथवा जीवन की माधुर्यमयी घड़ियां । मर मिटने का कैसा अद्भुत उल्लास है ।

" आओ-आओ हथकड़ियाँ मेरी मणियों की लड़ियां,
मातृभूमि की सेवाओं की स्वीकृति की जयमाल भली
कृष्ण तीर्थ से चलने वाली पावन मंजुल मधुर गली
जीवन की मधुमय घड़ियां आओ- आओ हथकड़ियां ।"[3]

1- माखन लाल चतुर्वेदी, युगचरण सं० 1956, पृ०सं० 31
2- सोहन लाल द्विवेदी, भैरवी सं० 1951 ,पृ०सं० 85
3- सोहन लाल द्विवेदी, भैरवी सं० 1951, पृ०सं० 87

हथकड़ियां जहाँ मृत्यु से भयभीत लोगों के लिये आबद होती हैं, वहीं कवि के लिये, विशेषतः राष्ट्र भक्त कवि के हाथों में विजय कंकण सी प्रतीत होती है। ये हथकड़ियां जन्मभूमि के लिये शलभ जैसा मरना सिखाती हैं तथा कवि को स्वतंत्रता की चिनगारियों को जलाने वाली फुल-झड़ियों जैसी अनुभूति देती हैं -

" कर में बधों विजय कंकण सी उर में आत्म शक्ति लाओ,
जन्म भूमि के लिये शलभ सा मर जाना हाँ सिखलाओ।
स्वतंत्रता की फुलझड़ियाँ, आवो- आवो हथकड़ियाँ।" [1]

राष्ट्र की अर्चना में कवि की राष्ट्र भारती ने जैसी मांगलिक समर्चना की है, उससे मानवीय उत्सर्ग की वृत्तियों को चिरंतन प्रेरणा प्राप्त होती रहेगी।

इतिहास एवं संस्कृति मूलक राष्ट्रीय कवितायें :-

राष्ट्र-प्रेम की परिधि में इतिहास और संस्कृति दोनों का महत्व अपरिहार्य होता है। द्विवेदी जी की राष्ट्रीय रचनाओं में भी इतिहास और संस्कृति को स्वर देने का प्रयत्न किया गया है। ऐतिहासिक प्रसंगों, व्यक्तियों एवं काल खंड को लक्ष्य में रखकर मात्र कवितायें ही नहीं लिखीगयीं, पूरे के पूरे खण्ड काव्य भी लिखे गये हैं। " कुणाल " ऐतिहासिक राष्ट्रीय धारा का प्रतिनिधि काव्य है। वासवदत्ता में संकलित " सरदार चूडावत " एवं गौतम बुद्ध से सम्बन्धित कवितायें भी इसी वर्ग में आती हैं। उनके विविध काव्य ग्रन्थों में शिवाजी, महाराणा प्रताप, अशोकआदि ऐतिहासिक पात्रों

1- सोहन लाल द्विवेदी, भैरवी सं० 1951, पृ०सं० 87

पर कवितायें उपलब्ध होती है । कवि का लक्ष्य इतिहास की पुनरावृत्ति करना नहीं है, इतिहास के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना को जागृत करना है । उदाहरण के लिये " पेशवा शिवाजी " शीर्षक कविता में अभिव्यक्त अखंड भारत का भावचित्र देखें -

" मेरी जननी के जन-जन में, फिर एक बार ।
जागो मेरे तेजस ओजस, फिर दुर्निवार ।
तेरे अखण्ड,भारत का फिर, हो स्वप्न पूर्ण ।
दम्भी,कायर क्लीवों का हो, अभिमान चूर्ण ।"[1]

राष्ट्रीय रचनाओं की अभिव्यक्ति का एक और प्रकार द्विवेदी जी की सांस्कृतिक विधा के माध्यम से राष्ट्रीय भावों की व्यंजना है । संस्कृति को आधार मानकर जिस राष्ट्रीय गौरव की अनुभूति कवि कराना चाहता है, औदात्य की सृष्टि कराना चाहता है, वासना पर आचरण की स्थापना के लिये संकल्प जयी है, उनमें वासवदत्ता युगान्तकारी काव्यकृति है । इस काव्य की मूल उर्जा बौद्ध संस्कृति और गांधी संस्कृति की संयुक्त पल श्रुति प्रतीत होती है । कवि हिंसा के विपरीत अहिंसा मूलक भावों को कथ्य में सम्प्रेषित करता है । उसे पाश्चात्य संस्कृति का व्यामोह नहीं है, वह अपनी भारतीय संस्कृति की मौलिकता एवं पावन स्वरूप पर गर्वान्वित है -

" आज से बहुत दिन पहले की कहता हूँ बात -
जबकि, स्वर्णयुग का खिला था मधुर प्रभात
भारत के प्राची में, देश धन धान्य से पूर्ण था,
थे हम न परतंत्र किसी बन्धन में,
आये मुगल न भी न इस देश में,
अपनी थी संस्कृति अछूत ,पूत-पावन विचारों से
अपना था दिवस और, अपनी थी सभी बात ।"[2]

1- सोहन लाल द्विवेदी, मुक्तिगंधा ,सं01972, पृ0सं0 93
2- सोहन लाल द्विवेदी, वासवदत्ता, सं01944, पृ0सं0 1

बालकों को राष्ट्र का भावी कर्णधार मानकर लिखी गयी कवितायें:-

बालकों को राष्ट्र का भावी कर्णधार मानते हुये जिन कवियों ने बालकों में राष्ट्र-प्रेम के भाव जागृत करने वाली कवितायें लिखी हैं, उनमें पं० सोहन लाल द्विवेदी अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं । उनकी बाल रचनाओं के राष्ट्रीय गान प्रकृति के चित्रों से रंजित हैं -

" मुझे शक्ति दो गीत गाऊँ तुम्हारे ,
मुझे शक्ति दो काम आऊँ तुम्हारे ,
मुझे आग दो देश का हित करूँ मैं,
मुझे त्याग दो देश के हित मरूँ मैं ।"[1]

बालकों में आस्था और देश-प्रेम के अटूट भाव भरने के लिये ही द्विवेदी जी ने राष्ट्रीय बालगीतों की रचना की है । इन बालगीतों में विषय वस्तु चाहे प्रार्थना से सम्बन्धित हो और चाहे प्रकृति-सौन्दर्य से, इन गीतों में राष्ट्र-प्रेम की गंध समायी रहती है । पवन के झोंकों में हलचल, किरणों की लाली में देश-प्रेम का अनुराग, ओस की बूंदो में करुणा की आर्द्रता, धूप और छाया में शक्ति और शीतलता, बादलों में उत्सर्ग की कथा, संकेत करते हैं कि सोहन लाल द्विवेदी के कवि के सामने एक विराट लक्ष्य है, एक विराट स्वप्न है । कुछ बालगीत ऐसे भी हैं जो सीधे राष्ट्र-प्रेम को व्यक्त करते हैं । ऐसी कविताओं में "गिरिराज " नामक कविता को रखा जा सकता है :-

" इस पार हमारा भारत है, उस पार चीन-जापान देश,
मध्यस्थ खड़ा है दोनों में, एशिया खण्ड का यह नरेश ।"[2]

1- सोहन लाल द्विवेदी, वासवदत्ता सं० ~~कककक~~ 1957, पृष्ठसं० 4

2- सोहन लाल द्विवेदी, बाँसुरी सं० 1957, पृष्ठसं० 15

इस गीत को भारत वर्ष की बाल-पीढ़ियों ने अपना कंठहार बना लिया । बालकों में अपने देश के पर्वतों, नदियों और यहाँ के जीवन के प्रति अनुराग उत्पन्न हो जाय, राष्ट्र-प्रेम का बीजारोपण हो जाय, यही तो कवि का लक्ष्य है । द्विवेदी जी का कवि केवल युवा पीढ़ी को ही "भैरवी" नहीं सुनाना चाहता, बल्कि वह किशोर पीढ़ी को भी " बिगुल " का नाद सुनाना चाहता है । राष्ट्र-प्रेम का बिगुल किशोर पीढ़ीको झंकारित करेगा, तभी तो वेह भैरवी के लिये प्रस्तुत हो सकेंगे -

" तुम वीरों की सन्तान बनो, तुम शूरों की सन्तान बनो ।
तुम ढाल बनो, तलवार बनो, तुम माता की हुंकार बनो ।
तुम विजय हर्ष उल्लास बनो, तुम भारत के इतिहास बनो ।"[1]

द्विवेदी जी ने अपने बालगीतों के द्वारा बालकों में आत्म-विश्वास साहस, और धैर्य आदि भावनाओं को जागृत करने का प्रयत्न किया है । जन्म-भूमि माँ भारती की आराधना करतेहुये हिमगिरि की चोटी पर राष्ट्रीय ध्वज फहराने का साहस एवं दृढ़ संकल्प देकर द्विवेदी जी बालकों के अन्तस्तल में राष्ट्रीयता का संचार करना चाहते हे -

" हम नन्हें- नन्हें बच्चे है, नादान उमर के कच्चे हैं ।
पर अपनी धुन के सच्चे हैं ।
जननी की जय-जय गायेंगे, भारत की ध्वजा उड़ायेंगे ।
अपना पथ कभी न छोड़ेंगे, हम हिमगिरि पर चढ़ जायेंगे ।
भारत की ध्वजा उड़ायेंगे ।"[2]

बालकों के विचारों में ही अपनी बात कहने की शैली में द्विवेदी जी ने अच्छे राष्ट्रीय गीतों की रचना की है, उमंग उत्साह एवं बलिदानी भावना

1- सोहन लाल द्विवेदी, बिगुल सं0 1976, पृ0सं0 50
2- सोहन लाल द्विवेदी, बिगुल सं0 1976, पृ0सं0 12

द्विवेदी जी की देश-भक्ति की कविता की सबसे महत्व पूर्ण देन है -

"जी में होती है उमंग मैं होता रण का सेनानी,
मातृभूमि पर कभी घुमड़ते जब बैरी चढ़ मनमानी ।
सभी हिचकते होते जब करने को शीश दान अपना ।
मैं कर अपना शीश दान पूरा करता माँ का सपना ।"[1]

6-स- द्विवेदी जी के काव्य में मानवीय भावनाओं कूट-कूट कर भरी पड़ी हैं । वे अपने देश वासियों को इन भावों का पाठ पढ़ाकर स्वदेश का गौरव ऊंचा करना चाहते हैं । कृतज्ञता मानवीय संवेदनाओं का प्रमुखअंग है । उनका यह उदाहरण देखिये -

" नौकरी दिला दी सब मैंने,
वह पाता रुपये तीस माह
× × × ×
करता है मेरी वाह वाह ।"[2]

कवि छल- कपट रहित समाज की स्थापना अपने देहात नामक शीर्षक में करता है क्योंकि देश की अधिकांश जनता देहात में ही रहती है -

" यहाँ के भोले भाले लोग,
छल कपट का है यहाँ न रोग,
× × × ×
वही अपना प्यारा देहात ।"[3]

अन्नदाता किसान की मानवीय भावना जो विश्व को अन्न पैदा कर भरण-पोषण कर रहा है, कवि ने सामने उपस्थित कर दी है -

---

1- सोहन लाल द्विवेदी, बाल भारती सं0 1953, पृ0सं0 21 एवं 22
2- यह मेरा हिन्दुस्तान है, पृ0 41
3- बांसुरी, पृष्ठ-65

" यहीं बसते हैं दीन किसान,

उगाते हैं जो गेहूं धान

कि जिन पर निर्भर सकल जहान

× × × ×

यहीं अपना प्यारा देहात ।" 1

अतिथि सत्कार, दूसरे को खाना खिलाना " भारतीय संस्कृति" की परम निधि है कवि इस निधि को खोने नहीं दिया -बापू अधिक से अधिक लोगों को भोजन खिलाया करते थे- कवि की निम्न पंक्तियाँ देखिये-

" संग साथियों को लेकर,

खाते तुम हरदम खाना

खाना से ज्यादा अच्छा

लगता है तुम्हें खिलाना ।"2

कवि भोजन में मिर्च- मसाला न प्रयोग करने की सलाह देता है, जिससे मस्तिष्क में सात्त्विक भावना बनी रहे , कवि की निम्न पंक्तियाँ देखिये -

"खाना खाने चले भला,

देखूं क्या खाना खाते?

मिर्च मसाला और नदारद

तुम भी अजब खिलाते ।"3

भिखमंगों, दीन-दुखियों को श्रम करके अपनी स्थिति सुधारने की सलाह देता है । कवि श्रम एवं सत्य, का अनुयाई है -

" कुछ काम करो कर सकते तुम ,

होगी दरिद्रता सभी दूर

× × × ×

1- बांसुरी, पृष्ठ-65

2- बच्चों के बापू, पृ०सं० 14

3- वही, पृ०सं० 13

" तुम भी बन सकते ,बनो शूर ।"[1]

कवि इतिहास की ओर संकेत करके देशवासियों को बादल एवं मलखान की तरह बलवान बनने की सलाह देता है ।

" वीर बादल का बड़ा बखान
बहादुर था कितना मलखान
फड़क उठता है अपना गात,
यहीं अपना प्यारा देहात ।"[2]

कवि देशवासियों में सदैव अच्छे काम करने की सलाह देता है जिससे चित्त प्रसन्न रहे क्योंकि स्वस्थ मस्तिष्क में ही स्वास्थ्य ठीक रहता है, जिससे देश की उन्नति सम्भव है । स्वयं प्रसन्न चित्त रहने के साथ-साथ जो भी आपके पास आवे उसे भी हंसाना चाहिये, पटेलददादा जो कभी-भी नहीं हंसते थे वे बापू के पास आकर अपना हंसना नहीं रोक पाते थे निम्न पंक्तियाँ देखिये -

" कभी नहीं हंसते वे भी जब
पास तुम्हारे आते,
तब दादा पटेल भी अपना
हंसना रोक न पाते ।"[3]

मानवीय संवेदना बड़ों को प्रणाम करने की ओर अग्रसर करती है कवि इस बात की पुष्टि निम्न पंक्तियों से की है -

" किया इन्होंने भारत माँ का
सबसे बढ़िया काम,

1- बच्चों के बापू, पृ0सं0 13
2- बाँसुरी, पृ0सं0 65
3- बच्चों के बापू, पृ0सं08

" प्यारे बच्चों हाथ जोड़कर,
इनको करो प्रणाम ।"[1]

अपने बात की पुष्टि समझा बुझा कर करनी चाहिये, कभी झल्लाना नहीं चाहिये, झल्लाना बुरी आदत है । कवि बापू के माध्यम से इस बात की पुष्टि करता है -

" बापू तुम बातें करते थे तो
कभी नहीं झल्लाते ।
गुस्सा होते कभी न ऐसे
धीरे से बतलाते । "[2]

छोटों को डाट न दिखाने की सलाह कवि ने दी है -

" तेज जवाहर भैया सबसे
हैं तेजी दिखलाते ,
किन्तु बात यह ठीक नहीं,
छोटों को डाँट बताते ।"[3]

कार्य समाप्त होने पर मनोरंजन का भी स्थान कवि ने स्वीकार किया है -

" बापू काम कर चुके ,आओ
चलकर पतंग उड़ायें ।
मैं ले लूंगा रील
चलो करकैया कहीं लड़ायें ।"[4]

कवि संसार में व्याप्त चर-अचर पर परम पिता परमात्मा की सत्ता समझता है , बिना उनके इशारे कोई कार्य नहीं होता जैसा कि -

---

1- बच्चों के बापू, पृ०सं० 22

2- बच्चों के बापू, पृ०सं० 24

3- वहीं, पृ०सं० 24
4- वहीं, पृ०सं० 24

"सुरभित फूल मैं, वह सुरभि है तुम्हारी
पवन मैं प्रगति, वह प्रगति है तुम्हारी
अखिल विश्व मैं व्याप्त है दिव्य सत्ता
तुम्हारे बिना डोल सकता न पत्ता ।" [1]

कर्म के अनुरूप फल पानेकी भावना को सामने उपस्थित कर दिया है -

" जैसा जिसने काम बनाया
वैसी उसने पाई छाया
दिखलाओ तुम सब पर छाया
बने तुम्हारी शीतल छाया ।" [2]

द्विवेदी जी देश वासियों को उस भूल की पुनरावृत्ति करने की सलाह नहीं देते हैं । जो शूल बनकर हृदय में चुभती रहे वे भूलों से उठकर फूल के समान हँसने एवं विकसित होने की सलाह देते हैं -

" फिर न करो वह भूल,शूल बनकर जो मन में चुभ जाती है ।
उठो खिलो बन फूल कि जिनकी पंखुड़ियाँ मुसकाती हैं ।" [3]

जीवन में लगातार विकास की ओर अग्रसर होने की सलाह कवि देता है -

" लो नवीन उत्साह, नया संकल्प,नई-नई अनमोल कामना,
पूर्ण करोगे उस अपूर्ण को और करोगे सफल साधना ।" [4]

द्विवेदी जी के काव्य में मानवीय संवेदनाओं का सचित्र वर्णन हुआ है कवि की यह भावना देश में स्वाधीनता की भावना तथा राष्ट्र प्रेम की भावना जन-जन में संचरित करती है -

---

1- बाँसुरी, पृ०सं० -3

2- बाँसुरी, पृ०सं०-34

3- यह मेरा हिन्दुस्तान है, पृ०सं०-44

4- यह मेरा हिन्दुस्तान है, पृ०सं०-44

भाषा

भावों की अभिव्यक्ति भाषा के द्वारा ही सम्भव है कोई दूसरा साधन सक्षम नहीं है अस्तु भाषा भावों को दूसरों तक पहुँचाने का सक्षम एवं सर्वश्रेष्ठ माध्यम होने के कारण साहित्य में सर्वश्रेष्ठ स्थान रखती है । भाषा जितनी ही परिमार्जित होगी । साहित्य उतना ही उत्कृष्ट होगा। उत्कृष्ट साहित्य रचने में भावों के साथ-साथ चलने वाली भाषा ही सहायक होती है । "भाषा की व्युत्पत्ति संस्कृत के भाष्य शब्द से हुई है भाष्य का अर्थ होता है - जो बोला जाय । कालान्तर में भाष्य का प्रयोग टीका टिप्पणी के अर्थ में होने लगा ।"[1] भाषा को इसी अर्थ में प्रयुक्त करते हैं ।

"वह साधना जिसके माध्यम से मानव विचारों को व्यक्त करता है विचार विनिमय की ध्वनियों को समष्टि रूप से भाषा कहा गया है ।"[2] डा० भोला नाथ तिवारी के अनुसार "भाषा निश्चित प्रयत्न के फलस्वरूप मनुष्य केमुख से निसृत वह सार्थक ध्वनि समष्टि है । जिसका विश्लेषण और अध्ययन हो सके ।"[3] "भाषा भावों की संप्रेषणीयता एवं अभिप्रेत अर्थ की शक्ति है बाबू गुलाब राय उसे अखण्ड चेतना मानते हैं ।"[4] भाषा का निर्माण विविध अवयवों से होता है, अवयवों का विश्लेषण संश्लिष्ट चेतना के दर्शन में बाधक होता है । जिस प्रकार उत्कृष्ट भावों के द्वारा उत्कृष्ट

1- सन्त कवि चन्ददास काव्यात्मक मूल्यांकन- प्रकरण ।षष्ठ। ।।।

2- सामान्य भाषा विज्ञान, डा० बाबूराम सक्सेना, पृष्ठ-5

3- भाषा विज्ञान, डा० भोला नाथ तिवारी, पृष्ठ-2

4- सिद्धान्त और अध्ययन , बाबू गुलाबराय, पृष्ठ-23।

साहित्य का सृजन होता है । उसी प्रकार उत्कृष्ट भाषा भी आवश्यक है । परिमार्जित भाषा ही शुद्ध भावों का रसास्वादन कराती है । अस्पष्ट तथा शब्दाडम्बर की कृत्रिमता से बोझिल भाषा के द्वारा साहित्यकार की संवेदना सर्वथा निष्फल हो जाती है । उत्कृष्ट साहित्यकार बनने के लिये भाषा शक्ति के मर्म को जानना जरूरी हो जाता है । मर्म समझ लेने के बाद वह अपने साहित्य का सौष्ठव बढ़ाने में उसका उपयोग करता है । पाठकों के अनुरूप भाषा के व्दारा ही साहित्यकार की तीव्रतर अनुभूतियां पाठक के हृदय को छू पाती है । अस्तु साहित्य में भाषा का विशिष्ट स्थान निर्विवाद है ।

उन्नीसवीं शताब्दी भाषा की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है, खड़ी बोली का क्रमिक इतिहास इसी शताब्दी में सुलभ है । इसी शताब्दी में खड़ी बोली ने साहित्य में सर्वप्रथम गद्य और पद्य के क्षेत्र में पदार्पण किया है। कुछ ऐतिहासिक कारणों से खड़ी बोली का इस काल में बड़ी द्रुतगति से अभूत पूर्व विकास हुआ । प्रारंभिक काल में ही विविध विषयों पर अनेक पुस्तकों का प्रणयन हुआ जिससे खड़ी बोली की अद्भुत शक्ति और उज्जवल भविष्य का आभास मिलने लगा था ।

भारतेन्दु जिस समय साहित्य क्षेत्र में उतरे उस समय गद्य के क्षेत्र खड़ी बोली का स्थान निर्विवाद स्थापित हो चुका था किन्तु सरकारी भाषा नीति के कारण उसका स्वरूप विवादास्पद बना हुआ था । ऐसे संक्रान्ति काल में भारतेन्दु जी ने बड़ी व्यावहारिकता का परिचय दिया ।

अनिवार्य (वासवदत्ता पृष्ठ 6) यह शब्द व्याकरण की दृष्टि से सही है, इस विषय पर आचार्य प्रवर श्री दीन दयाल दीक्षित "

अनच्छिय अधृ से परे य रो दिर भावति । नत्वधि ।"[1]

काव्य-शिल्प

शिल्प कला का प्रमुख अंग है । यह काव्य की अन्तश्चेतना की अभि-व्यंजना का अनिवार्य धर्म होने के साथ-साथ कला का बहिरंग स्वरूप भी है। भाषा के ही द्वारा भावों की अभिव्यक्ति सम्भव है अस्तु भावों की अभि-व्यक्ति को प्राणवत्ता बनाने में एक कलात्मक औजार की तरह प्रयोग होती है । आलोच्य कवि ने शब्द प्रयोग को अर्थ के उत्कर्ष का साधन बनाया है । " शब्दका अर्थ से घनिष्ठ सम्बन्ध है, धूप्रऔर प्रकाश की भाँति ।"[2]

द्विवेदी जी का काव्य भाषा की दृष्टि से एक संस्कार युक्त काव्य के गौरव को वहन करता है । आलोच्य कवि भाषा की अभिव्यक्ति क्षमता और प्रभावक निर्णय शक्ति की उपेक्षा नहीं की है । यही कारण " भैरवी" की भाषा ओज और प्रसाद गुणों से अलंकारित होकर जन-जागरण की भाषा बन जाती है । वही "वासन्ती " और "चित्रा" के प्रेमगीतों की भाषा अभिव्यजंना का एक नया अवगुण लेकर चलती है । हिन्दुस्तानी भाषा "बापू " और " पूजा गीत " में मिलती है । वासवदत्ता की भाषा की बल्लरी सांस्कृतिक शिखरों पर चढ़ जाती है ।द्विवेदी जी के काव्य की भाषा पर मुख्य रूप से

(1) काव्य में प्रमुख भाषा रूप

(2) शब्द समूह

(3) काव्य शास्त्रीय विवेचना

1- चन्ददास साहित्य शोध संस्थान में आचार्य प्रवर श्री दीन दयाल दीक्षित से साक्षात्कारकरते हुए दिनांक 26-10-86

2- आचार्य भामह, काव्यालकार,पृ0सं0 6/7

॥1॥ काव्य के प्रयुक्त भाषा रूप :-

द्विवेदी जी ने मुख्य रूप से परिष्कृत खड़ी बोली के साथ-साथ संस्कृत के तत्सम शब्दों को प्रधानता प्रदान की है । उर्दू,फारसी की शब्दावली इनकी भाषा को हिन्दुस्तानी के निकट ला रखता है । कुछ अप्रकाशित रचनायें ब्रजभाषा शब्दावली में है । इनकी भाषा में रूपों का प्रयोग इस प्रकार पाया जाता है :-

॥अ॥ व्यापक काव्य भाषा रूप

॥ब॥ हिन्दुस्तानी भाषा का रूप

॥स॥ उर्दू,फारसी शब्द प्रधान भाषा का रूप

॥द॥ ब्रज भाषा मिश्रित काव्य भाषा रूप व्यापक काव्य भाषा

रूप

व्यापक काव्य भाषा रूप :-

यह रूप द्विवेदी जी के काव्य में खड़ी बोली एवं संस्कृत के तत्सम शब्दों से युक्त प्रयोग हुआ है -

यथा - " सुखा से सरोजनी
स्निग्धा पंत्राक में
नीरव निशीथ में
नयनबंद ।
मौन स्पंद ।"

प्रस्तुत कविता में स्निग्धा, पत्रांक नीरव निशीथ ,और स्पंद ये शब्द संस्कृत निष्ठ संस्कृत तत्सम शब्दों में के रूप में को व्यक्त करता है -

एक उदाहरण और देखिये -

1- सोहन लाल द्विवेदी, वासवदत्ता सं0 1956, पृ0सं0 11

"कुवलय कानन की पंकज भी खिले न अलग लिये गंध,
कमल नाल, उत्तिष्ठ एक पर पक्ष न निहारे, पवक अमंद ।"[1]

हिन्दुस्तानी भाषा का रूप :-

द्विवेदी जी ने हिन्दुस्तानी भाषा के रूप में देश के हिन्दू एवं मुसलमान में जो धर्म निरपेक्षता के वातावरण में पल रहे हैं उनके भावों को व्यक्त किया है ।

उदाहरण के रूप में निम्नकविता देखिये -

" दुनिया में जीने का सबसे सुन्दर मधुर तकाजा,
ऐ शहीद उठने दे अपना, फूलों भरा जनाजा ।"[2]

तकाजा, शहीद और जनाजा ये ऐसे शब्द हैं जो उर्दू, फारसी के होते हुये भी अपनी प्रकृति उत्पन्न कर भाषा को प्रभावी बना दिया है ।

उर्दू, फारसी शब्द प्रधान भाषा का रूप :-

द्विवेदी जी ने कभी-कभी वातावरण को रेखांकित करनेके लिये यत्र तत्र उर्दू और फारसी शब्दों का प्रयोग किया है, उदाहरण के लिये -

" छायी क्यों अजब उदासी है ?
जिन्दगी बन गई दासी है,
ताजगी नहीं गर ख्यालों में,
जिन्दगी तुम्हारी बासी है ।"[3]

ब्रजभाषा मिश्रित काव्य-भाषा :-

ब्रज भाषा की शब्दावली का प्रयोग कवि ने कोमल भावों को व्यक्त

1- सोहन लाल द्विवेदी, वासन्ती सं0 1951, पृ0सं0 107
2- सोहन लाल द्विवेदी, भैरवी सं0 1951, पृ0सं0 85
3- सोहन लाल द्विवेदी, मुक्तिगंधा सं0 1972, पृ0सं0 22

करने में किया है, उदाहरणार्थ -

" मत गूंथो मेरा हीरक मन,
अपनी कोमल बरजोरी से ।
नयनों की रेशम डोरी से ।"[1]

प्रस्तुत उद्धरण में " बरजोरी नयनों की डोरी आदि ब्रजभाषा की शब्दावली के शब्द हैं । आलोच्य कवि प्रणय गीतों के अतिरिक्त "नयन " से सम्बन्धित दोहों में इस भाषा का प्रयोग किया है ,उदाहरणार्थ -

" निद्रित मुद्रित नयन हैं, ऐसे सुषमा ऐन ।
सर में सोये कुमुदनी, जैसे आधी रैन ।"[2]

"नयनिका" के मंगलाचरण में सम्पूर्ण पद ब्रज भाषा के ही हैं :-

" घूमि घूमि धायो,भूमि-भूमि आयो धूमि धूमि ।
पायो नहि कहुं शान्ति ,सुख को बसेरो सो ।।
कुंज-कुंज गुन्ज्यो, अनु रज्यो तरु पुंज- पुंज ।
लोनी लतिकसी लखि भायो चित्त चेरो सो । "[3]

ब्रजभाषा की रचनायें श्रृंगारिक पृष्ठभूमि में लिखी होने के कारण राष्ट्रवादी परिवेश से तालमेल न खाने से कवि ने अपनी डायरी के पन्नों में ही कैद कर रक्खा । गांधी-अभिनन्दन के अवसर पर लिखी गई रचना में शब्दों का चयन सरसता उच्च स्तरीय ब्रजभाषा की रचनाओं की श्रेणी में आती है,उदाहरणार्थ -

" उत्सव ,उत्साह के प्रवाह में अथाह सुख,
जानि मानि बढ़ी भीर कारज रिते- रिते ।
आए ग्वाल - बाल ज्यों ही आईं गोपिकायें हूं ,
आये सबै चलि, वे जन सुन्यो जिते - जिते ।"[4]

1- सोहन लाल द्विवेदी, वासन्ती सं० 1951,पृ०सं० 33
2- सोहन लाल द्विवेदी, नयनिका से अप्रकाशित
3- वही
4- द्विवेदी जी की डायरी सं० 1944

शब्द-समूह :-

द्विवेदी जी के काव्य में शब्द-समूहों का वर्गीकरण दो दृष्टियों से किया जा सकता है -

(1) व्युत्पत्ति की दृष्टि से शब्द समूह
(2) प्रयोग की दृष्टि से शब्द समूह

व्युत्पत्ति की दृष्टि से :-

व्युत्पत्ति की दृष्टि से शब्द समूहों को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया जा सकता है -

(1) संस्कृत की तत्सम शब्दावली
(2) देशज शब्दावली
(3) उर्दू-फारसी की शब्दावली
(4) अंग्रेजी शब्दावली
(5) नये- नये गढ़े शब्द

संस्कृत की तत्सम शब्दावली :-

कोमल गीतों एवं सांस्कृतिक रचनाओं में संस्कृत की तत्सम शब्दावली का बाहुल्य देखने को मिलता है। बाल साहित्य एवं राष्ट्रीय धारा के साहित्य में कुछ संस्कृत-तत्सम शब्दावली का प्रयोग देखने को मिलता है। ये शब्द बोध गम्य है। अस्तु आलोच्य कवि के काव्य में प्रयुक्त हुये कुछ विशिष्ट शब्द निम्नवत् है -

संस्कृति, प्रतिस्पर्धा, कान्तिमान, सुषमा, दिव्यांगना, यौवन, चक्रवर्ती, क्लान्तचित्त, अध्वंस्वास, पुष्प-पाणि, स्फूर्ति, अक्षुण्ण, सौख्य, पुरुषार्थ, स्निग्ध, विकीर्ण, वरेण्य, संदिग्ध, सुषम, लावण्य, बल्लरी, नयनाभिराम, अवतरण, उद्ग्रीव, पुष्पशील, तपोनिधि, अनिन्द्य, सीमन्त, प्रवन्चना,

उच्छवसित, उत्तरीय, वक्रकोण, शिरोधार्य, उपत्यका, धान्वा, वनस्थली, पाणिग्रहण, सैन्य, द्रवित, प्रसूत, निवारित, कूल, मूर्तिमान, प्रकोष्ठ, स्फुलिंग, प्रच्छन्न, प्रणिपात, औलाद, नीड, आवर्त, अचित, मुकुल, लाक्षा, प्रस्तर, पाण्डुर, स्रोत, निस्पंद, भ्रूभंग, उपल, तिमिर, नंदित, प्रकाय, यष्टि, संस्कृति, आसन्न, अम्लान, विप्लव, अनुकम्पा, मन्द्र, रज्जु, पंगु, कल्प, निर्वासित, स्मित, स्तब्ध, दंतमुद्रा, क्लान्त, जरा, श्रृंखला, कुम्भ, समीक्षा, पाश, विनत, स्खलित, तिरोहित, वंक, विखंड, उपोद्घात, निष्ठा, रिक्त, विगलित, परिहास, निलय, मृदु, वक्र, उत्सर्ग, प्रक्षालन, कुसुमायुध, रोध, निखिल, ध्वान्त, हविष्य, संघात, व्याघात, अजिर, प्रतिशोध, निदान, मर्माहत, अभिसार, विक्षिप्त, तुरधानु, अभि-प्रेत, मृणाल, विशुभ्र, संकल्प, तरणी, निम्नगा, नीरव, प्लावित, कालिंदी, शत-दल, समुदित, संबल, अभिनव, विजन, वक्षस्थल, अरुणोदय, व्याल, माधवी, सृष्टि, आवरण, गवाक्ष, स्वप्निल, संभ्रान्त, उदान्त, वातायन, अनुरंजन, संकुल, मराल, श्रृंगीका, तूर्य, विदूर्य, चूड़ान्त, आपाद, तारुण्य, आरण्य, संभात, उल्का निभृत, उद्भ्रान्त, तूली, उत्तुंग, स्नेहांचल, कुंकुम, रजनीगंधा, वर्तिका, महा-श्वेता, पुण्डरीक, लुंठित, वल्कल, मुग्धमना, नीलोदधि, हिमाद्रि, परमोज्ज्वल, सहस्त्रधार, अन्तस्तल, विमर्श, पलायन, आकांक्षा, अवगुण, जलप्लावित, नीप, शुभ्र आदि ।[1]

1- "संस्कृति से प्रकोष्ठ " तक की शब्दावली "वासवदत्ता" में "स्फुलिंग से उत्तुंग " तक की शब्दावली "कुणाल" में से स्नेहांचल से पुण्डरीक" तक वासंती में " लुंठित से शुभ्र" तक की शब्दावली "पूजागीत" विधान, प्रभावी व चित्रों में प्रयुक्त हुई है ।"

देशज शब्दावली :-
=============

गडारी, बदरिया, हरमुनिया, चबेनी, आसरे, डलिया, उतान, मालिन, बैरिन, लकुटी, नेह, हेला, रतनारे, पखेरू, होले छुम-छुम, कुंवारी, अंखिया, रतियां, गुलगुल, हुशियार, बंजार, हिहाती, पंखवान, गिल्ली, कनिया, अनखानिया, दैया-दैया, ततैया, उडेल, बेखटके, मंतर, मटकी, लंगोटी, बुरई, पाल, खापरैल, निमोंच, टोलो, विरहा, चिंघाड़े, अंजन, दंतखुदनी, छानी, खप्पर, छप्पर, खुरपी, खटिया, बिछौना, अनारी, ठौर, कुठांव, चकिया, पीठी, खाऊ, मिसरी, रहिमा, रमुवा, पैरैया, मुग्गा, उडैया, पुनघुग्गी, लडैया, रटैया, गवैया, छुटिया, हुहारी, कुतली, हल्ला, जगैया, खिलैया आदि ग्रामीण अंचलों में बोले जाने वाले शब्दों का प्रयोग द्विवेदी जी के काव्य में हुआ है । यत्र-तत्र गेयता के लिये भी ग्रामीण आंचलिक शब्दों का प्रयोग कवि ने किया है ।

उर्दू-फारसी की शब्दावली :-
==================

कवि ने अपने काव्य में उर्दू- फारसी के शब्दों को भाषा को प्रभावकता प्रदान करने के लिये किया है । काव्य में प्रयुक्त उर्दू-फारसी के कुछ शब्द निम्नवत हैं :-

रफ्तार, आजादी, कीमत, सौदा, मसौदा, ताजा, इरादा, बेचैन, आवाज, लकीर, दुनिया, पुरसाहाल, तमन्ना, अरमान, कलम, मेहमान, मेजमान, ताकी, सुराही जलसा, महफिल, शमां, गुमान, जश्न, मायूस, जनाजा, शहीद, तकाजा, सीना, मस्जिद, रोजा, नमाज, वहदत, अजान, दीनो-ईमान, बेसब्री, कलमा-कुरान, बरकत, गुमान, रहमत, गफलत, कुव्वत, जरअत, हिम्मत, निशान, वेदर्दी, ताकत, दौलत, मेहनत,

यवन, काफिर, मुसलमान, खबरदार, तमाम, सिर्फ, हुशियार, हुजूर, अजब, मौज, बाजार, जरदी, मदरसा, नजदीक, अगर, जरूरत, अनजान, मजा, जहांन, रिश्वत, आदि ।

अंग्रेजी के शब्द :-

===========

जंक्शन, वन, टू, थ्री, सायकिल, हैट, बूट, शूट, बैरिस्टर, टाई, कोट, स्टेशन, कलेक्टर, प्रोफेसर, गवर्नर, डाक्टर, सी0पी0।सेन्ट्रल प्राविन्सेस।, इन्टर, मास्टर, जज, हारमोनियम, आदि अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग आलोच्य कवि के काव्य में देखने को मिलता है ।

नये गढ़े गये शब्द :-

==============

कवि ने काव्य में नये गढ़े शब्दों का भी प्रयोग किया है - इन शब्दों के प्रयोग से कवि का लोकत्व एवं कोमलता का उद्देश्य ही परिलक्षित होता है ।

अभिभाता, फुलचुग्गी, समय-विहंग, सितरती-सी सिरती सी, राग रजनीयता, उर-अतल, मन-त्राण, पदपात, संलग्नीय, भैयावाले, अड़े-गड़े, होओ, सैर सपाटा, सुघड़ाई, प्राण-प्रवाह आदि ।

प्रयोग की दृष्टि से शब्द-समूह का वर्गीकरण

==================================

।1। कवि के प्रिय शब्द :-

==============

प्रत्येक कवि के कुछ चुने हुये शब्द होते हैं जिनके द्वारा उनकी पहचान की जा सकती है । कवि इन्हीं चुने हुये शब्दों का प्रयोग बार-बार करता है।

उदाहरण के लिये आलोच्य कवि की कविताओं में वन्दना, अर्चना, मरण, वंदिनी, क्रान्ति, पूजा, शत-शत, नव-नव, युग-युग, प्रलय, मातृभूमि, जननी, ध्वजा, अस्त्र-शस्त्र, माँ, चरण, शिर, कोटि-कोटि, प्रिय, अतुल, प्रणय, मरन्द, ललाम, प्रकाम, पिकी, अरुण, तरुण, उमंग, माणिक, शैलखण्ड, शीश, प्रतिपल, अविरल क्षण, प्रवाह, विनत, धाम, विराम, पथ, मतवाले, आदि शब्दों का प्रयोग काव्य में कवि ने कई बार किया है जिससे पाठक स्वयं कवि के ~~निये~~ प्रिय शब्दों ~~म~~ को सहजता से पहचान लेता है ।

शब्दों का तोड़-मरोड़ :-
================

कवि ने तुकान्त और मैत्रा के कारण कहीं कहीं शब्दों को तोड़ा-मरोड़ा है । भाषा व्याकरण के बंधन से शिथिल हो जाती है । कुछ ऐसे ही शब्द और कोष्ठक में उनके मूल-रूप जिन्हें द्विवेदी जी ने अपने काव्य में प्रयोग किया है निम्नलिखित है -

हुशियार (होशियार), भंटा (भाटा), सनमान, (सम्मान), पाँडे (पाण्डेय), यमुन (यमुना), कानपूर (कानपुर), बागीचे (बगीचे), धमसान (घमासान), तुरत (तुरन्त), गदहा (गधा), चिरैया (चिड़िया), ज्वाल (ज्वाला), औ (और), घोते (घोड़े), पर (पर), गुड़िया (गुड़ियाँ) , बचा (बच्चा), चचा(चाचा), तयार (तैयार), जुलुम (जुल्म)

वर्ण द्वित्व की प्रवृत्ति और छन्दानुरोध कारण "उठा" के स्थान पर " ~~उद~~ उट्ठा" का प्रयोग द्विवेदी जी के काव्यों में अनेक बार प्रयुक्त किया गया है ।

शब्द - शक्तियाँ

पं० सोहन लाल द्विवेदी के काव्य में । अभिधा, लक्षणा और व्यंजना। ये प्रमुख शब्द शक्तियों का प्रयोग हुआ है । इन शब्द शक्तियों के प्रयोग से भाषा-सौष्ठव के अतिरिक्त अभिव्यक्ति के उत्कर्ष में भी सहायक सिद्ध हुई है ।

। अ । अभिधा :-

शब्द के स्थूल अर्थ का बोध कराने वाली काव्य-शक्ति को अभिधा कहते हैं । अभिधा शक्ति किसी पद के सांकेतिक अथवा वाच्य अर्थ को बोध कराती हैं ।इसमें संकेतिक अर्थ ही प्रधान होता है । इस शक्ति से काव्य-सौन्दर्य में अभिवृद्धि तो नहीं होती किन्तु प्रसाद गुण सम्पन्न होने के कारण पद के सीधे अर्थ का बोध नहि कराती है । द्विवेदी जी का काव्य अभिधा शक्ति के कारण ही जन-जीवन का काव्य बन गया है । राष्ट्रीय धारा की रचनायें अधिकांशतया अभिधा के रूप में की गई है । पूजागीत की कुछ पंक्तियां देखिये -

" वंदिनी तव वंदना में कौन सा मैं गीत गाऊं ?
स्वर उठे मेरा गगन पर, बने गुंजित ध्वनित मन पर,
कोटि कंठों में तुम्हारी , वेदना कैसे बजाऊं ?"[1]

प्रस्तुत प्रं कविता में शब्दों का वही अर्थ है जो शब्दों के माध्यम से सांकेतिक है । ऐसे शब्दों का प्रयोग नहीं है जो मुख्यार्थ में बाधक बनकर लक्षणार्थ अथवा व्यंजक अर्थों की ओर संकेत करते हों ।

1- सोहन लाल द्विवेदी, भैरवी सं० 1951, पृ०सं०

आलोच्य कवि ने स्वदेश-प्रेम और राष्ट्रीय चेतना की कवितायें, अभिधा शक्ति को ही लेकर पाठकों के हृदय में सीधे भाव पैदा करने के उद्देश्य से रची है। "भैरवी" की अधिकांश कवितायें अभिधा पूरक हैं। उनकी "गांवों" में" शीर्षक कविताओं की कुछ पंक्तियाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं -

" सोने चाँदी का नाम लो, पीतल काँसे के कड़े-छड़े,
मिल जाय बहूरानी को तो, समझो उनके सौभाग्य बड़े।
राँगे की काली बिछियों में, पति के सुहाग के भावों में,
है अपना हिन्दुस्तान कहाँ ? वह बसा हमारे गांवों में।।"[1]

प्रस्तुत पंक्तियों में भारतीय कृषक जीवन और उसकी आर्थिक-विषमताओं से त्रस्त पीड़ा का रेखांकन तथा दाम्पत्य-प्रेम की स्थितियों को अभिधा के माध्यम से व्यक्त किया गया है। कवि ने दुर्बोध शैली के द्वारा कविता को आक्रान्त नहीं किया है अभिधा शक्ति के कारण ही यह पाठकों के हृदय तक सीधे पहुँच सकने में सफल है।

प्रभाती संकलन के आमुख में कवि की यह स्वीकारोक्ति -

" जानबूझ कर मैं कल्पना के पंखों पर चढ़कर हिम श्रृंगों पर नहीं उड़ा, क्योंकि उतनी दूर मेरा पाठक न जा सकता था, काव्य की लक्षणा एवं व्यंजना का मोह भी छोड़ना पड़ा। अभिधा से ही मैंने अपना काम चलाया। कविता न लिखकर मैंने खुब ? तुकबन्दी लिखना स्वीकृत की और यदि इससे वे रचनायें जनता के हृदय तक पहुँच सकी हैं, तो मैंने अपने प्रयत्न को असफल नहीं माना।[2]

1- सोहन लाल द्विवेदी, भैरवी सं० 1951, पृ०सं०
2- सोहन लाल द्विवेदी, प्रभाती सं० 1961, आमुख

लक्षणा :-
=====

जब काव्य में अभिधा के माध्यम से मुख्य अर्थ का बोध नहीं हो पाता तब लक्षणा शक्ति के माध्यम से अर्थ को ग्रहण किया जाता है । अभिधा से मुख्य अर्थ ही ग्रहण किया जा सकता है जब कि लक्षणा से उसका लक्षणार्थ ही ग्रहण किया जा सकता है । आलोच्य कवि के काव्य में लाक्षणिक बक्रताओं की कमी नहीं है । जहाँ कहीं मुहावरे युक्त भाषा का प्रयोग मिलता है वहीं लाक्षणिक अर्थ अभिव्यक्त होने लगता है ।

" हेरो इधर प्राण ।
फेरो न तुम मुख ।"[1]

प्रस्तुत अवतरण में " फेरो नतुम मुख " लाक्षणिक प्रयोग है । मुँह फेरना एक मुहावरा है जिसका आशय है उपेक्षा करना । कवि प्रेयसी से मुँह न फेरने अर्थात् उदासीन न रहने का प्रणय-अनुरोध करता है -

लक्षणा शक्ति के दो भेद होते हैं -

अ - रूढ़ा   ब- प्रयोजन वती

प्रयोजन वती लक्षणा के दो और भेद आचार्यों ने किये हैं गौड़ी और शुध्दा । गौड़ी लक्षणा में मुख्यार्थ और लक्ष्यार्थ में सादृश्य का सम्बन्ध होता है । ऐसी स्थिति में अप्रस्तुत विधान द्वारा किसी वस्तु या भाव का वर्णन किया जाता है और उपमान योजना सादृश्य पर आधारित होती है । आचार्य विश्वनाथ ने गौड़ी लक्षणा के दो भाग किये हैं -

।1। सारोपा   ।।2। साध्यवसाना ।

1-सोहन लाल द्विवेदी, वासन्ती सं0 1951, पृ0सं0 23

सारोपा लक्षणा शक्ति वहाँ होती है जहाँ मुख्यार्थ के बाधित होने पर उपमेय और उपमान दोनों के ही कथन द्वारा मुख्य अर्थ से भिन्न अर्थ ग्रहण किया जाय ।

साध्यवसाना लक्षणा में मुख्यार्थ के बाधित होने पर केवल उपमान के कथन द्वारा मुख्यार्थ से भिन्न अर्थ ग्रहण किया जाता है । द्विवेदी जी के काव्य में लक्षणा के प्रायः सभी भेदों का प्रयोग पाया जाता है ।उदाहरण के रूप में " नयनिका" की भृकुटि टेढ़ी होने से कवि के आनन्द से झूमते हुये मदमाते जीवन को एक सन्देह उत्पन्न हो गया । "

इस भाव को कवि ने अप्रस्तुत के माध्यम से लक्षणा शक्ति के द्वारा व्यक्त किया है -

" वंकिम आज भृकुटि की रेखा ।
वह पहले का प्यार नहीं है
बहती वह रस धार नहीं है,
लहराती शाली के ऊपर,
आज प्रलय घन घिरते देखा ।"[1]

प्रस्तुत पंक्तियों में कवि शालिवृक्ष को प्रसन्नता और आनन्द का अप्रस्तुत मानकर चलता है । इसी प्रकार प्रलय घन चिन्ताओं ,आकांक्षाओं और विनाश के प्रतीक बनकर उपयुक्त हुये हैं । मुख्यार्थ चावल के पेड़ अथवा प्रलय घन देते हैं । और भी -

" लिखा अपना इतिहास अमिट, उड़ते निशादिन के पृष्ठों में
ज्वाल लपट झुलसा दे नभ को, आग लगा दे पानी में ।"[2]

1- सोहन लाल द्विवेदी, वासन्ती सं0 1951,पृ0सं0 63

2- सोहन लाल द्विवेदी, भैरवी सं0 1951, पृ0सं0 82

सारोपा लक्षणा शक्ति वहाँ होती है जहाँ मुख्यार्थ के बाधित होने पर उपमेय और उपमान दोनों के ही कथन द्वारा मुख्य अर्थ से भिन्न अर्थ ग्रहण किया जाय।

साध्यवसाना लक्षणा में मुख्यार्थ के बाधित होने पर केवल उपमान के कथन द्वारा मुख्यार्थ से भिन्न अर्थ ग्रहण किया जाता है। द्विवेदी जी के काव्य में लक्षणा के प्रायः सभी भेदों का प्रयोग पाया जाता है। उदाहरण के रूप में " नयनिका" की भृकुटि टेढ़ी होने से कवि के आनन्द से झूमते हुये मदमाते जीवन को एक सन्देह उत्पन्न हो गया। "

इस भाव को कवि ने अप्रस्तुत के माध्यम से लक्षणा शक्ति के द्वारा व्यक्त किया है -

" बंकिम आज भृकुटि की रेखा।
वह पहले का प्यार नहीं है
बहती वह रस धार नहीं है,
लहराती शाली के ऊपर,
आज प्रलय धन घिरते देखा।"[1]

प्रस्तुत पंक्तियों में कवि शालिवृक्ष को प्रसन्नता और आनन्द का अप्रस्तुत मानकर चलता है। इसी प्रकार प्रलय धन चिन्ताओं, आकांक्षाओं और विनाश के प्रतीक बनकर उपयुक्त हुये हैं। मुख्यार्थ चावल के पेड़ अथवा प्रलय धन देते हैं। और भी -

" लिखा अपना इतिहास अमिट, उड़ते निशादिन के पृष्ठों में
ज्वाल लपट झुलसा दे नभ को, आग लगा दे पानी में।"[2]

1- सोहन लाल द्विवेदी, वासन्ती सं० 1951, पृ०सं० 63

2- सोहन लाल द्विवेदी, भैरवी सं० 1951, पृ०सं० 82

प्रस्तुत पंक्तियों में " पानी में आग लगा देने जैसी लाक्षणिक वक्रतायें, निष्क्रिय हृदयों में चेतना पैदा करने के लक्षणार्थ को अपने में लपेटे हुये है, जिसमें लक्षणा शक्ति का चमत्कार दृष्टव्य है ।

व्यंजना :-
======

जब शब्द का अभिधापरक और लक्षण परक अर्थ नहीं ग्रहण किया जा सकता तो इन दोनों शक्ति से परे व्यंग्य द्वारा अर्थ ग्रहण करने वाली काव्य शक्ति को व्यंजना कहते हैं । व्यंग्य काव्य की एक विशिष्ट शक्ति होती है ।

द्विवेदी जी का काव्य व्यंजनाओं से रिक्त नहीं है । जो कवि व्यंजना से अछूता रहता है वह रससिद्ध कवि नहीं होता । काव्य में जितनी उत्कृष्ट व्यंजनायें होगी काव्य उतना ही उत्कृष्ट कोटि का होगा । आलोच्य कवि ने अपने प्रेम-गीतों में व्यंजनाओं का कौशल व्यक्त किया है । व्यंजना शक्ति की दृष्टि से ही "कुणाल" और "वासवदत्ता" सफल काव्य है । जीवन की कोमलतम और मधुरतम भावनाओं को व्यंजना के द्वारा ही द्विवेदी जी ने उत्कृष्ट रूप देकर पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है । उनके काव्य में मिलन की आतुरता , प्रिय की प्रतीक्षा, प्रिय की स्मृति, प्रेयसी का रूप आदि व्यंग्य के विषय बने हैं । एक उदाहरण दृष्टव्य है -

" आ गये वे कमल लोचन, पग गये मग में
ठहर ये,
कब मिलन के क्षण बनेंगे चिर प्रतीक्षा के
प्रहर ये ।" [1]

1- सोहन लाल द्विवेदी, चित्र सं० पंचम,पृ०सं० 21

इन पंक्तियों में प्रिय के लिये "कमल लोचन" कहना सौन्दर्य और निर्लिप्त का व्यंग्य है । कमल लोचन से कवि ने सुन्दरता की व्यंजना की है और द्वितीय पंक्ति में मग में पग के ठहर जाने के माध्यम से कवि ने यह व्यंजना की है कि प्रेयसी का रूप इतना लुभावना था कि कवि का प्रणयी पथिक रास्ते में ही रुक गया और उस दृश्य को ही देखता रहगया इस प्रकार इन पंक्तियों के द्वारा रूप पर मुग्ध होने की व्यंजना की गई है ।

व्यंजना के दो प्रमुख भेद आचार्यों ने बताये हैं -

‡1‡ शाब्दी व्यंजना, ‡11‡ आर्थी व्यंजना

शाब्दी व्यंजना में शब्द की अभिधा या लक्षणा शक्ति का व्यापार व्यंग्यार्थ की प्रतीत कराता है । आर्थी व्यंजना में शब्द के अर्थ के आधार पर मुख्यार्थ तथा लक्षणार्थ से भिन्न व्यंगार्थ का अर्थ बोध रहता है । व्यंजना शक्ति में अर्थ ध्वनित होता है इसीलिये ध्वनिवादी आचार्यों ने काव्य में व्यंजना शक्ति को विशेष महत्त्व दिया है और ध्वनि काव्य को ही उत्कृष्ट माना है । जहाँ अर्थ अपने को अथवा शब्द अपने अर्थ को गुणीभूत करके उस प्रतीयमान अर्थ को अभिव्यक्त करते हैं, उस काव्य विशेष को विद्वान लोग ध्वनि काव्य कहते हैं । " ध्वनि मार्ग अत्यन्त रहस्यपूर्ण और आह्लाद जनक है। ध्वनि का अनुमान करने से कवियों की प्रतिभा शक्ति अनन्त को प्राप्त करती है ।"[1]

ध्वनि के दो मुख्य भेद होते हैं :-

‡1‡ असंलक्ष्य क्रम ध्वनि

‡2‡ संलक्ष्य क्रम ध्वनि

1- सोहन लाल द्विवेदी, ध्वन्यालोक चतुर्थ उद्योत प्रथमकारिका, पृ0 336

अलंलक्ष्य क्रम ध्वनि में, मुख्यार्थ से व्यंग्यार्थ तक पहुंचने के लिये क्रम क्या होगा, यह ज्ञान नहीं होता । जब कि संलक्ष्य क्रम ध्वनि रस ध्वनि न होकर वस्तु ध्वनि या अलंकार ध्वनि है । संलक्ष्य क्रम ध्वनि प्राय: अप्रस्तुत प्रशंसा या अन्योक्ति में जहाँ प्राय: एक वस्तु से दूसरी वस्तु ध्वनित होती है पाई जाती है। द्विवेदी जी के काव्य में ध्वनि के प्राय: सभी भेद पाये जाते हैं निम्न पंक्तियों में राष्ट्रीय -भावना व्यंग्यार्थ दृष्टव्य है :-

"प्राणों पर इतनी म मता,और स्वतंत्रता का सौदा,
बिना तेल के दीप जलाने, का है कठिन मसौदा ।" [1]

प्रस्तुत पंक्तियों को अलंलक्ष्य क्रम ध्वनि के अन्तर्गत रखा जा सकता है। अन्योक्ति द्वारा राष्ट्र पर समर्पित होने वाले तरुणों के मनोभावों का चित्रण करते हुये कवि ने संलक्ष्य क्रम ध्वनि का सफल निर्वाह किया है । फूल के माध्यम से अन्योक्ति द्वारा जीवन में प्रसन्नता का वर्णन करनेके लिये भावनाओं का निम्न लिखित चित्रण संलक्ष्य क्रम ध्वनि का एक द उदाहरण है-

"चाहे हवा बहे मतवाली, फूल हमेशा मुस्काता,
चाहे वा चले लू वाली, फूल हमेशा मुसकाता ।" [2]

काव्य- गुण
=========

" गुण विहीन काव्य रचना हृदय संवेद्य नहीं हो सकती ।" [3]

जिस प्रकार शरीरस्थ आत्मा के उत्कर्ष के लिये औदार्य,वीरता, सात्विकता, पराक्रम शीलता, की आवश्यकता होती है । उसी प्रकार रस,रूप,

---

1- सोहन लाल द्विवेदी, भैरवी सं0 1951, पृ0सं0 85
2- सोहन लाल द्विवेदी, बांसुरी सं0 1957, पृ0सं0 26
3- आचार्य भोज सरस्वती कण्ठाभरण, 1/ 159

स्थित काव्यात्मा के लिये गुणों की आवश्यकता पर प्राक्तन आचार्यों ने बल दिया है । अलंकारों के समान काव्य गुण भी शोभा विधायक कहे गये हैं। काव्य गुणों की संख्या के विषय में पर्याप्त मत वैभिन्न्य है । आचार्य विश्वनाथ न मध्यम मार्ग निकाल कर काव्य गुणों की संख्या तीन ही निर्धारित की है, माधुर्य,प्रसाद एवं ओज ।

माधुर्य :-

" साहित्य दर्पण" कार आचार्य विश्वनाथ का अभिमत है -

" चित्तद्रवी भावमयी ह्लादो माधुर्यमुच्यते "

माधुर्य को एक ऐसा आह्लाद कह सकते हैं जिसका स्वरूप सहृदय-हृदय की "द्रुति" अथवा "द्रवीभूतता" है ।"[1]

माधुर्य सम्भोग श्रृंगार की अपेक्षा विप्रलम्भ श्रृंगार में और विप्रलंम्भ श्रृंगार की भी अपेक्षा करुण रस में उत्तरोत्तर उत्कृष्ट लगा करता है । आचार्य विश्वनाथ ने यही प्रतिपादित किया है - "संभोगे करुणे विप्रलम्भे शान्ते धिकं क्रमात ।"

आलोच्य कवि के " वासन्ती" और ।"चित्रा " काव्य में माधुर्य गुण के अनेकानेक उदाहरण मिलते हैं । "वासन्ती" में मधुराका में रजनीगंधा की सुवासित गंध किस सहृदय को माधुर्य गुण के कारण अभिभूत नहीं करेगी -

" मधु बसंत की खिली यामिनी,चुपके-चुपके आ जाना,
सुरभि बने रजनीगंधा में आकर प्राण समा जाना ।"[3]

1- आचार्य विश्वनाथ " साहित्य दर्पण सं0 1976, पृ0सं0 643
2- वही
3- सोहन लाल द्विवेदी, बासन्ती सं0 1957, पृ0सं0 39

"वासवदत्ता" के अपरूप एवं मांसल सौन्दर्य निरूपण में कवि ने अलंकार के साथ-साथ अनुस्वार युक्त शब्दों का विन्यास किया है जिसके कारण माधुर्य गुण के साथ चाक्षुण बिम्ब उपस्थित हो उठा है -

" मधु ऋतु की संध्या में,
जब कि
खिल उठी थी फुल्ल मालती, लताएं चारु,
गंध अंध मधुप थे दौड़ रहे चारो ओर
सुषमा की प्रतिमा,
एक तरुणी दिवांगना-सी। "[1]

उर्वशी के सौन्दर्य निरूपण में माधुर्य गुण की पुष्टता द्रष्टव्य है-

" उसी समय
उर्वशी त्रिलोक सुन्दरी,
सुन्दरी ज्यों विभावरी
सजकर नव हीरहार
पुष्पहार
अंग-अंग अंग राग,
केसर मृगमद - पराग
मस्तक कुंकुम सुहाग।" [2]

"महाभिनिष्क्रमण" कविता में मधु ऋतु के निशीथ में अपरूप कामिनी किशोरी के परित्याग के पूर्व युवा विरक्त 'सिद्धार्थ' के मन में प्रिया के सौन्दर्य का जो बिम्ब नेत्रों में उपस्थित हुआ है उसे रससिद्ध कवि ने " ण "कार के सगुंम्फन से माधुर्य गुण पुष्ट बनाया है-

" कंठ मे हो कंठ, प्राण -प्राण में हो लीन,
बजे कहीं सुदूर प्रेममयी बीन,

1- सोहन लाल द्विवेदी, वासवदत्ता सं0 1956, पृ0सं0 2
2- वही पृ0 सं0-10

कंकण किंकिणि के क्वण,
मंदिर बनाते हों क्षण,

कोक नद अरुण चरण
करते हों प्रगाढ़ और भी अनुराग को ।"[1]

विप्रलम्भ श्रृंगार एवं करुण रसावलम्बित माधुर्य गुण के अनेक कम उदाहरण चित्रा संकलन में दिखाई पड़ते है । यौवन-निकुंज में बकुल, मुकुल, पटल, और शेफाली, के मौन आमंत्रण पर मधुगंध लोभी भ्रमरों के गुंजार में माधुर्य गुण पुष्ट हुआ है -

।"भ्रमर आ रहे झूम-झूम कर, गाते हैं यौवन कीतान,
वही सुगंध, गंध मधु-पागल, अलि-दल चंचल गाते गान।"[2]

द्विवेदी जी के काव्य में यौवन विगलित शरीर में वार्धक्य के वर्णन में माधुर्य गुण स्पष्ट है -

" मधु ऋतु था, आया अब पतझर, देखो पके केश
तन जर्जर,
मन जर्जर जीवन है जर्जर, यह भी प्यार तुम्हारा
ही है ।" [3]

सोहन लाल द्विवेदी की माधुर्य गुण युक्त रचनाओं में जहां एक ओर कोमल कांत शब्दावली चयनित हैं वहीं दूसरीओर लघु दीर्घ समासों के साथ पंचम वर्ण प्रधान शब्दों का संगुम्फन हुआ है । जिसके कारण पाठक रसाप्लावित होने के साथ ही साथ प्रयुक्त शब्द- सौष्ठव एवं बिम्ब- धार्मिक से

1- सोहन लाल द्विवेदी, वासवदत्ता सं0 1956, पृ0सं0 62
2- सोहन लाल द्विवेदी, चित्रा सं0 पंचम, पृ0सं0 17
3- वही पृष्ठ सं0 58

अप्रभावित नहीं रहता । उनके काव्य में प्रायः प्राकृतिक उपादानों के प्रयोग से माधुर्य गुण की सृष्टि की गई है । कवि का प्रकृति निरीक्षण बहुत ही सूक्ष्म एवं कल्पनापरक रहा है ।

ओज :-
====

परूष वर्ण, कर्ण कटुशब्दों के प्रयोग से ओज गुण की सृष्टि होती है । आचार्य विश्वनाथ के मतानुसार -

"ओजश्चित्तस्य विस्ताररूपं दीप्तत्वमुच्यते "

जिसे "ओज " विस्तार रूप कहते हैं वह सहृदय-हृदय की वह दीप्ति अथवा प्रज्वलित प्रायता है जिसका स्वरूप चित्त की विस्तृति अथवा उन्नतता है ।

बीर बीभत्स रौद्रेषु क्रमेणाधिकमस्य तु ।

ओज, वीर, वीभत्स, और रौद्र रस में उत्तरोत्तर प्रकृष्ट रूप से विराजमान रहा करता है । इसमें दीर्घ समासवती रचनायें और औद्धत्य पूर्ण पदयोजना होती है ।"[1]

द्विवेदी जी का मुख्य स्वर राष्ट्रीय जागरण से ओत प्रोत है । नव-युवकों के रक्त की भाषा को उन्होंने भैरवी में मुखरित किया है । देश-प्रेम और युगीन परिस्थितियों की आवश्यकता के अनुरूप युवकों को स्वातंत्र्य बलि-वेदी पर बलिदान होने के लिये आहूत किया है । " किसान " शीर्षक कविता में घनघोर घंटा का के साथ शंख ध्वनि को सुनकर निष्ठुर आततायियों के

1- आचार्य विश्वनाथ साहित्य दर्पण सं0 1976,पृ0सं0 646

पलायन का वर्णन कितना ओजपूर्ण है -

" यदि हिल उठे तू ए शेषनाग,
हो ध्वस्त पलक में राज्य भाग,
सम्राट निहारे नींद त्याग ।"[1]

वर्तमान को प्रभावी बनाने के लिये द्विवेदी जी ने अतीत की घटनाओं का स्मरण कराया है । " राणा प्रताप " नामक कविता में स्वाभिमान के मूर्तिमत " प्रताप " को स्मरण करते हुये लिखा है -

" जागो प्रताप के मेवाड़ देश के लक्ष्य भेद हैं जगा रहे,
जागो प्रताप माँ बहनो के अपमान खेद हैं जगा रहे ।"[2]

इसी प्रकार " आजादी के फूल " शीर्षक कविता में कवि कहता है कि यह वह समय है जब भावी इतिहास यह सिद्ध करेगा कि वीर और कायर कौन थे । दुर्बल हाथों में बंधी श्रृंखलायें, भावनायें के उद्दाम आवेश में बहुत दिन तक स्थिर नहीं रह सकती है -

" फिर क्यों दुर्बल भुजा हमारी कैसी कसी लोह-लड़ियां ।
अंगड़ाई भर ले स्वदेश टूटे पल में कड़िया-कड़ियां ।
× × × ×
फूंक फूंक शंख बाजे रणभेदी जननी की जय-जय बोले ।
चले करोड़ों की सेना डगमग-डगमग धरणी डोले ।"[3]

मध्य एवं आधुनिक काल के ऐतिहासिक वीर एवं महापुरुषों की कथाओं, प्रारम्भिक काल के कुछ बाल एवं प्रयाण गीतों में वीर रस का परिपाक हुआ है । ऐसे स्थलों में ओज गुण की सफल अभिव्यक्ति हुई है । जैसे सद्य,

---

1- सोहन लाल द्विवेदी, भैरवी सं० 1951, पृ०सं० 28
2- वही पृष्ठ -36
3- वही पृष्ठ- 68

विवाहित प्रेयसी का परित्याग कर सरदार चूडावत ने रक्षा के लिये अनुपतिति, कोमल प्रेमांकुर को तोड़कर जिस वीरता का परिचय दिया है वह आज भी अविस्मरणीय है । घात,प्रतिघात ,क्षुब्धा, एवं महाज्वार जैसे संयुक्त वर्णों के संयोग से ओज गुण मुर्तित हो उठा है -

" होते आघात- प्रतिघात यों बार-बार,
क्षुब्धा उस सिन्धु,स्य लुब्धा उठी महाज्वार,
टूक-टूक होते थे, कगार गुरू धैर्य के ।"[1]

× × × ×

" वीर सरदार चूडावत छिन्न शिर हेर
समझ गये सभी, किया पल-भर कहीं न देर,
रूद्र के समान, शीश कंठ में, माला कर,
चला युद्ध करने, क्रुद्ध कर में माला कर
जाता जिस ओर, प्रलय घटा बन जाता उधार,
पाट -पाट भूमि ,लक्ष- लक्ष नर मुण्डों में
'कोटि मुंडमाल रणचण्डी के चरणों के
अर्पित समर्पित कर बना वह अजेय
नित्यगेय ।"[2]

आलोच्य कवि के काव्य पर ओज गुण सम्पन्न रचनाओं का बाहुल्य है।

प्रसाद :-
=====

जिस रचना को पढ़कर चित्त द्रवित हो जाय तथा जिसका अर्थ सुगमता से लग सके वह रचना प्रसाद गुण समन्वित मानी जाती है । आचार्य विश्वनाथ के मतानुसार -

चित्तं व्याप्नोति यः क्षिप्रं शुष्केन्धनमिवानलः"

1- सोहन लाल द्विवेदी, वासवदत्ता सं0 1956, पृ0सं0 22
2- वही पृ0सं0 25

जिसे "प्रसाद" कहते हैं वह सहृदय की एक ऐसी निर्मलता है जो कि चित्त में उसी भाँति व्याप्त हो जाती है जिस भाँति सूखी लकड़ी में आग ।

" समप्रसादः समस्तेषु रसेषु रचनासु च "

यह"प्रसाद " सभी रसों का धर्म अथवा स्वरूप विशेष है और इसकी अवस्थिति सभी रचनाओं की विशेषता हुआ करती है । इसके अभि-व्यंजन -साधन वे शब्द हैं जिनके अर्थश्रवण मात्र से ही झलक उठते हैं ।"[1]

द्विवेदी जी मूलतः प्रसाद" गुण के कवि हैं । उनके काव्य में पद-पद परप्रसाद मयता परिलक्षित होती है । प्रसाद गुण युक्त उनकी रचनाओं के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं -

" पुरई पातों, खपरैलों में, रहिमा, रघुआ के नावों में,
है अपना हिन्दुस्तान कहाँ, वह बसा हमारे गाँवों में ।।"[2]

और -

" हिन्दू, मुसलिम , सिख इसाई,
क्या न सभी हैं भाई-भाई,
जन्म भूमि है सबकी माई । "[3]

फलतः द्विवेदी जी ने अपने काव्य पुष्पों को सजाने के लिये अनेक गुणों का वर्णन किया है । आलोच्य कवि सरलता एवं सच्चेपन के कवि हैं इसी लिये वे प्रसाद गुण के अप्रतिम कवि हैं । लेकिन परिस्थिति अनुसार यत्र तत्र माधुर्य एवं ओज गुणों की अभिव्यक्ति की है । पूजागीत, भैरवी, चेतना, प्रभाती, चेतना इत्यादि रचानयें प्रसाद गुण समन्वित हैं । माधुर्य गुण के लिये वासवदत्ता

1- विश्वनाथ, साहित्य दर्पण सं0 1976, पृ0सं0 647
2- सोहन लाल द्विवेदी, भैरवी सं0 1952, पृ0सं0 9
3- सोहन लाल द्विवेदी, पूजागीत सं0 1959, पृ0सं0 93

चित्रा स्मरणीय काव्य संकलन है । विषपान, भैरवी, चेतना, प्रभाती, इत्यादि रचनाओं में ओजगुण के उदाहरण झलकते हैं ।

मुहावरे एवं कहावतें

==============

मुहावरे और कहावतें किसी भी भाषा को एक उत्कर्ष प्रदान करने में सहायक होती है । उक्ति - वैचित्र्य और अर्थ की चारुता को उत्पन्न करने में मुहावरे कला के उपादान बनकर प्रयुक्त होते हैं । मुहावरों के कारण एक ओर काव्य में लाक्षणिक बक्रतायें बढ़ जाती हैं, दूसरी ओर इनकी शक्ति के कारण अभिव्यक्ति लोक जीवन के निकट आ जाती है । राष्ट्रीय चेतना के कवि पं0 सोहन लाल द्विवेदी ने कविता को प्रभावी बनाने के लिये जिन मुहावरों का प्रयोग किया है । उनमें से अधिकांश राष्ट्रीय भावों और श्रृंगार भावनाओं को अभिव्यक्ति देने में सहायक हुये हैं, उनके काव्य में प्रयुक्त कतिपय मुहावरे इस प्रकार है -

जीवन संध्या का ढलना, दीपक जलाना, सोने के दिन होना, चांदी की रातें, होना, रंग में रंगना, दाग होना, शीश पर चढ़ना, सीप होना, अपलक राह देखना, अश्रुपीना, हरा होना, उजड़ जाना, अवगुण्ठन खुलना, आँखें चार होना, घूंघट खोलना, आँख चुराना, दृग से नहलाना, छाती कसकना, मरूस्थल में बाग उगना, आँखों का पानी होना, शिर से पैर तक बह निकलना, पंख फैलाना, लोहा मानना, मर मिटना, प्राण फूंकना, पानी में आग लगाना, उत्कापात होना, ध्यान की चोट सहना, बिना तेल के दीपक जलाना, घी से आग बुझाना, अंग फड़कना, आग उगलना, आँखों में समाना, इन्द्रजाल बुनना,

हृदय छलनी बनाना, डोरे डालना, चार दिन की चाँदनी होना, आँखों में झूमना, कच्ची कली पिरोना, लोहा लेना, फूल बिखेरना, आँखें तरेरना, हिम्मत हारना, पानी न होना, धू-धू कर जलना, कालिख घुलना, नयन चार होना, छुई मुई होना, बाजे बजना, तार-तार होना, आँखों में गड़ना, टाँगे पसार कर सोना, बीन बीन कर पीटना आदि ।

मुहावरों की उपर्युक्त तालिका से यह स्पष्ट होता है कि द्विवेदी जी के मुहावरे प्रधान रूप में श्रृंगार भाव को एवं गौण रूप से वीर भावों को अभिव्यक्त देने वाले है -

उदाहरण के रूप में -

" क्या कभी होगी न लज्जा
लिये प्रात परिधान सज्जा ?
खोलकर अवगुणों को
प्राण भी खिल जायेंगे प्रिय ?"[1]

और -

" क्या गैरों से लोहा लेंगे
जब घर में ही फूट हुई
जो भी संघ शक्ति थी अपनी
पथ में उसकी लूट हुई ।"[2]

द्विवेदी जी ने मुहावरों को कहीं-कहीं सीधे ग्रहण कर लिया है और कहीं-कहीं संशोधित रूप में ग्रहण किया है ।

द्विरावृत - पद - योजना

काव्य में चमत्कार और वैदग्ध्य उत्पन्न करने के लिये द्विरुक्त पद योजना

1- सोहन लाल द्विवेदी, चित्रा सं० पंचम, पृ०सं० 40
2- सोहन लाल द्विवेदी, प्रभाती सं० 1961, पृ०सं० 75

का प्रयोग किया जाता है जहाँ एक पद को दोहरा देने से उसकी प्रभावक शक्ति बढ़ जाती है । द्विवेदी जी की काव्य-शैली के अन्तर्गत द्विरुक्त पद-योजना का प्रयोग व्यापक रूप में प्राप्त होता है । इसका कारण भावों का प्रबलतम आवेग तथा पाठकों को आन्दोलित करने का लक्ष्य भी हो सकता है । उनके काव्य में इस प्रकार के प्रयोग निम्नवत् हैं -

युग-युग, जाग-जाग, उठ-उठ, लाखा, लाखा, अंग-अंग, नगर-नगर, ग्राम-ग्राम, धाम-धाम, जय-जय, डगर-डगर, साधा-साधा, शत-शत, तृण-तृण, कण-कण, फिर-फिर, घर-घर, स्वर-स्वर, कोटि-कोटि, ठौर-ठौर, नित-नित, दर-दर, निशि-निशि, दिशि-दिशि, पग-पग, मग-मग, नस-नस, मचल-मचल, उछल-उछल, चलो-चलो, नन्हें-नन्हें, नई-नई, छक-छक, फक-फक, भाक-भाक तरह-तरह, घूम-घूम, म्याऊँ-म्याऊँ, दूर-दूर, गरज-गरज, छहर-छहर, गिर-गिर, हहर-हहर, कल-कल, छल-छल, पल-पल, चल-चल, ला-ला, चीर-चीर, नीर-नीर, चढ़-चढ़, हर-हर, बम-बम, हम-हम, चम-चम, धाम-धाम, धाम-धाम, धाम-धाम, गूह-गूह, जगमग-जगमग, मग-मग, प्यारी-प्यारी, चहक-चहक, कभी-कभी, कुछ-कुछ, छन-छन, नव-नव, हंस-हंस, झुक-झुक, फुदक-फुदक, छू-छू, संग-संग, पीछे-पीछे, आ-आ, जा-जा, खा-खा, सो-सो, सिमिट-सिमिट, सिकुड़-सिकुड़, फैल-फैल, छैल-छैल, आदि ।

द्विरुक्त पदों का प्रयोग द्विवेदी जी के काव्य में कहीं-कहीं वीप्सा अलंकार के रूप में हुआ है और कहीं-कहीं संगीतात्मक सौन्दर्य की अभिवृद्धि के लिये किया गया है । इस प्रकार के प्रयोगों से आलोच्य कवि ने कहीं-कहीं नाद योजना के बिम्ब प्रस्तुत किये हैं उदाहरण के रूप में -

"अगर कहीं बादल बन जाता, तो मैं जग में धूम मचाता ।
कड़कड़, गड़गड़, कड़कड़, गड़गड़, धाड़ धाड़, गड़ गड़, कड़ कड़, गड़ गड़
करता जग में भारी गर्जन, कंपते हाथी शेरों के मन ।"[1]

पुनरुक्ति से कवि का इतना लगाव प्रतीत होता है कि कहीं-कहीं कवि ने पूरी-पूरी पद रचना द्विरुक्त पदों से ही करता है उदाहरण के रूप में -

" अपने ही जैसा कर दो यह मेरा मानस भी
सरल- सरल,
कोमल-कोमल, निर्मल- निर्मल, उज्जवल-उज्जवल,
शीतल- शीतल ।" [2]

द्विवेदी जी ने द्विरुक्त पदों के प्रयोग से सौन्दर्य के मनोभावों को भी व्यक्त किया है, जिसमें सौन्दर्य की एक कमनीय एवं चपल मुद्रा का बिम्ब उभारा है-

"तुम लघु - लघु, प्रिय - प्रिय, कौन अरी,
फिरती रहती चंचल - चंचल ।" [3]

सौन्दर्य और रूप चित्रण में भी कवि ने इसी शैली को अपनाया है।
उदाहरण के लिये -

" गोरी - बाँहों में चार - चार ,
हैं लाल - लाल चूड़ी गहना ।" [4]

यहाँ चार- चार और लाल- लाल पद योजना द्विरुक्ति के कारण सौन्दर्य का बोध कराती है ।

कभी - कभी भावों की प्रबलता के कारण कवि ने इस शैली को

1- सोहन लाल द्विवेदी, बाँसुरी सं० 1957, पृ०सं० 37
2- सोहन लाल द्विवेदी, चित्रा सं० पंचम, पृ०सं० 5
3- वही पृष्ठ सं० 4
4- सोहन लाल द्विवेदी, चित्रा सं० पंचम

अपनाया है -

" तृण - तृण, कण- कण में आकर्षण,
नीलम दूर्वा उग आई । " [1]

द्विरुक्त प्रयोगों में कुछ शब्द द्विवेदी जी को अत्यन्त प्रिय है जिनका प्रयोग बहुल हैं ऐसे शब्दों -युग-युग, शत-शत, नगर-नगर, धाम-धाम, नव-नव, गृह-गृह, जाग-जाग आदि आदि प्रमुख है ।

वाक्य विकास
==========

द्विवेदी जी की काव्य भाषा में जिन तत्वों ने सौन्दर्य को संवर्धित किया है उनमें कवि का वाक्य विन्यास भी है । भाषा के कर्ता और क्रिया का क्रम, वाक्यों का आकार-प्रकार, और अन्विति के साथ संगीतात्मकता का निर्वाह उनके वाक्य विन्यास की प्रमुख विशेषता है । कवि के वाक्य विन्यास की एक और विशेषता सामासिक पदों की रचना है । उन्होंने संस्कृत की तत्सम परक शब्दावली को हिन्दी में प्रयुक्त करने में सफलता प्राप्त की है ।

उदाहरणार्थ :-
==========

" शुभ्र - हिम -मंडित कलेवर
दिव्यता कमनीय पग- पग ।" [2]

इस पद में शुभ्र, हिम और मंडित तीन शब्दों को मिलाकर एक सामासिक पद बनाया गया है । इसी प्रकार -

" श्याम नीलम तरु लता, तृण,
सुरभि-मधु- पूरित दिशा मग ।" [3]

1- सोहन लाल द्विवेदी, पू चित्रा सं0 पंचम, पृ0सं0 16

2- सोहन लाल द्विवेदी, चित्रा सं0 पंचम, पृ0सं0 12

3- वही

यहाँ सुरभि, मधु और पूरित शब्दों से एक सामासिक पद की रचना कवि ने की है।

सखी सम्बोधन की शैली में भी कवि ने कतिपय रचनायें की हैं। उदाहरण के रूप में -

" हम दोनों की हुई अलग बस्ती जग में आबाद सखी।
आज आ रही है रह- रहकर बहुत दिनों की याद
सखी।"[1]

कहीं-कहीं प्रश्नवाचक वाक्यों द्वारा व्यक्त की गई व्यंजनायें भी कवि की विशिष्ट शैली के अन्तर्गत आती है उदाहरण के लिये -

" उमड़ पड़ा है प्रेम न जाने आज कहाँ से
चरणों में ?
छिपा हुआ बैठा था जाने उर के किन
आवरणों में ?"[2]

आलोच्य कवि ने प्रश्न वाचक शैली के अन्तर्गत असाधारण सौन्दर्य और अनिंद्य को व्यक्त किया है -

"तुम शकुन्तला सी कौन,
सींचती हो यह किसकी फुलवारी।
कोमल मृणाल कर, लिए सुभग घट
अधा- विनत, छवि बलिहारी।"[3]

संक्षिप्त की दृष्टि से द्विवेदी जी की कतिपय कवितायें अत्यन्त प्रभावपूर्ण हैं -

" जंजीरों से चले बाँधने आजादी की चाह,
घी से आग बुझाने की, सोंची है सीधी राह।
हाँथ पाँव जकड़ो, जो चाहो, है अधिकार तुम्हारा।
जंजीरों से कैद नहीं, हो सकता हृदय हमारा।"[4]

1- सोहन लाल द्विवेदी, चित्रा सं0 पंचम, पृ0सं0 26

2- वही पृष्ठ सं0 34

3- सोहन लाल द्विवेदी, वासन्ती सं0 1951, पृ0सं0 111

4- सोहन लाल द्विवेदी, भैरवी सं0 1951, पृ0सं0 28

उनका लघुतम गीत देखें -

" फैला है अपार उपवन फूलों का ओर न छोर,
नयनों की डलिया में कैसे, पाऊं रूप बटोर?"[1]

लघुतम होते हुये भी कितनी प्रभावशाली है यह उनकी कविता ।

भाषा सम्बन्धी त्रुटियाँ
====================

व्याकरण विरुद्ध प्रयोगों से तथा भाषा गठन की दृष्टि से काव्य में दुर्बोध्यता उत्पन्न हो जाती है । अथवा कहीं-कहीं अस्पष्टता आ जाती है। द्विवेदी जी की भाषा प्राय: व्याकरण सम्मत है फिर भी वाक्य विन्यासों की अशुद्धियाँ अथवा अनमेल भाषा का प्रयोग कहीं- कहीं खटकने लगता है । उनके काव्य में के कुछ प्रमुख भाषा सम्बन्धी दोष इस प्रकार हैं -

सुराही के लिये सूराही, बगीचे के लिये, बागीचे , उठा के लिये उट्ठा आदि । कहीं- कहीं भाषा के बेमेल, प्रयोग भी द्विवेदी जी ने किये हैं । उदाहरण के लिये -

" बिना तेल के दीप जलाने का है कठिन मसौदा ।"

इस पंक्ति में " कठिन" शब्द के साथ " मसौदा " शब्द का प्रयोग खटकता है। हिन्दी के साथ उर्दू का यह बेमेल मिश्रण द्विवेदी जी की भाषा सम्बन्धी त्रुटियों के अन्तर्गत रखा जा सकता है ।

~~भाषा-सम्बन्धी~~
वाक्य - दोष
===========

वाक्य दोषों की दृष्टि से भी द्विवेदी जी की भाषा में यत्र-तत्र दोष मिलते हैं । यहाँ वाक्य दोषों के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं -

1- सोहन लाल द्विवेदी, चित्रा सं० पंचम, पृ०सं० 45

" होवें ग्रह बारहों केन्द्रित
विकल करें रव दिग्मंडल ।"[1]

प्रस्तुत पंक्ति में न्यूनपदत्व दोष है । जब वाक्य में किसी पद की न्यूनता होती है । तब न्यूर पदत्व दोष होता है । इसी प्रकार द्विवेदी जी के काव्य में कहीं-कहीं क्लिष्टत्व दोष भी पाया जाता है और अर्थ बोध करने मेंबाधा उत्पन्न होती है । उदाहरण के लिये -

" कुवलय कानन की पंकज श्री खिले न अरुण लिये
नव गंध,
कमल -नाल उत्तिष्क एक पद पथ ननिहारे,पलक अंमद ।
× × × ×
तरू का कंदन, पुष्प वृक्ष के, ज्योति दीप की हो न
प्रसन्न,
अज्ञात गृह के, अर्थ कलश का एक न हो मिलकर
असन्न ।"[2]

अलंकार विधान
============

अलंकार कविता कामिनी के श्रृंगार धर्म है । अलंकारण के बिना न तो कविता का श्रृंगार हो सकता है और न कामिनी का । अलंकार काव्य के सौन्दर्य प्रसाधन माने जाते हैं । अलंकारों के द्वारा काव्य में रमणीयता, चमत्कार एवं कलात्मकता उत्पन्न होती है । आचार्य विश्वनाथ के अनुसार -

" शब्दार्थ योरस्थिरा ये धर्माः शोभातिश शायिनः
रसादींनुपकुर्वन्तो लंकारास्तेऽङ्ग गदादिवत ।।"[3]

1- सोहन लाल द्विवेदी, भैरवी सं0 1951, पृष्ठ0 131
2- सोहन लाल द्विवेदी, वासंती सं0 1951, पृष्ठ0 107
3- आचार्य विश्वनाथ साहित्य दर्पण सं0 1976, पृष्ठ0 665

तात्पर्य यह है कि जैसे अंगद । बाजूबंद । आदि आभूषण मनुष्य शरीर के सौन्दर्य की अभिवृद्धि करते हुये मनुष्य के व्यक्तित्व के प्रकाशन में सहायता पहुँचाया करते हैं वैसे ही " अनुप्रास " और "उपमा" आदि अलंकार शब्द और अर्थ के सौन्दर्य की अभिवृद्धि करते हुये रस-भाव के प्रकाशन में सहायता पहुँचाया करते हैं । काव्य में इनकी स्थिति गुणों की भाँति अवश्यक अथवा अनिवार्य नहीं हुआ करती ।"[1]

अलंकार भाषा को लालित्य प्रदान करते हैं और उत्कर्ष भी । अभिव्यक्ति को क्षमता प्रदान करने में अलंकार सहायक सिद्ध होते हैं। आलोच्य कवि का काव्य अलंकारों के बोझ से बोझिल नहीं है ,उसमें अलंकार भावोत्कर्ष के साधन बनकर आये हैं, रस परिपाक में सहायक हुये हैं, बिम्ब को मुखरित करते हैं और शब्द संगठन को लालित्य प्रदान करते हैं । वैसे वे न तो अलंकारिक कवि हैं और न ही अलंकार सम्प्रदाय के प्रभाव से ग्रस्त हैं । इसी लिये अलंकार उनकी कविता काआन्तरिक धर्म न होकर अभिव्यंजना के सौन्दर्य का साधन बनकर प्रयुक्त हुये हैं । द्विवेदी जी की अभिव्यंजनाओं में प्रायः सभी प्रकार के अलंकारों का प्रयोग परिलक्षित है ।

अलंकारों को परिमित संख्या में बद्ध करना सम्भव नहीं है । अलंकारों की संख्या आज शताधिक पहुँच चुकी है । आचार्य सुधांशु ने युवती के गुण-वर्णन के लिये ऐसे ही अलंकारों की एक भीड़ एकत्र करके दिखलाई है ।[2] भारतीय काव्य शास्त्र में अलंकारों को मुख्य रूप से दो भागों में विभाजित किया गया है ।

1- आचार्य विश्वनाथ साहित्य दर्पण सं0 1976, पृ0सं0 665
2- लक्ष्मी नारायण सुधांशु काव्य में अभिव्यंजनावाद पृ0सं012-13

॥।॥ शब्दालंकार

॥।।॥अर्थालंकार

पाश्चात्य साहित्य में "विशेषण विपर्यय और मानवीकरण " जैसे अलंकार भी पाये जाते हैं । द्विवेदी जी के काव्य में भारतीय अलंकारों के अतिरिक्त पाश्चात्य अलंकार भी पाये जाते हैं । उनके काव्य में प्रयुक्त अलंकारों को निम्नलिखित तीन शीर्षकों के अन्तर्गत रखा जा सकता है -

॥।॥ शब्दालंकार योजना

॥।।॥ अर्थालंकार योजना

॥।।।॥पाश्चात्य अलंकार योजना

शब्दालंकार योजना :-
===============

आलोच्य कवि के काव्य में शब्दालंकारों का प्रयोग उनके गीत काव्य, प्रबन्धकाव्य, राष्ट्रीय गीतों और बालगीतों सभी में है । जिन प्रमुख शब्दालंकारों का प्रयोग उनके काव्य में पाया जाता है उनमें अनुप्रास, यमक, श्लेष , पुनरुक्ति और वीप्सा प्रमुख है । यहाँ द्विवेदी जी के प्रमुख काव्यों से कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :-

अ - अनुप्रास :-
==========

" किसलय कहता कातर स्वर से,
ले चलो मुझे भी बाह धाम।"[1]

॥2॥ "युग-युग का विराग तजकर प्रिय ।
आज अतुल अनुराग भरो ।" [2]

॥3॥ "जुगनू से जगमग जगमग ये
कौन चमकते हैं ये चमचम ।" [3]

1- सोहन लाल द्विवेदी, चित्रा सं0 1962, पृ0सं0 2
2- सोहन लाल द्विवेदी, चित्रा सं0 1962, पृ0सं0 16
3- सोहन लाल द्विवेदी, बाँसुरी सं0 1957, पृ0सं0 23

इन उदाहरणों में वर्ण की दो से अधिक बार आवृत्ति होने से वृत्तानुप्रास अलंकार है ।

(4) "लोक की मिथ्या कथा से,
डर गये क्या सहज साजन ?"[1]

(5) " अचल प्रीति -प्रतीति से,
जग के अड़िग भ्रम को डिगाओ ।"[2]

(6) " रहो लीन तुम तप साधान में
जीवन के अमृत अर्जन में ।" [3]

इन उदाहरणों में वर्ण की दो बार आवृत्ति से छेकानुप्रास है ।

ब- यमक :-
=======

"दिया अमृत -धार मुझे हाथ में,
किन्तु अमृत सा चखान सका मैं ।"[4]

यहां "अमृत अमृत " में यमक अलंकार है ।

स- श्लेष :-
========

" सुमन का है लगा मेला ।" [5]

"सुमन" शब्द में श्लेष है । फूल तथा सुन्दर मन दोनों ही अर्थ सुमन से व्यक्त हुये हैं ।

द - पुनरूक्ति :-
===========

(1) "तृण तृण में कण-कण में क्षण-क्षण " [6]

1- सोहन लाल द्विवेदी, चित्रा सं० पंचम ,पृ०सं० 18
2- वही पृष्ठ सं० 19
3- वही पृष्ठ सं० 47
4- वही पृष्ठ सं० 51
5- सोहन लाल द्विवेदी, वासन्ती सं० 1951, पृ०सं० 99
6- सोहन लाल द्विवेदी, चित्रा सं० पंचम, सं०1951, पृ०सं० 75

॥ii॥ अपने ही जैसा कर दो यह मेरा मानस भी सरल-सरल
कोमल-कोमल, निर्मल-निर्मल, उज्जवल - उज्जवल,
शीतल- शीतल ।" [1]

य- वीप्सा :-
=========

॥i॥ "वन - वन उपवन - उपवन उत्सव
आई मधु ऋतु की रानी । "[2]

॥ii॥" वन-वन उपवन- उपवन डोलो
सुमन - सुमन में नव मधु बोलो ।"[3]

अर्थालंकार योजना :-
===============

शब्दालंकारों के अतिरिक्त अर्थालंकारों की योजना भी काव्य में रस और भावों के उत्कर्ष में सहायक होती है । द्विवेदी जी के काव्य में अर्थालंकार की योजना अत्यंत कला पूर्ण है । उनके काव्य में प्रयुक्त अर्थालंकारों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अन्योक्ति, विरोधाभास आदि प्रमुख हैं । आलोच्य कवि के काव्य में प्रयुक्त अर्थालंकारों के कतिपय उदाहरण निम्नलिखित हैं :-

॥क॥ उपमा :-

॥i॥ "तुम शकुन्तला सी कौन
सींचती हो यह किसकी फुलवाड़ी ।"[4]

॥ii॥"कालिदास के विधुर यक्ष के
सहृदय टूट ।. नील जलधर ।"[5]

॥ख॥ रूपक :-

॥i॥" आज फिर मन धान भरा है ।"[6]

1- सोहन लाल द्विवेदी, चित्रा सं0 पंचम सं01951, पृ0सं0 5
2- वही पृष्ठ सं0 15
3- वही पृष्ठ सं0 44
4- सोहन लाल द्विवेदी, वासन्ती सं0 1951, पृ0सं0 111
5- सोहन लाल द्विवेदी, चित्रा सं0पंचम, पृ0सं0 75, 6- वही पृष्ठ सं0 66

॥ii॥" मिलन कुंज की मधु छायायें

कब विस्मृति -मरन्द ढलेगा ।"[1]

॥ग॥ सांग रूपक :-

॥i॥" मेरे नयन डोर मन घाट के

चिर छवि जल के कूप बनोगे ।"[2]

॥ii॥ "दिवस भर जयमाल गूंथा

रात भर दीपक जलाया

और उनमें अश्रु के

मकरन्द का रस भी मिलाया,

आगमन का मदिर कलश

किन्तु फिर भी छुन न पाया ।"[3]

॥घ॥ उत्प्रेक्षा :-

" खिल उठीं किरणें गगन पर,

स्नेह के ज्यों भाव मन पर ।"[4]

॥ङ.॥ अन्योक्ति :-

" एक बूंद बोली -

बहन

देखो धरा दीना है ।

आज अन्न हीना है ।

तड़प रहे हैं पशु- पक्षी चर- अचर सभी,

तड़प रहे हैं कृषक, श्रमिक बिना सीर के

तड़प रही है हम सी कन्यायें माता की ।"[5]

1- सोहन लाल द्विवेदी, चित्रा सं0 पंचम, पृ0सं0 62

2- सोहन लाल द्विवेदी, वासन्ती सं0 1951, पृ0सं0 15

3- सोहन लाल द्विवेदी, चित्रा सं0 पंचम, पृ0सं0 23

4- वही पृष्ठ सं0 84

5- सोहन लाल द्विवेदी, वासवदत्ता सं0 1956, पृ0सं0 38

(च) विरोधाभास :-

युद्ध करेंगे, प्रेम करेंगे
क्रूर बनेंगे और सदय भी ।
प्रलय रहेगा और प्रणय भी
× × × × ×
राग रहेगा और विराग भी
आग रहेगी औ पराग भी ।"[1]

(छ) स्मृति अलंकार :-

(।) "अहा सुखाद था वह कितना संसार
सुनहला था अपना, टूट गई वह नींद,
रह गया है केवल जगमग सपना ।"[2]

(।।) " याद आ रहा वह घर अपना ।
लगता है जैसे हो सपना ।"[3]

(ज) दृष्टान्त अलंकार :-

(।) "हमें बल्लरी ज्यों डोली ।"[4]

(।।) " लौह- कड़ियां तोड़ दूं ज्यों
सूत का हो मृदुल धागा ।"[5]

(झ) क्रमालंकार :-

" बढ़ रही ज्यों- ज्यों अवधि
त्यों- त्यों विकलता बढ़ रही ।"[6]

1- सोहन लाल द्विवेदी, चित्रा सं0 पंचम, पृ0सं0 60
2- वही पृ0सं0 27
3- सोहन लाल द्विवेदी, गीतभारती सं0 पंचम, पृ0सं0 23
4- सोहन लाल द्विवेदी, वासवदत्ता सं0 1956, पृ0सं0 13
5- सोहन लाल द्विवेदी, चित्रा सं0 पंचम, पृ0सं0 39
6- वही पृष्ठ सं0 21

पाश्चात्य अलंकार योजना :-
==================

द्विवेदी जी के काव्य में पाश्चात्य अलंकार योजना के अन्तर्गत मानवीकरण और ध्वन्यर्थ व्यंजना के विशेष प्रयोग मिलते हैं ,पाश्चात्य अलंकार योजना के कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं -

॥क॥ मानवीकरण :-

॥।॥ " धानी बनी बसुधा भिखारिणी
सुख श्री की वर्षा आई ।"[1]

॥ख॥ ध्वन्यर्थ व्यंजना :-

॥।॥ "बह रही है पवन सन सन
खुल रहा फिर प्रणय - बंधान ।"[2]

॥।।॥" गड़ गड़ गड़ गड़ करते बादल ।
धड़,धड़ , धड़,धड़ करते बादल ।"[3]

द्विवेदी जी के काव्य में अलंकारों के सभी वर्गों का प्रयोग हुआ है किन्तु उनकी उपमायें सर्वश्रेष्ठ है । उनकी उपमायें खादी पर अर्थ गाम्भीर्य युक्त हैं और ऐन्द्रिक प्रगाढ़ सम्वेदनों की अपेक्षा निर्मल पवित्रता के बोध से संयुक्त है ।

" उपमा कालिदासस्य - की उक्ति संस्कृत वाङ्मय में कालिदास को उपमाओं का सम्राट कवि घोषित करने वाली है । हिन्दी में द्विवेदी जी अलंकार विधान की दृष्टि से उपमाओं के विशेष कवि कहे जा सकते हैं । उनकी उपमायें जहां एक ओर सौन्दर्य के मानसिक पक्षों को समान धर्मी बिम्ब प्रदान करना

1- सोहन लाल द्विवेदी, चित्रा सं० पंचम, पृ०सं० 16
2- सोहन लाल द्विवेदी, चित्रा सं० पंचम,पृ०सं० 66
3- सोहन लाल द्विवेदी, शिशुभारती सं० 1949, पृ०सं० 20

चाहती है । वही एक समानान्तर चित्र खींच देती है । कोई भी कवि उपमाओं के बिना अपने वर्ण्य विषय को मूर्त रूप नहीं दे सकता । द्विवेदी जी ने उपमाओं के द्वारा भाव स्थितियों को व्यक्त करने में विशेष सफलता प्राप्त की है । इतना ही नहीं कवि जब किसी वस्तु का उपमान प्रस्तुत करता है तो उसे एक ही उपमान द्वारा न व्यक्त करके उपमानों की एक माला पिरोकर उस भाव को और उसके सौन्दर्य को बोध गम्य बनाना चाहता है । उनकी उपमायें मूर्त को अमूर्त में भी प्रस्तुत करती है । उदाहरण के लिये " वासवदत्ता " के रूप विधान में कवि ने उसे अमूर्त भावों केरूप में सुषमा की प्रतिमा, कवि कल्पना प्रणय अभिलाषा आदि रूपों में व्यक्त किया है -

" सुषमा की प्रतिभा,
एक तरूणी दिवांगना सी,
कवि कल्पना सी
विधि की अनूप रचना -सी,
सुन्दरी प्रणय अभिलाषा सी ।"[1]

उपमाओं में ही कवि का मन रमा है । अमूर्त उपमान विधान के अतिरिक्त मूर्त का मूर्त विधान भी उपमाओं में व्यक्त हुआ है । जैसे वासवदत्ता की उपमा " मोहक इन्द्रधनुसी" से दी गई है ।"[2]

उपमाओं के क्षेत्र में कवि ने उपमानाविविध क्षेत्रों से चुने हैं और इस चुनाव में कवि की प्रतिभा, और कल्पना, दोनों का मनोहारी योग है । स्मिति [मुस्कान] जैसे अमूर्त भाव को कवि ने सौन्दर्य की अनुपमेय शकुन्तला

1- सोहन लाल द्विवेदी, वासवदत्ता सं0 1956, पृ0सं0 2

2- वही

के द्वारा व्यक्त किया है -

" तुम शकुन्तला सी कौन,
सींचती हो यह किसकी फुलवारी ।"[1]

मुस्कान को कैसे चित्रित किया जाता, यह एक जटिल चित्र धर्म था। किन्तु कवि ने बड़ी कुशलता से इसकी उपमा शकुन्तला से दे दी अब पाठकों के सामने मुस्कान मूर्त मंत्र हो उठी, क्यों कि शकुन्तला कालिदास की प्रतिमा की सौन्दर्य सृष्टि है । अतः स्थिति के साथ शकुन्तला के अधरों से झरने वाली मुस्कान अपने आप में मूर्तमंत हो जाती है । इसी प्रकार कब कवि एक दूसरी उपमा" दमयन्ती सी" कहकर नल की प्रेयसी दमयन्ती के उपमान द्वारा एक भावचित्र खींचना चाहता है काव्य पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं -

" तुम दमयन्ती सी कौन ? भेजती
किस नल को अपना सन्देश ?" [2]

इस प्रकार शकुन्तला और दमयन्ती जैसी काव्य की सौन्दर्य प्रधान नायिकाओं को उपमाओं के लिये चुना गया । इसी प्रकार द्विवेदी जी की प्रकृति की प्रकृति किकक परक उपमायें भी अत्यन्त कमनीय हैं । प्रकृति परक उपमाओं में मुख्य हैं ।

उपमाओं में मानव मन की अभिलाषाओं को भी द्विवेदी जी ने अभिव्यक्ति दी है । जैसे -

" दुर्लभ दरिद्र की आशा सी,
विधवा की मधु अभिलाषा सी।"[3]

1- सोहन लाल द्विवेदी, वासन्ती सं0 1951, पृ0सं0 14
2- सोहन लाल द्विवेदी, वासन्ती सं0 1951, पृ0सं0 112
3- वही पृ0 सं0113

श्रृंगारिक क्षेत्र से भी उपमान चुने गये हैं -

" स्वयं उपहार- सी
सोलह श्रृंगार सी
सुषमा अपार सी ।"[1]

उपमा अलंकार का एक और मनोहारी दृष्टान्त दृष्टव्य है -

" जल बहता नचता गाता सा,
बच्चों -सा शोर मचाता सा,
है कभी सामने भगता सा,
तो कभी किनारे लगता- सा ।"[2]

उपमा के अतिरिक्त रूपक भी द्विवेदी जी का मधुरतम अलंकार है और इसका प्रयोग भीकवि ने प्राय: हर ग्रन्थ में किया है । अन्य अलंकारों का प्रयोग भी स्वाभाविक एवं सरल रूप में किया गया है ।

प्रतीक योजना
==========

काव्य में प्रतीकों का विशेष महत्व है ,प्रतीकों के माध्यम से कवि अपने मनोभावों को कुशलतापूर्वक व्यक्त करते हैं । द्विवेदी जी के काव्य में भी प्रतीकों का प्रयोग हुआ है । इनकी प्रतीक योजना के कुछ उदाहरण दृष्टव्य है -

" पावस घन - सा उमड़ रहा मन
बरसेगा जाने किस ओर ?
प्यासा कौन ? तृषा है किसको,
किस चातक का उठता रोर ।" [3]

यहाँ चातक प्रेमी का प्रतीक है और घन ।बादल। भावावेश का ।

" पूर्णिमा से वे अमा में
खिल उठे छविमान मेरे ।"[4]

1- सोहन लाल द्विवेदी, वासवदत्ता सं0 1956, पृ0सं0 8
2- सोहन लाल द्विवेदी, बासुरी सं0 1957, पृ0सं0 47
3- सोहन लाल द्विवेदी, चित्रा सं0 पंचम, पृ0सं0 34
4- वही पृ0सं0 36

6-ख-

छन्द योजना

" अथर्ववेद में वाकतत्व के आधार पर कवि स्वर और छन्दों को अनेक रूप में प्रस्तुत करते हैं ।"[1] छन्द काव्य शिल्प का एक अपरिहार्य अंग रहा है । छन्द के बंधन में कविता लय युक्त होकर गेयतत्वों से आदि काल से ही प्रवहमान रही है । विविध भाषाओं के साहित्य में किसी न किसी रूप में छन्द का अस्तित्व स्वीकार किया जाता रहा है । द्विवेदी जी के काव्य में विविध प्रकार के छन्दों का प्रयोग भले ही न प्राप्त होता हो किन्तु उनके छन्द विषय अब अनुरूप हैं और कथ्य को सम्प्रेषित करने में सहायक हैं । बंगला साहित्य अपनी कोमलतम भावनाओं एवं गेय छन्दों के लिये समूचे भारतीय वाङ्मय में अपनी अलग से पहचान बनाता है । बंगला में अमित्रा क्षर छन्द का प्रयोग माइकेल मधु सूदन दत्त ने विशेष रूप से किया है । बंगला के इस छन्द को हिन्दी में सोहन लाल द्विवेदी जी ने अपनाकर बंगला और हिन्दी के बीच समन्वय स्थापित करने का कार्य किया है । "वासवदत्ता" जैसी कृति को इसी अमित्राक्षर छन्द में रचने का द्विवेदी जी का साहस निश्चय ही स्तुत्य है ।

द्विवेदी जी के काव्य में मुक्त छन्द, मिश्र वर्ग के छन्द तथा हिन्दी के परम्परागत छन्द सभी मिलते हैं । इसके साथ ही साथ परम्परा गत छन्दों से भिन्न नवीन एवम् मौलिक छन्दों का भी कवि के द्वारा गढ़ा गया है । अमित्रा क्षर का एक उदाहरण देखें -

" गौतम यह देखकर,
माया सब लेखकर,

1- अथर्ववेद, 9-10-21

" चकित - से विस्मित - से भ्रमित - से, अवाक- से
लगे देखने सभी लीला वासवदता की,
रूप की,
यौवन की-
यौवन की आग्रह की,
प्राणों के कम्पन की
सिहरन की ।"[1]

द्विवेदी जी ने अपनी कविताओं में उर्दू शैली से प्रभावित कुछ छन्द लिखकर हिन्दी कविता में उर्दू के प्रभाव को स्वीकार किया है । उनकी एक रूबाई देखें -ई

" दासी क्यों अजब उदासी है ?
जिन्दगी बन गई दासी है,
ताजगी नहीं गर ख्यालों में,
जिन्दगी तुम्हारी बासी है ।"[2]

द्विवेदी जी का काव्य शिल्प उच्च स्तरीय गुणों से युक्त होने के कारण उनकी कीर्ति को अक्षुण्ण बनाने वाला है । "निर्दोष काव्य - रचना किसी कवि को महर्षि व्यास के समान यश प्रदान करती है ।"[3] निःसन्देह द्विवेदी जी का काव्य भी निर्दोष एवं सुयश प्रदान करने वाला काव्य है । भारत के सुदूर अंचलों तक उनकी जो कीर्ति फैली है इसका कारण प्रचार न होकर काव्य का उत्कृष्ट शिल्प - सौन्दर्य ही है ।

छन्द केवल काव्य का रूपगत शिल्प हीन है, उसका सम्बन्ध काव्य के

1- सोहन लाल द्विवेदी, वासवदता सं0 1956, पृ0सं0 3

2- सोहन लाल द्विवेदी, मुक्तिगंगा सं01972, पृ0सं0 22

3- आचार्य रूद्र काव्यालंकार, 1/22

गुण धर्म से भी सन्तुष्ट होता है। छन्द गुण के संयोग से रसानुभूति में भी सहायक सिद्ध होता है। द्विवेदी जी के छन्दों में अभिव्यंजना के धर्म को और अधिक प्रकर्ष प्रदान किया है। उनकी राष्ट्रीय रचनाओं में उत्साह और उर्जा से चित में जिस प्रफुल्लता का संचार होता है उसमें ओज की दीप्ति में कवि का छन्द -विधान सहायक सिद्ध होता है। उदाहरण के लिये -

" जागो प्रताप के मेवाड़ देश के लक्ष्य भेद हैं जगा रहे।
जागो प्रताप मां बहनों के अपमान छेद हैं जगा रहे।"[1]

आलोच्य छन्द अपने वैशिष्ट के कारण वीरत्व के संचार में रस सिद्ध को वरण करता है। ओज के अनुकूल छन्द का चयन कवि के काव्य धर्म को राष्ट्रीय धर्म में संयुक्त करने वाला है।

बाल गीतों में कवि ने छन्दों को परिवर्तित किया है। सुकुमार भावनाओं एवं वीरभावों के अनुकूल छन्द भी अपनी प्रकृति को गतिशीलता देते हैं। उदाहरण के लिये -

" न हाथ एक शस्त्र हो,
न साथ एक अस्त्र हो,
न अन्न ,नीर वस्त्र हो,
हटो नहीं, डटो वहीं,
बढ़े चलो, बढ़े चलो।"[2]

स्वाधीन प्रिय होने के कारण कवि छन्दों का बन्धन स्वीकार नहीं करता। कवि के सामने अनेक ज्वलन्त राष्ट्रीय समस्यायें हैं। जिनके लिये कवि की वाणी उपयुक्त छन्द का चयन नहीं कर सकी। भावावेश के कारण छन्दों में

1- सोहन लाल द्विवेदी, भैरवी, सं01951, पृ0सं0 36
2- सोहन लाल द्विवेदी, भैरवी सं0 1951, पृ0सं0135

भले ही पिंगल के निर्धारित गुणों की पूर्ति न मिलती हो किन्तु यह छन्द अपने प्रवाह गुण धर्म में अत्यधिक अभिव्यंजक है । भावावेश को न तो छन्दों की सीमित परिधि में बांधा जा सकता है और न ही उंगलियों के पोरों में गणों की गणना करने का अवसर ही कवि को मिला । यही कारण है कि उन्होंने मिश्र छन्दों को वरण किया तथा विभिन्न भावों के परिवर्तित मनोदशाओं को विभिन्न छन्दों से व्यंजित किया "वासवदत्ता" में छन्द के पारम्परिक बन्धन को तोड़कर निराला जैसी क्रान्ति दृष्टि का भी परिचय दिया है । जहाँ कहीं वे स्वतंत्र तथा मुक्त छन्दों को चुनते हैं वहाँ कवि की कल्पनाओं क्रीड़ा के लिये एक स्वच्छन्द वातावरण प्राप्त कर लेती हैं । ऐसे प्रसंगों में काव्य-सृजन की प्रक्रिया भी अधिक सामर्थ्य लेकर सामने आती है । वासवदत्ता में जो भावोत्कर्ष अपनी कलात्मक ऊंचाईयों को लेकर सामने आया है । उसका एक कारण छन्द की स्वच्छन्दता और सहज स्फूर्ति भी है । श्रृंगार रस के लिये बिहारी के दोहे तो ख्यात ही है । दोहा जैसे छोटे से छन्द में श्रृंगार के मनोयोगों को व्यक्त करने में द्विवेदी जी के कवि को भी सफलता मिली है । "नयनिका" में कवि ने दोहों का प्रयोग किया है तथा सुदीर्घकालीन दोहों की परम्परा को आधुनिक युग तक अक्षुण्ण रखा है । उदाहरण के लिये -

" तरुण -अरुण दृग में लसी, ऐसी अनुपम आब ।
तन फुलवारी में खिले, मानो मधुर गुलाब ।।"

काव्य रूप की दृष्टि से द्विवेदी जी उच्च स्तरीय सम्भावनाओं से युक्त शिल्प भी लेकर आते हैं । चिन्तन की प्रौढ़ता शिल्प की सौन्दर्य -मयी विच्छित्ति का योग पाकर अभिव्यक्ति धर्म को समुन्नत करता है । और इस प्रयत्न में उनका कवि की महान कवि परम्परा के उत्कर्ष को अक्षुण्ण रखाता है।

6°-र- द्विवेदी जी के काव्य में भावों की जैसी गरिमा देखने को मिलती है, कला-प्रवीणता भी वैसी ही दृष्टिगोचर होती है । अनुभूति और अभिव्यक्ति का ऐसा सामन्जस्य श्लाघनीय है । भावानुकूल भाषा लिखने में द्विवेदी जी को कमाल हासिल है- मेरा अभिप्राय केवल इतना ही है कि उनके काव्य का जो भाव-वैभव है, वह उनकी भाषा की सफाई से और भी अधिक चमक उठा है । राष्ट्र की सूक्ष्म भावनाओं, भावना-भेदों और रमणीयता की विविध स्थितियों को अभिव्यक्ति देने के लिये सीधी-सादी अभिधा-परक भाषा को महत्व देते हैं । वे लाक्षणिक भाषा से दूर रहते हैं । इनकी कला जनता के हृदय में सीधे धार कर जाती है ये खड़ी बोली के स्तम्भ के रूप में गिने जाते हैं, उनकी भाषा साहित्यिक, व्याकरण सम्मत है । यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि भाषा पर जैसा अचूक अधिकार इनका था, वैसा और किसी कवि का नहीं । भाषा मानों इनके हृदय के साथ जुड़कर वशवर्तिनी हो गयी थी कि ये उसे अपनी अनूठी भाव-भंगी के साथ-साथ जिस रूप में चाहते थे, मोड़ लेते थे । उनके हृदय का योग पाकर भाषा को नूतन गतिविधि का अभ्यास हुआ और वह पहले से कहीं अधिक बलवती दिखाई पड़ी । जब आवश्यकता होती थी तब ये उसे बंधी प्रणाली पर से हटाकर अपनी नई प्रणाली पर ले जाते थे । इनकी सरल सुबोध भाषा का एक उदाहरण देखिये -

" न हाथ एक शस्त्र हो,
न साथ एक अस्त्र हो,
न अन्न, नीर वस्त्र हो,
हटो नहीं, डटो वहीं,
बढ़े चलो, बढ़े चलो ।" 1

1- सोहन लाल द्विवेदी, भैरवी सं० 1951, पृ०सं० 135

द्विवेदी जी ने अपनी कविताओं में संस्कृतनिष्ठ शब्दावली के साथ-साथ उर्दू शब्दों का भी प्रयोग किया है । उनकी एक रुबाई देखें -

" छायी क्यों अजब उदासी है ?
जिन्दगी बन गयी दासी है,
ताजगी नहीं गर ख्यालों में,
जिन्दगी तुम्हारी बासी है।"[1]

द्विवेदी जी का काव्य शिल्प उच्च स्तरीय गुणों से युक्त होने के कारण उनकी कीर्ति को बढ़ाने वाला है । निर्दोष काव्य रचना किसी कवि को महर्षि व्यास के समान यश प्रदान करती है ।"[2] निःसन्देह द्विवेदी जी का काव्य भी निर्दोष एवं सुयश प्रदान करने वाला काव्य है । भारत के सुदूर अंचलों तक उनकी जो कीर्ति फैली है इसका कारण प्रधान होकर काव्य का उत्कृष्ट शिल्प सौन्दर्य ही है । वैसे तो भाषा एवं छन्द के प्रकरणों में इनकी शिल्प-गत विशेषताओं का गवेषणात्मक विवेचन किया गया है । पिष्टपेषण ठीक न होने के कारण एक ही बात पर संदर्भ को खत्म किया जा रहा है कि उनकी शिल्पगत विशेषतायें अनूठी हैं जो अन्य किसी कवि के काव्य में दृष्टव्य नहीं हैं ।

1- सोहन लाल द्विवेदी, मुक्तिगंधा सं0 1972, पृ0सं0 22

2- आचार्य रुद्र ,काव्यालंकार, 1/22

अध्याय- सप्तम्

राष्ट्रीय काव्य-धारा के अन्य कवियों से द्विवेदी जी की तुलना

कवि युग का संदेश वाहक होता है। वह युग और जीवन को जितनी दृढ़ता से पकड़ता है उसकी कृतियों में उतनी ही जीवन शक्ति का समावेश होता है। एक ही युग में अनेक कवि युग-प्रभाव ग्रहण कर अपनी रचनाओं की सृष्टि करते हैं, किन्तु व्यक्तिगत विभिन्नताओं के कारण उन कवियों के दृष्टिकोण में किंचित अन्तर आ जाता है। यही अन्तर प्रत्येक कवि का मौलिक स्वरूप होता है। यही कारण है कि किसी भी युग विशेष के अनेकानेक कवि समकालीन होकर भी तथा एक ही काव्यधारा से सम्बन्ध रखने पर भी एवं एक ही प्रवृत्ति विशेष को लेकर चलने पर भी पृथक नजर आते हैं क्योंकि समकालीन परिवेश के प्रति हर कवि की प्रतिक्रियायें एक जैसी नहीं होती परन्तु इस वैषम्य के उपरान्त भी समकालीन रचनाकारों की कृतियों में जो युग-बिम्ब होते हैं उनमें अन्तर होते हुए भी साम्य का मूल्य कहीं न कहीं मिल जाता ही है। युगीन -प्रवृत्तियाँ क्रियात्मक या प्रतिक्रियात्मक रुप में समरुपेण प्रकट हो ही जाती हैं। यही साम्य और एकता का क्षीण सूत्र समकालीन रचनाकारों की तुलना का आधार बनता है। रचना कारों के पारस्परिक उत्कर्ष के मूल्यांकनार्थ इसी साम्य-सूत्र का निरीक्षण परीक्षण करना पड़ता है। अस्तु इसी आधार पर युग-कवि सोहन लाल की तुलना उनके अन्य राष्ट्रीय काव्य धारा के साथ करना अभिप्रेत है। यद्यपि तुलना में प्राय: पूर्वाग्रह से प्रेरित होने के कारण - अनेकानेक दोष आ जाने की सम्भावनायें आ जाती हैं, किन्तु प्रयास किया जाना चाहिये कि तथ्य और तत्व की यथार्थता पर दृष्टि रखते हुये तटस्थ होकर ही तुलना की जाये। प्रस्तुत अध्याय में पूर्वाग्रहों से बचकर तथा तटस्थ रहकर प्रवृत्तियों के आधार पर सोहनलाल की तुलना अन्य राष्ट्रीय काव्यधारा के कवियों से की गई है। तथा यह देखा गया है कि कवि ने युगल काव्य में युग चेतना का कहां तक वाणी-

विधान किया गया है ।

मैथिली शरण गुप्त और सोहन लाल द्विवेदी

मैथिली शरण गुप्त और सोहन लाल द्विवेदी दोनों नवयुग के कवि हैं । भारतीय नव चेतना से उनका साक्षात्कार अद्भुत है । उनके काव्य का मूलादर्श परम्परा एवं आधुनिकता का समन्वय है । गुप्त जी मनुष्यत्व को सर्वोपरि स्थान प्रदान करते हैं ।[1] उनकी दृष्टि में आत्म विश्वास ही परमात्म विश्वास है । गुप्त जी बौद्धिकता की चरम परिणति पर पहुंचते-२ यह स्थापना करते हैं कि अन्य विश्वासी मनुष्य ही सच्चा आस्तिक है, फिर भले ही वह परमात्मा में भी विश्वास न रखता हो ।[2] इन्होंने तुलसी दास जी की भांति नाम स्मरण के प्रभाव को समर्पित किया है ।[3] इसके साथ ही साथ बौद्धिकता के विकास पर इस मत का खण्डन भी प्रस्तुत किया है ।[4] इनकी बौद्धिकता की कसौटी पर अदृष्ट और परोक्ष की बातें बिल्कुल खरी नहीं उतरतीं, क्योंकि अदृष्ट में कारण-कार्य परम्परा अप्रत्यक्ष रहने के कारण बुद्धि की सीमा से परे रहती है । इसलिये गुप्त जी अदृष्ट को उसी के सहारे छोड़कर प्रत्यक्ष वर्तमान को सुधारने में ही आस्था रखते हैं ।[5]

कवि की भक्ति भावना 'साकेत' तथा द्वापर 'के रूप में उद्वेलित हुई है । पं० सोहन लाल द्विवेदी भक्ति भावना के सम्पर्क में कम रहे हैं । इनका दृष्टिकोण

१- "मेरी कृति में मनुष्यत्व से श्रेष्ठ नहीं कुछ अन्य" (पृथ्वी पुत्र (दिवोदास), पृ०सं०-६ ।

२- जो है आत्म विश्वासी वही तो अस्तिवादी है । चाहे परमात्मा के विषय में प्रभावी है ।

पृथवी पुत्र पृ०सं०-४२ ।

३- जो नाम मात्र भी स्मरण मदीय करेंगे ।
वे भी भवसागर बिना प्रयास तरेंगे ।" ---- साकेत पृ०सं० १६७ ।

४-"कल तक नाम जपा है हमने, आज करेंगे काम" ---- पृथिवी पुत्र (दिवोदास) पृ०सं०२३ ।

५- छोड़ दो अदृष्ट को अदृष्ट ही पनपने ।
देखने को क्या कम है सामने ही अपने । ---- पृथिवी पुत्र (जयनी) पृ०सं०(४१-४२)

स्वतन्त्रता की लड़ाई में विजय पाने के लिये बालकों एवं युवकों में प्रेरणा भरने वाले गीत लिखे हैं ।

गुप्त जी के काव्य में धार्मिक प्रतिमा की प्रचुर मात्रा में दृष्टिगोचर होते हैं । कवि मानवता रूप एक ही धर्म को स्वीकार किया करता है वस्तुत: मानवता ही मानव को बनाती है ।

"आत्मवत्सर्वभूतेषु"[1] "वसुधैव कुटुम्बकम्"[2] जैसी सूक्तियों से अनुप्राणित जीवन यापन ही मानव की विशेषता है । स्वयं जीकर दूसरे को जीने देना, प्राणि मात्र में आत्म भावना करना, दया करना ही धर्म है ।

गुप्त जी के काव्यों में मानव-धर्म के दर्शन किये जा सकते हैं । यही कारण है कि एक ओर जहां वे भारतीय राष्ट्रवाद की कल्पना और गान्धीवाद से प्रभावित हैं वहां दूसरी ओर उनकी कृतियों में आपने सुविधा के लिये अपने काव्य में धार्मिक प्रतिमानों को इस प्रकार व्यक्त किया है -

(क) अवतारवाद
(ख) पुरुषत्व की कसौटी
(ग) नारी धर्म-निष्कर्ष
(घ) सत्य,अहिंसा आदि मानव-धर्म के प्रतिमान

गुप्त जी ने अवतारवाद को स्वीकृत किया है । ईश्वर का मानव रूप धारण करना ही 'अवतारवाद' का विषय है । श्री राम भी विष्णु के अवतार

१- मातृवत्परदारेषु पर द्रव्येषु लोष्टवत् ।
आत्म वत्सर्व भूतेषु य: पश्यति स पण्डित: ।।
हितोपदेश - मित्र लाम ।

२- अयं निज: परोवेति गणना लघु चेतसाम् ।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्, ।।
हितोपदेश - मित्रलाम । ६०

माने गये हैं। साकेत में गुप्त जी ने स्वयं राम के मुख से उनके अवतार ग्रहण करने का भी यही बतलाया है कि वे मनुष्यत्व का नाट्य खेलने के लिये ही अवतरित हुये हैं। अपने भक्तों को मुक्ति प्रदान करने की इच्छा भी उन्हें अवतार लेने के लिये प्रेरित करती रही :-

''सुख देने आया , दुःख झेलने आया ,
मैं मनुष्यत्व का नाट्य खेलने आया ।
हंसों को मुक्ता-मुक्ति चुगाने आया ,
भव में नव वैभव प्राप्त कराने आया ।
नर को ईश्वरता प्राप्त करानेआया ।
सन्देश यहां मैं नहीं स्वर्ग का लाया ,
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया ।
अथवा आकर्षण पुण्य भूमि का ऐसा।
अवतरित हुआ मैं,आप उच्चफल जैसा।।''[१]

द्विवेदी जी ने गांधी जी को ईश्वर के रुप में अंकित करके गांधी जी से सत्य, अहिंसा एवं विश्व बंधुत्व की शिक्षा दिलाई है।

इन्होंने स्पष्ट रुप से राम जन्म को निर्गुण का सगुण-साकार रुप कहा है -

''हो गया निर्गुण सगुण साकार है ,
ले लिया अखिलेश ने अवतार है।''[२]

वशिष्ठ के कथनानुसार श्री राम ने भूमिका भार उतारने के लिये ही अवतार लिया था -

''करो भूमि का भार मान्य से लगा तो।''[३]

१- बाल्मीकीय रामायण के इन प्रसंगों में श्री राम के पूर्ण ब्रह्म व भगवान के अवतार होने की बात स्पष्ट हो जाती है -
बालकाण्ड - १५।१६ - २१, २६, ३२। १७।१ - ६ । १८।११ - १४,७६।१७-१६,२४ ।
युद्धकाण्ड - ३५।३४-३६, ११४।६-६, ११६।३१-३२ ।
२- साकेत सर्ग २, पृ०सं० ४३ ।
३- साकेत सर्ग ८, पृ०सं० २१५ ।

श्री राम ने भक्त के प्रति वत्सलता रखने के कारण और इस संसार को सन्मार्ग पर प्रेरित करने के लिये ही तो अवतार ग्रहण किया --

"किसलिये यह खेल प्रभु ने है किया ?
मनुज बनकर मानवी का पय पिया ?
भक्त वत्सलता इसी का नाम है,
और वह लोकेश लीला - धाम है।
पथ दिखाने के लिये संसार को
दूर करने के लिये भू- भार को
सफल करने के लिये जन - दृष्टियां
क्यों न करता वह स्वयं निज सृष्टियां ?[१]

रामानुज - दर्शन के अनुसार रामादि के रूप में ग्रहण किए गए अवतार को विभव कहा जाता है।[२]

गुप्त जी के मस्तिष्क में प्रारम्भ से ही श्री राम के प्रति श्रद्धा के भाव रहे हैं। उनके राम भी मूलत: वाल्मीकि, कालीदास और भवभूति के ही राम हैं। साकेत के 'प्रस्ताविक' में ही श्री राम से इस प्रकार का प्रश्न किया जाता है -

"राम तुम मानव हो ईश्वर नहीं हो क्या ?
विश्व में रमे हुये नहीं सभी कहीं हो क्या ?
तब मैं निरीश्वर हूं ईश्वर क्षमा करें,
तुम न रमो तो मन तुम में रमा करे।"[२]

आपके काव्यों में सत्य, अहिंसा, जैसे सिद्धान्त विशद रूप से विवेचित हुये हैं। महात्मा गान्धी द्वारा प्रतिष्ठित लोक - हित - वाद की व्यापक भूमि पर जिस सर्वोदय - वाद का प्रवर्तन किया गया वही गुप्त जी की सफल लेखनी का साहचर्य प्राप्त करक उनके काव्यों में प्रकाशित हुआ। 'सत्य - धर्म' का

१- साकेत पृ० १८

२- रामाद्यवतारो विभव:" - सर्वदर्शन संग्रह, रामानुज दर्शन अनु० १७

श्रेष्ट भाव भरने वाले श्रीराम के विषय में कविवर की यह उक्ति दृष्टव्य है :-

सत्य - धर्म का श्रेष्ट भाव भरते हुए ,
जन समूह को स्वयं शान्त करते हुए,
चिन्तितातुर वे किसी भांति आगे बढ़े
पहुंचे रथ से प्रथम मनोरथ पर चढ़े ।"[१]

अत: वे पिता के सहन - सत्य को निबाहने हेतु बन को चले गये

"पूज्य पिता के सहन सत्य पर
वार सुधाम्, धरा , धन को ।
चले राम , सीता भी उनके
पीछे चली गहन बन को । "[२]

श्री गुप्त जी का प्रवेश हिन्दी - काव्य जगत में उस समय हुआ जब ब्रजभाषा कविता के सामने खड़ी बोली हिन्दी की कविता उपेक्षित थी । अपने काव्य शिल्प द्वारा उसे अत्यन्त समर्थ बना दिया ।

इनकी कविता में रुप , रस , ध्वनि , गन्ध तथा स्पर्श सभी से सम्बन्धित बिम्ब प्राप्त होते हैं । रुप - बिम्ब का एक उदाहरण देखिये -

दम्पति चौंके पवन मण्डल हिला ,
चंचला सी छिटक छूटि उर्मिला ।

यहां पर तीन रुप बिम्ब विद्यमान है । और मजे की बात तो यह है कि 'हिलना ' क्रिया ने पवन मण्डल को भी आकार प्रदान कर दिया । इन सभी बिम्बों में गति रुपाश्रित की हुई है। चंचला के छूटने , पवन, मण्डल के हिलने या दम्पति के चौंकने में गति का मानस चित्र उभरता है। वस्तु के तीन अथवा रुप का बिम्ब नेत्रों को चमत्कृत कर देता है । ऐसे बिम्ब के सामने बासे कभी तो ठहर नही

१- साकेत पृष्ठ - ११९

२- पन्चवटी - ५

पायीं और कभी ठहरी ही रह जाती हैं, यथा --

जिस भांति विद्युदाम से होती सुशोभित घन घटा ।

सर्वत्र छिटकाने लगा वह समर में शस्त्रच्छटा ।

उस बिम्ब के सामने नेत्र झंप - झंप जाते हैं । अब ऐसा उदाहरण

लीजिये जहां से आंख हटाए नहीं हटती ।

" बौरे महुए थे वहां और आम मौरे थे ।

फूले थे असंख्य फूल ,भौंरे सुध भूले थे ।

आगई थी उष्णता लगों के कल कण्ठों में

गन्ध छागया था मन्द शीतल समीर में ।।

लहरा रहे थे सुन्दर सुनहले ।।

गन्ध बिम्ब का उदाहरण देखिये -

उत्फुल्ल करौंदी कुन्ज वायु रह रहकर ,

करती थी सबको पुलक पूर्ण मद महकर ।

रस सम्बन्धी बिम्ब मैथिलीशरण गुप्त की कविता में विरल हूं । फिर भी ऐसे बिम्बों का अभाव नहीं है। उसके कथन मात्र से ही रस - बिम्ब - रचना नहीं हो जाती , जैसे -

मिलता दरस से ही सुख है परस का,

पार क्या परस के बरसते से रस का ।

ऐसे उदाहरण तो गुप्त जी के काव्य में अनेक हैं , परन्तु जहां रसनेन्द्रिय रस का मानस भोग करती है उन स्थलों को ही सफल रस - बिम्ब का नमूना माना जायेगा । गुप्त जी ने इस प्रकार के सरस बिम्ब भी दिये हैं -

पानी भर आया फूलों के मुख में आज सबेरे ।

हां, गोपा का दूध जमा है ।राहुल मुख में तेरे ।।

अभी तक एक एक विषय के पृथक - पृथक उदाहरण दिये गये । अब एक ऐसा उदाहरण

प्रस्तुत है जिसमें कवि ने अपने कौशल से रस, गन्ध , ध्वनि , रूप तथा स्पर्श से सम्बन्धित बिम्बों को एक माला में गूंथ दिया है -

मैं निज अलिन्द में खड़ी थी सखि एक रात
रिमझिम बूंदें पड़ती थीं घटा छाई थी ,
गमक रहा था केतकी का गन्ध चारों ओर
झिल्ली झनकार यही मेरे मन भाई थी ।
करने लगी मैं अनुकरण स्व नूपुरों से
चंचला थी चमकी घनाली घहराई थी
चौंक देखा मैंने , कोने में खड़े थे प्रिय ,
माई मुख लज्जा उसी छाती में छिपाई थी ।

गुप्त जी का काव्य यद्यपि छायावादी कविता की भांति अप्रस्तुतों की नयनाभिराम प्रदर्शनी नहीं लगता, फिर भी उसमें अप्रस्तुत- योजना ने पर्याप्त सौन्दर्य की वृद्धि की है। मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में लौकिक, अलौकिक तथा संभावित तीनों प्रकार की अप्रस्तुत योजनायें हुई हैं परन्तु लौकिक अप्रस्तुत योजना को ही उन्होंने प्रमुखता दी है ।

एक तरु के विविध सुमनों से खिले ,
पौर जन रहते परस्पर हैं मिले ।

अलौकिक अप्रस्तुत - योजना की भरमार छायावादी कविता में मिलती है । `कामायनी` में श्रद्धा का रूप - वर्णन अलौकिक अप्रस्तुत योजना का सुन्दर उदाहरण है । मैथिलीशरण गुप्त में यत्र तत्र ऐसी योजना हुई है -

मौननमस्कार किया उसने नृपति को ।
तो भी बिम्ब दीख गया स्वच्छ गच में उसे
चांदी के सलिल में ज्यों सोने की कमलिनी
देती थी पुलक न्याय नत हो वरुण को ।

गुप्त जी इस जीवन और जगत के कवि हैं । उनके काव्य में अलौकिक पात्र भी लौकिक

बनकर प्रतिष्ठित हुए हैं। ऐसे कवि का मन भला अलौकिक अप्रस्तुत योजना मे कैसे रम सकता था ? यही कारण है कि उनकी कविता मे लौकिक अथवा लौकिका धारित सम्भावित अप्रस्तुत योजना के उदाहरण ही अधिक मिलते हैं।

भाषा के सम्बन्ध मे गुप्त जी के विचार इस प्रकार हैं - "अपनी प्रान्तीय भाषाओं के विचार से हिन्दी के लिये संस्कृतोन्मुखी होना स्वाभाविक है। बहुत काल तक वह हमारी राष्ट्रभाषा थी। आज भी धर्मभाषा है। उसी मे हमारा अतीत सुरक्षित है। उसका शब्द भण्डार विपुल है और उसमे नये शब्दो की अर्थसंगत रचना की शक्ति भी है।" [१] यही कारण है कि कवि की भाषा आद्यन्त संस्कृतोन्मुखी है। कही कहीं जो क्षेत्रीय (बृज - बुन्देल) प्रयोग मिलते हैं वे खड़ी बोली हिन्दी की व्यापकता के परिचायक हैं। सम्भवत: या तो कवि उन्हे खड़ी बोली से अलग करके नही देखना चाहता था या फिर अनायास ही वे भाषा मे समाविष्ट हो गये हैं। कुछ भी हो, जहां तक संस्कृत या क्षेत्रीय बोलियों (बृज -बुन्देली आदि) के शब्दो का प्रश्न है वे खड़ी बोली मे ग्रहण किये जा सकते हैं, यदि साहित्य मे विशेष प्रभावोत्पादकता के लिये आवश्यक हों किन्तु व्याकरणिक रूपों को उपनाने से सम्बन्धित उदारता खड़ी बोली के व्याकरण के लिये उपयुक्त नही।

गुप्त जी की भाषा की सबसे बड़ी विशेषता उसका प्रारम्भ से ही व्याकरण सम्मत होना है। सामान्यत: उसके काव्य मे व्याकरण सम्बन्धी त्रुटियां नही मिलती है। इस सम्बन्ध मे डा० नगेन्द्र का मत उल्लेखनीय है - 'कवि को खड़ी बोली की प्रकृति का पूर्ण ज्ञान है, दूसरे द्विवेदी जी के चरणों मे दीक्षा लेकर व्याकरण की त्रुटि करना सम्भव नही था। अत: उसकी भाषा सर्वत्र व्याकरण सम्मत है।

१-साहित्य सन्देश (विशेषांक श्री मैथिलीशरण गुप्त) जनवरी - फरवरी १९६५ पृ० २६०

यहाँ इस बात पर आपत्ति हो सकती है कि "गुप्त जी की भाषा सर्वत्र व्याकरण सम्मत है। वस्तुत: कुछ प्रयोग ऐसे मिलजाते हैं जो व्याकरण सम्मत नही है, यद्यपि इस प्रकार के प्रयोग अत्यल्प एवं अपवाद स्वरूप ही है। कुछ व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध प्रयोग निम्नलिखित हैं - -

१- स्त्रीलिंग के स्थान पर पुल्लिंग मे - आत्मा [२] और देह [३]

२- पुल्लिंग के स्थान पर स्त्रीलिंग मे - व्यक्ति [४], देवता, [५] बरस [६]

३- पुल्लिंग तत्सम अकारान्त 'राजा' शब्द का तिर्यक बहुवचन रूप - राजो [७] (= राजाओं) ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि द्विवेदी जी और गुप्त जी दोनो ने राष्ट्र मे नव चेतना पैदा की है।

७ ब- माखन लाल चतुर्वेदी और सोहन लाल द्विवेदी -

पं० माखन लाल चतुर्वेदी के साहित्य जीवन के विकास मे उनके प्रारम्भिक जीवन की विशेष भूमिका रही है। अपनी बुआ के सरस वैष्णव गीतों से प्रेरणा लेकर उन्होंने कुछ शरारती रचनाएं की इन्ही रचनाओं मे एक दिन एक गीत फूट पड़ा - -

श्याम सुन्दर मन बस गयो रे।

बुआ से प्रेरणा मिली और इस तरह के गीत उन्होंने रचना प्रारम्भ कर दिये। इन गीतो की बुनावट मे विन्ध्याचल, सतपुड़ा और नर्मदा की छाया मे फैले हुये होशंगाबाद, बम्बई, सिवनी, हरदा, खिड़गांव और मनसगांव आदि तक के सम्पूर्ण भूभाग के प्रकृति सौन्दर्य का अपना हिस्सा रहा है। [१]

१- साकेत एक अध्ययन पृ० २ व १
२- अजलि और अर्ध्य पृ० -३६
३- अजलि और अर्ध्य पृ० २६
४- अजित पृ० ६८
५- नहुष, पृ०-३६।
६- साकेत, पृ०-२८८।
७- द्वापर ,पृ०-१५८

है ।[1] प्रकृति से माखन लाल जी के बेहद प्रगाढ़ सम्बन्धों की जानकारी बहुत कम लोगों को है । प्रकृति से बढ़कर वैष्णव कौन हो सकता है , उसका अपना कितना कुछ है, उसका अपना क्या है । जिस धरती से वह जन्म लेती है उसी पर सम्पूर्णतः न्योछावर हो जाती है (गोविन्द, तुम्हारी ही तो वस्तु है और तुम्हें ही समर्पित है) । माखन लाल जी के समर्पण को उनके बलिदान को प्रकृति की इसी पृष्ठभूमि पर रखकर परखा जा सकता है ।चतुर्वेदी के परिवार में गरीबी बहुत थी ,स्वाभिमान भीगरीबी के टक्कर का था अतः एक बेहद कठिन जिन्दगी माखन लाल जी को जीनी पड़ी । वे चाहकर भी अधिक न पढ़ सके और मात्र १६-१७ की वय में अध्यापक बन गये । भादों गांव की अध्यापकी एकजी में मिली थी । इस गांव की नदी (गंजाल) के तटों पर हमारे कवि ने द्विवेदी जी की तरह बसन्त का स्वागत बसन्तमय होकर किया -

अति मदमाते दोऊ कुल नदिया के बहै ,
फूले -फूले वृक्षण की लोनी घटा छाई है ।
धन्य गंजाल, दोऊ पाल हैं निहाल,
आज तेरे घर प्यारे ऋतुराज की अवाई है ।
(१६०४- १६०५)

और इसी वर्ष १६०५ में माखनलाल जी को नार्मल ट्रेनिंग लेने के लिये जबलपुर जाना पड़ा । जबलपुर प्रवास में वे कुछ बंगाली क्रान्तिकारियों के सम्पर्क में आये। इन लोगों के सानिध्य में उन्होंने भारत की पराधीनता का वास्तविक साक्षात्कार किया । इनकी पिस्तौल, गीता और आनन्द मठ (वन्देमातरम्) वाली जिन्दगी ने उन्हें अभिभूत कर दिया । विशेष बात यह थी कि ये सभी आस्तिक थे और वैष्णव थे । भारत को स्वतन्त्र और खुशहाल देखना उनका सबसे बड़ा लक्ष्य था । इनके नेता देवस्कर नामक महाराष्ट्रीयन व्यक्ति थे । माखन लाल जी ने इनके दल में दीक्षा

१- इस तरह जंगल, नदी, पहाड़ चढ़ाव, उतार बोगदे के लड़ाई झगड़े, ये मेरे जीवन के बहुत नजदीक रहे हैं और एक आधी जिन्दगी का मेरा इनका सम्बन्ध तथा प्रभाव दूसरी आधी जिन्दगी में न तो टूट पाया और न कम हो पाया ।
(मा०ला०च०)

प्राप्त कर ली । एक प्रचण्ड विद्रोह की चेतना उनमें सदा सदा के लिये जागृत हो गई । वैष्णवत्व (गीत) प्रकृति और विद्रोह और स्वाधीनता के लिये अशेष समर्पण, इन सूत्रों ने एक नये माखन लाल जी को जन्म दिया । माखन लाल जी के प्रारम्भ के काव्य को समझने के लिये इन सूत्रों का समन्वयात्मक अवबोध आवश्यक है । यही नहीं, उनके समस्त साहित्य को समझने के लिये भी इसी की जरुरत है ।

गीता के 'यदायदा हि धर्मस्य 'को इस कवि के किशोर मन ने बहुत गम्भीरता से गृहण किया । भारत की पराधीनता से बढ़कर ग्लानि की कौन सी अवस्था हो सकती है । अत: इस देश के अभ्युत्थान के लिये किसी कृष्ण का अवतरण होना ही चाहिये , किसी राम को आना चाहिये -

''मातृ-भू कौशिल्या की गोद आज हरी,हरि हरी हो उठे ,
'कष्ट में लेता हूं अवतार' तुम्हारी बात खरी हो उठे ।
नगारों से नगरों में नाथ मुबारक बादी सी सुन पड़े ,,१
कंटीली जंजीरे कट जायें जरा आजादी सी सुन पड़े ।

स्वतन्त्रता के लक्ष्य के साथ अभिन्न होते ही माखन लाल जी के भक्ति गीत और प्रकृति गीत इस उदान्त लक्ष्य के अनुकूल रुपान्तरित हो गये । १९१२ ही में इस कवि को स्पष्ट हो उठा -

''उनके हृदय में चाह है ,
आपने हृदय में आह है ।
कुछ भी करें तो शेष बस ,
यह बेड़ियों की राह है ।

अब बेड़ियों की राह के तरफ जीवन यात्रा शुरु हो गई थी । लोकमान्य तिलक और महात्मा गान्धी में माखन लाल जी को गीता की वाणी फलीभूत होती

१- राम नवमी, माता १९०६ ।

दिखाई पड़ी । लोकनाथ की मृत्यु पर वे चीख उठे -

" क्यों आर्य देश के तिलक चले ,
क्यों कमजोरों के जोर चले ।
तुम तो सहसा उस ओर चले ,
यह भारत मां किस ओर चले ।

+ + + +

दुखियों के जीवन लौट पड़ो,
मेरे घन गर्जन लौट पड़ो ।
जसुदा के मोहन लौट पड़ो ,
सित कालीमर्दन लौट पड़ो । "[1]

१६२१ में माखन लाल चतुर्वेदी स्वयं जेल में थे । उन पर देश द्रोह का आरोप लगाया गया था , क्योंकि १६२० में रतौना कसाईखाने की ब्रिटिश शासन की योजना को वे अपने तेजस्वी पत्र कर्मवीर के जरिये ध्वस्त कर चुके थे । शासन ने अन्यायपूर्वक उसी का बदला लिया था । कानपुर से प्रताप में उस अन्याय के विरोध में स्वयं गणेश शंकर विद्यार्थी ने अग्रलेख लिखा और 'यंग इण्डिया' में गांधी जी ने अपनी टिप्पणी की , मध्य प्रदेश में तो भूचाल - सा ही आ गया पर माखन लाल ने अत्यन्त तटस्थ सौम्य भाव से अपनी तेजस्विता को इन शाश्वत स्वरों में अभिव्यंजना दी -

मुझे तोड़ लेना बनमाली , उस पथ पर देना तुम फेंक ,
मातृ भूमि पर शीश चढ़ाने , जिस पथ जावें वीर अनेक ।[2]

माखनलाल चतुर्वेदी ने अपनी विद्रोही कविता में जिस विद्रोह को शब्द दिये हैं वह एक उदात्त समर्पित अवस्था का तेजस्वी आकलन ही है । इसमें वृन्त ही विद्रोही है । भूमि से वह जन्म लेता है और उसकी आकर्षण शक्ति के विरुद्ध

१- हिम किरीटिनी ,१६२० ।
२- बिलासपुर जेल १८ फरवरी, १६२२, युगचरण ।

ऊपर उठता है और जब उसमें फूल और फल आते हैं तब वह उन्हें भूमि पर ही न्यौछावर कर देता है। वह अपना मस्तक कभी नहीं झुकाता। समस्त चुनौतियों को झेलता हुआ वह अडिग रहता है।

''फल फेंकें, कभी फूल भी फेंकें हम भूपर,
किन्तु मही पर अपना मस्तक किये रहेंगे ऊपर।''[१]

माखनलाल जी का मस्तक कभी झुका नहीं। जिसने उनके काव्य का आस्वादन किया वह भी उनके साथ हो गया, वह भी फांसी के तख्ते पर हंसते हंसते झूल गया। भगत सिंह और चन्द्र शेखर आजाद अथवा काकोरी केस के बन्दियों में माखनलाल जी की 'पुष्प की अभिलाषा' जैसी रचनाओं की लोकप्रियता अकारण न थी। किन्तु यही सब न था। स्वतन्त्रता के समानान्तर जो शोषण चक्र इस देश में चल रहा था उसका भी माखन लाल जी ने पूरी ताकत से विरोध किया। भूख और फाके मस्ती की जिन्दगी इस कवि ने भी बितायी थी। बचपन तो गहरे आर्थिक संकटों की ज्वाला में दग्ध होता ही रहा था। कृषकों की जिन्दगी से इस कवि ने गहरा तादात्म्य अनुभव किया था। 'कृष्णार्जुन युद्ध' नाटक (१९१६) में रूस की क्रान्ति के भी काफी पहले, शोषण हीन समाज का चित्र प्रस्तुत कर उसने सबको आश्चर्य चकित कर दिया था। कवि के लिये स्वतन्त्रता का विषय अर्थ था ताकि वे पराधीनोत्तर नेतृत्व से यह कह सके -

''तोड़ अमीरों के मनसूबे गिन न दिनों की घड़ियां,
बुला रही है तुम्हें देश की कोटि कोटि झोपड़ियां।''[२]

भारत के स्वतन्त्र होने पर भी उनकी यह आवाज मंद नहीं की जा सकी। आजादी के पहले श्रमिकों और कृषकों की जिन्दगी ने उन्हें दहला रखा था। यह

१- (१९३२) हिमकिरीटिनी (बुरहान पुर के सुप्रसिद्ध स्वतन्त्रता सेनानी श्री जगन्नाथ हकीम के यहां लिखी गई)

२- युगचरण/ १५ अगस्त ४७।४७

दहलाहट दर्जनों रचनाओं में है, गद्य में है पद्य में है किन्तु 'क्रन्दन' शीर्षक कविता में यह पाठक की जमीन ही हिला देती है। वह क्या कहे जब किसी खेतिहर की आवाज में सुनता है -

> "खा रहे हो अन्न ?
> मरणासन्न मेरी हड्डियों का स्वाद कैसा लग रहा है ?
>
> \+ \+ \+ \+
>
> चूसते हो फल ?
> संभालो , रक्त मेरा भर रहा है सब फलों में ,
> और वह भी भर रहा है ,
> जो भरा करता अभागे इन वनों में ,
> कन्द मत खोदो
> हैं गड़े बच्चे उन्हीं के पास भगवन ,
> वायु का स्वर है ?सिसकियां हैं हमारी
> और क्रन्दन ।"[१]

स्वतन्त्रता का शुभागमन इसीलिये हुआ था कि ऐसे प्रश्नों के उत्तर दिये जा सके। इस खण्ड की कवितायें 'श्याम सुन्दर मन बस गयो रे' (१९०६) से लेकर १९५६ के मध्य की है। देश की स्वतन्त्रता नौ वर्षों के लगभग की हो चुकी है , देश आगे बढ़ता हुआ दिखाई दे रहा है पर वे लोग पीछे फेंक दिये गये हैं जिनके त्याग और तप पर देश ने स्वतन्त्रता हासिल की थी। मुनाफाखोरों , पद - लोलुपों और प्रवंचकों ने देश के त्यागियों और मनीषियों को पीछे फेंक दिया। सब चुप है सब तरफ सन्नाटा है पर माखन लाल जी की बूढ़ी आवाज बूढ़ी नहीं है। वह चीत्कार कर रही है -

> "तुम बलात्कार सायुज्य राग के मेरे ,
> तुम अरे मुनाफाखोर त्याग के मेरे ।

१- खण्डवा युगचरण १९४०/५६

ब्रिटिशों के युग में तुमने स्वर्ण समेटा,
अब बापू की यादों अमरत्व लपेटा ।
गांधी युग की कुरबानी दुनियां देखे ,
कुछ हुआ नहीं हो भले तुम्हारे लेखे ।"[१]

माखन लाल चतुर्वेदी की भांति आलोच्य कवि ने भी भूमिका निभाई है उनकी यह वाणी 'जिनका श्रम है उनकी धरती' इस बात का प्रतीक है कि कवि समान वाद लाकर पृथ्वी को स्वर्ग बनाना चाहता है ।

७-६- **सोहन लाल द्विवेदी और दिनकर**

दिनकर पौरुष के चारण हैं और सोहन लाल गांधी वादी एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण के कवि दोनों हैं । फलत: दोनों के काव्य-स्वर में अन्तर आना स्वाभाविक है । किन्तु दोनों के काव्य में नहीं । दोनों ही युग-चेतना के समर्थ कवि हैं । युग के विकास के साथ इनके काव्य भी विकसित हुये हैं । दोनों ही रचनाकारों के काव्य का विकास युग से प्रभावित है ।

राज्य की उत्पत्ति क्यों और कैसे हुई - इस समस्या पर कवि ने 'कुरुक्षेत्र' में संक्षेप में विचार किया है । कवि के अनुसार प्रकृति ने समान रुप से मनुष्य को जीने योग्य सुविधायें दी हैं । अत: मनुष्य को सारे सुखों का विभाजन भी समान रुप से ही करना चाहिये । इतिहास साक्षी है कि जब तक मनुष्यों में व्यक्तिगत स्वार्थ की भावना इतनी तीव्र नहीं थी तब मानव समाज सुखी रहकर शान्तिपूर्ण जीवन यापन करता था । सब लोग समष्टि सूत्र में बंधे थे । व्यक्ति का नैतिक स्तर ऊंचा था । वह किसी कानून के भय से नियमों का पालन

१- १६५६-५७ ।

नहीं करता था । किन्तु धीरे धीरे व्यक्तिगत स्वार्थ प्रमुख होता गया । फलतः समाज में वैषम्य अनाचार दुख आदि फैलने लगे । समाज में सर्वत्र उद्दंडता आने लगी । दिनकर के मत से इसी दुःस्थिति में समाज ने राज सत्ता का सृजन किया । उसे राजा की आवश्यकता हुई जिसके दण्ड भय से लोग सुसंबद्ध रहकर जीना सीखे कवि की ये पंक्तियां देखिये -

"दे न सका नर को जो सुख भाग प्रीति से , नय से ,
आज दे रही वही भाग राज दण्ड के भय से ।
अवहेला कर सत्य, न्याय के शीतल उद्गारों की ,
समझ रहा नर आज भली विधि भाषा तलवारोंकी।।"[1]

किन्तु कवि ऐसी दुःस्थिति से उत्पन्न राज सत्ता को श्लाघनीय नहीं मानता है । कवि के विचार से स्वयं का बनाया हुआ यह बन्धन इतना प्रचण्ड हो जाता है कि मनुष्य उसमें बुरी तरह से जकड़ जाता है । कवि इस प्रकार के बन्धन को मानवता की ग्लानि और संस्कृति का कलंक कहता है -

"राजतन्त्र द्योतक है नर की मलिन निहीन प्रवृत्ति का ,
मानवता की ग्लानि और कुत्सित कलंक संस्कृति का ।
आया था यह संगति रोकने को केवल दुर्गुण की ,
नहीं बांधने को सीमा उन्मुक्त पुरुष के गुण की ।
सो देखो अब दिशा विचारों की भी निर्धारित है ,
राजधर्म से परे कभी क्या चिन्तन भी मारित है ।"[2]

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत ने स्वशासन हेतु प्रजातन्त्र की स्थापना की । दिनकर ने भारतीय जनता को जनतन्त्र बसाने से पहले ही जागृत करना चाहा जिससे वह अपने दायित्व को सम्हाल सके । उनकी ये पंक्तियां दृष्टव्य हैं -

"जनतन्त्र बसाने के पहले
जन को जागृत करना होगा ।"[3]

१- कुरुक्षेत्र , पृ०सं० ११५ ।
२- कुरुक्षेत्र,पृ० सं० ६५ ।
३- धूप और धुआं , पृ०सं०-६५ ।

प्रथम जनतन्त्र के अवसर पर कवि ने समस्त भारतीय जनता के लिये सिंहासन सजवाया । जनता का उस पर अभिषेक करना चाहा -

''सबसे विराट जनतन्त्र जगत का आ पहुंचा ,
तैंतीस कोटि हित सिंहासन तैयार करो ।
अभिषेक आज राजा का नहीं प्रजा का है,
तैंतीस कोटि जनता के सिर पर मुकुट धरो ।''[१]

कवि ने जनता के स्कंधों पर यह उत्तरदायित्व रखा कि वह शासन के यंत्रों पर अनुशासन रखे अन्यथा पूर्वावस्था की भांति यह जनतन्त्र भी दूषित हो जायेगा और समाज को राज्यविहीन होना पड़ेगा ।

''शासन के यंत्रों पर रखो आंख कड़ी ,
छिपे अगर हों दोष उन्हें खोजते चलो ,
प्रजातन्त्र का क्षीर प्रजा की वाणी है,
जो कुछ है बोलना अभय बोलते चलो ।''[२]

प्रजातन्त्र में विरोधी पार्टियों की भूमिका बड़ा महत्वपूर्ण होती है । शासक वर्ग उसके आतंक से उच्छृंखल नहीं हो पाते हैं , मनमानी नहीं कर पाते हैं । कवि ने प्रजातन्त्र के इस महत्त्व को भी समझा तथा अपने काव्य में उसे भी वाणी दी-

''प्रजातन्त्र का वह जन असली मीत ,
सदा टोकता रहता जो शासन को,
जनसत्ता का वह गालो संगीत ,
जो विरोधियों के मुख से भरती है ।''[३]

भारत में स्थापित प्रजातन्त्र कालान्तर में अपने लक्ष्यों की पूर्ति न कर सका । प्राकृतिक नियम के अनुसार राज्य की उस प्रजातांत्रिक व्यवस्था में भी दोष आने लगे । शोषण , अन्याय और स्वार्थ का भाव उभरने लगा । सत्ताधारियों का स्वार्थ प्रबल हो उठा । वे अपने को निरंकुश समझने लगे ।समाज का हित उनके

१- धूप और धुंआ , पृ०सं० ७० (जनतन्त्र का जन्म)
२- नये सुभाषित, पृ०सं० २१ ।
३- नये सुभाषित, पृ०सं० २३ ।

समता नगण्य हो गया । चुनाव के दौरों में जिन तथा कथित समाजसेवी नेताओं ने जनता के दुख दैन्य को दूर करने के बड़े बड़े आश्वासन दिये थे , वे भी बदल गये । उनके आदर्शों का लोप हो गया । वे जन-सेवक के पद से गिर गये । एक ऐसे ही नेता का चित्र प्रस्तुत करते हुये कवि ने लिखा है -

"हो गया एक नेता मैं भी तो बंधु सुनो ,
मैं भारत के रेशमी नगर में रहता हूं ।
जनता तो चट्टानों का बोझ सहा करती,
मैं चांदनियों का बोझ किसी विधि सहता हूं ।"[१]

राज सत्ता के बदलते हुये रूपों पर दिनकर ने 'दिल्ली' कविता में बड़े व्यंग्य किये हैं । दिल्ली के माध्यम से कवि ने शासक वर्ग को काफी खरीखोटी सुनायी है । 'दिल्ली' काव्य-संग्रह में स्वतन्त्रता से पूर्व और पश्चात दोनों ही शासक वर्गों के लिये रचित व्यंग्यात्मक कविताओं का संकलन है । इसमें विदेशी शासन तथा असफल स्व-शासन दोनों की आलोचना की गयी है । १६५२ में रचित 'हक की पुकार' कविता में कवि ने शासकों पर बड़ा ही तीखा प्रहार किया है -

"ओ बुझी हुई ज्वालाओं की ,
राखों के ढेर सुने जाओ ,
सोने के चंगुल मढ़े हुये ,
गद्दी के शेर सुने जाओ ।"[२]

इसी प्रकार द्विवेदी जी ने भी अपनी रचना 'ओ लाल किले पर झण्डा फहराने वालों , पहले जवाब दो मेरे चन्द सवालों का ।' में शासक वर्ग को फटकारा है ।

भारत का प्रजातन्त्र शनैः शनैः अराजक तन्त्र बनने लगा । अव्यवस्था बढ़ने लगी जिसे दिनकर ने 'एनार्की घोषित कर दिया'[३] अपने आर्थिक दृष्टिकोण में

१- दिल्ली भारत का यह रेशमी नगर, पृ०सं० १६ ।
२- दिल्ली, पृ० १६ ।
३- परशुराम की प्रतीक्षा , पृ०सं० -६५ ।

दिनकर बहुत कुछ मार्क्सवाद के निकट पड़ते हैं। 'नील कुसुम' की कांटों का गीत' तथा 'आत्मा की आंखें' की 'कुंकुर्वां' शीर्षक कविताओं में कवि के इसी भाव की परिपुष्टि हुई है। किन्तु, मार्क्सवाद के प्रति कवि का यह आकर्षण भाव शाश्वत नहीं है। कवि की आर्थिक चेतना भारतीय समाज की निधी चेतना है। कवि का सिद्धान्त है-

> "ध्येय विपुल धन नहीं ध्येय तो सचमुच निर्धनता है।
>
> \+ + + +
>
> निर्धन का धन बढ़े घटे धनवान बात समुचित है।[1]

दिनकर का युग आर्थिक वैषम्य का युग है। स्वतन्त्रता के बाद भी यह वैषम्य मिट नहीं सका। दिनकर ने स्वतन्त्रता के पूर्व भी जहां कहीं इस वैषम्य का चित्रण किया है वहां समाज अपने यथार्थ रूप में प्रकट हुआ है। 'रेणुका' और 'हुंकार' का कवि, द्विवेदी जी की भांति जब समाज की इस आर्थिक विषमता से पीड़ित मानव को देखता है तो उसकी अन्तरात्मा चीख उठती है। उसका कवि हृदय व्यथित होकर आक्रोश से भर उठता है। वह देखता है कि राम और कृष्ण के पुनीत देश भारत में 'कन्याओं' के लज्जा वसन बेंच कर ऋण का व्याज चुकाया जाता है। अमीरों के कुत्ते दूध दही से नहाते हैं और गरीबों के लाड़ले भूख से बिलबिलाते हैं, मां की हड्डी से चिपक चिपक कर जाड़े की रात काटते हैं। भारतीय समाज की यह आर्थिक विषमता पराकाष्ठा पर है। स्वतन्त्र भारत का रेशमी नगर 'दिल्ली' वैभव की दीवानी बनी हुई है और दूसरी ओर कृषकों और मजदूरों के बच्चे दूध-२ चिल्ला रहे हैं। उनके घर में दोनों समय चूल्हे भी नहीं जलते हैं।

दोनों ही कवियों ने युग की सापेक्षता में काव्य रचनाएं की हैं।

१- कोयला और कवित्व, पृ०सं० -४५।

इनकी काव्य रचना का युग राष्ट्रीय जागरण का युग था । राजनीति के क्षेत्र में उस समय गांधी वाद और मार्क्सवाद का विकास हो रहा था । फलत: साहित्य और समाज के क्षेत्र में भी ये दोनों धारायें प्रवहमान होने लगीं थीं । छायावाद गांधी दर्शन से और प्रगतिवाद मार्क्सदर्शन से प्रभावित है । गांधी और मार्क्स के विचारों से द्विवेदी एवं दिनकर दोनों परिचित थे । ये दोनों ही धारायें युग की प्रमुख चेतना बन गई थीं । इन दोनों धाराओं ने द्विवेदी और दिनकर दोनों को प्रभावित किया है । दोनों ने अपने काव्य में तत्कालीन युग की प्रचलित चेतनाओं को स्वर दिया है । अत: इसी आधार पर तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है -

दिनकर अपनी आरम्भिक रचनाओं में गांधीवाद से अधिक प्रभावित नहीं रहे हैं । उनकी भावना सदैव क्रान्तिकारी युवकों के साथ रही है । वे गांधी के सत्य और अहिंसा से देश में स्वतन्त्रता लाने के पक्ष में नहीं है । गांधी के प्रति उनका सर्वाधिक आकर्षण नोआ खाली में बापू के अदम्य साहस-प्रदर्शन से ही हुआ था । इसी प्रकार १६३५ में जब पेशावर गोली काण्ड में गांधी के प्रभाव स्वरुप लोगों ने अहिंसात्मक रुख अपनाया तो दिनकर भी उससे प्रभावित हुये । फिर भी कवि ने बापू की पूजा रोली और अक्षत से न करके 'अंगारों' से की है । उन्होंने स्वयं समझा कि उनके 'अंगारों' से बापू की महिमा ऊपर है । यह दूसरी बात है कि चीन-युद्ध के प्रसंग में वे गांधी वाद के आलोचक बन गये । इसे भी हम युग चेतना का ही प्रभाव कह सकते हैं ।

देश की स्वतन्त्रता लाने के लिये द्विवेदी जी ने गांधी वादी रंगीन चादरें ओढ़कर देशवासियों को जाग्रत किया है । उन्हें सर्वत्र दु:ख दैन्य से त्रस्त भारतीयों का दारुण दृश्य दिखाई पड़ा । अत: नेहरु चाचा एवं बच्चों के बापू एवं भैरवी में उन्होंने इस तथ्य की ओर संकेत किया है ।

निष्कर्ष यह कि सोहन लाल द्विवेदी और दिनकर दोनों के ही काव्य पर

गांधी वाद का प्रभाव है। कवि हम 'बापू' के प्रति सदैव निष्ठावान रहे हैं, किन्तु किन्हीं किन्हीं स्थलों पर दिनकर जी गांधीवाद के आलोचक हो जाते हैं। वे राष्ट्रीय चेतना के उन्मुक्त गायक हैं। राष्ट्रको गौरव प्रदान करने वाली प्रत्येक विचारधारा के वे प्रशंसक रहे हैं। दिनकर मार्क्सवादी सिद्धान्तों से परिचित हैं परन्तु वे यह निर्णय करने में सर्वथा असमर्थ रहते हैं कि गांधी वाद और मार्क्सवाद में से किसे अपनाया जाये अत: कभी वे मार्क्सवाद और कभी गांधी वाद और कभी दोनों के समन्वय का विचित्र प्रयास करते दिखाई देते हैं। किन्तु द्विवेदी जी ने गांधीवाद को विशेष महत्व दिया है। स्वातन्त्र्योत्तर युग की काव्य रचना में द्विवेदी और दिनकर का दिशा परिवर्त भी एक जैसा है। युग कवि द्विवेदी ने भैरवी में भक्ति एवं सामाजिक रहन सहन पर टिप्पणी करते हुये विश्व को किसान के ही कन्धों पर आधारित माना है। वहीं दूसरी तरफ दिनकर की वैभव की दीवानी दिल्ली ने जब उनके लिये ऐश्वर्य रूपी दूध का प्रबन्ध करा दिया तो वे 'रसवंती' के आंचल से मुंह ढककर 'उर्वशी' की गोद में विश्राम लेने लगे। जीवन के गायक दिनकर 'शुद्ध कविता की खोज' करने लगे। किन्तु परशुराम की प्रतीक्षा 'में उन्हें पुन: युग ने जगाया और वे युग चारण होकर शंख ध्वनि कर उठे। द्विवेदी और दिनकर का यह साम्य- समस्त काव्य विकास की दृष्टि से दोनों को प्रबल युग कवि घोषित करता है। विचारधारा में दोनों ही कवि एक ही केन्द्र बिन्दु पर आ मिले हैं।

५-

अन्य कवि और सोहन लाल द्विवेदी ('नवीन')

नवीन के काव्य की मूल प्रवृत्तियां हैं - राष्ट्र प्रेम और श्रृंगार। द्विवेदी के काव्य की भी ये दो मूल वृत्तियां हैं। परन्तु दोनों के श्रृंगार परक काव्य में बहुत अन्तर है। दोनों के सौन्दर्य बोध में भी असमानता है। एक संयोग श्रृंगार का चितेरा है और दूसरा वियोग का। हां राष्ट्रीयता की दृष्टि से दोनों ही युग चेतना के प्रबल आख्याता कवि हैं। अत: दोनों को राष्ट्रीयता चेतना प्रधान कवि कहा जा सकता है।

इन दोनों की रचनाओं में युग-चेतना के स्पष्ट चित्र उभरे हैं।

असहयोग आन्दोलन के समय नवीन जी ने अनेक जागरण एवं अभियान गीत लिखे।[१] द्विवेदी का समस्त राष्ट्रीय साहित्य अभियान गीत ही है। दोनों ही कवियों के इन गीतों में युग के प्रतिबिम्ब हैं। १९४२ की क्रान्ति के समय नवीन जी ने अनेक कवितायें लिखीं जिनमें 'मेरे जननायक की वाणी का'[२] विशेष महत्त्व है। क्रान्ति के इन संवेदनशील क्षणों में कवि ने जागृति के गीत गाये। जनता को पराधीनता की श्रृंखलायें तोड़ने को उद्यत किया।[३] 'ओ तू मेरे प्यारे जवान'[४] में कवि ने संघर्ष के लिये जवानी को सम्बोधित किया है। दूसरी ओर द्विवेदी जी ने 'भैरवी' प्रभाती आदि के गीतों में भारतीय जनता को क्रान्ति के लिये तैयार होनेमें योगदान किया है। वस्तुतः दोनों ही कवियों ने इन अभियान गीतों में जनमानस को प्रतिबिम्बित किया है।

कवि द्वय ने राष्ट्रीय राजनीतिक स्थिति के साथ-२ सामाजिक तथा आर्थिक दुर्दशा का चित्रांकन किया है। द्विवेदी जी की और नवीन जी ने कृषक तथा श्रमिकों की दुर्दशा का अनुभव किया और उन्हें जागृत करने का प्रयास किया।[५] समाज की दैन्यावस्था से पीड़ित नवीन जी ने नंगे-भूखों का यह गाना शीर्षक कविता लिखी।[६] उन्होने येन-केन प्रकारेण जी ने वाले कृषक और मजदूर की दुर्दशा का बड़ा ही करुण चित्र अंकित किया है -

''जिनके हाथों मे हल बक्खर,
जिनके हाथों मे घन है।
जिनके हाथों में हंसिया है,
वे भूखे हैं निर्धन हैं।''[७]

१- रामराज्य - १ जून १९४५, पृ०सं० ६।
२- प्रलयंकर , पृ०सं० ४१।
३- वही, पृ०सं० ४५।
४- वही, छठी कविता।
५- मैं इनसे मिला - दूसरी किश्त पृष्ठ ५४।
६- विशाल भारत कस्त्वं कों ह्मम्, पृ०सं० १९।
७- मैं इनसे मिला दूसरी किश्त पृ०सं० ५४।

द्विवेदी जी की 'गांवों में' शीर्षक कविता के दारुण भाव और दयनीय चित्रों से इस चित्र का करुण भाव कम हृदय विदारक नहीं है। ठीक इसी प्रकार नवीन जी ने 'जूठे-पत्ते' [१] कविता में युग के यथार्थ को अंकित कर युगकवि होने का प्रमाण-पत्र अर्जित किया है। निष्कर्ष यह कि द्विवेदी जी की तरह नवीन जी के काव्य में भी अपने समय की दयनीय दशा का यथार्थांकन हुआ है।

नवीन जी के स्वामी दयानन्द सरस्वती,[२] गणेश शंकर विद्यार्थी[३], तिलक,[४] गांधी[५] आदि युग पुरुषों की प्रशस्ति गायी है। गांधी के ऋण को स्वीकार करते हुये स्वयं कवि ने लिखा है -"मैं लक्षाधिक नारी - नरों में एक हूं जिनका जीवन गांधी रूपी आकाश के तले पनपा। गांधी रूपी सूर्य के ताप से उदग्रीव हुआ। गांधी रूपी धरित्री पर टिका और गांधी रूपी मेघ धारा से सरस हुआ।[६] इस प्रकार नवीन ने जवाहर लाल की प्रशस्ति गायी।[७] कवि द्विवेदी ने भी युग पुरुषों में गांधी, जवाहर, मालवीय, इन्दिरा, आदि महान पुरुषों की प्रशस्ति गायी है। इस दृष्टि से दोनों कवियों में पूर्ण साम्य है।

राष्ट्रीय गीतों से तात्पर्य क्रान्तिकारी गीतों से है। जिनमें कवि ने क्रान्ति का आवाहन किया है। नवीन जी ने 'प्रलयंकर की क्रान्ति' और विषपान शीर्षक कविता में राष्ट्रीय उत्थान का स्वर ऊंचा किया है। क्रान्ति का आवाहन करते हुये कवि लिखता है -

"आओ क्रान्ति बलाये ले लूं,
अनाहूत आ गयी भली।
वास करो मेरे घर आंगन,
विचरो मेरी गली-गली।
सड़ी गली परिपाटी मेरी,
उसे भस्म तुम कर जाओ।"[८]

१- मैं इनसे मिला दूसरी किश्त पृ०सं०-५४
२- कुंकुम - ऋषि दयानन्द की पुण्य स्मृति में - पृ०सं० ४१।
३- प्राणार्पण - काव्य।
४- कहा मेरा साप्ताहिक प्रताप-तिलक स्मृत अंक ६ अगस्त, १९२०, पृ०सं० १०
५- दीप निर्वाण साप्ताहिक प्रताप -६ दिसम्बर, १९२०, पृ०सं० ८।
६- गांधी अभिनन्दन ग्रन्थ पृ०सं० २१।
७- महात्मा गांधी गांधी दर्शन, भूमिका, पृ०सं० १।
८- प्रलयंकर विषपान - २८वीं कविता।

प्रस्तुत गीत में क्रान्ति का आवाहन 'हुंकार' के गीतों की तरह है तथा पुरातनवादी रूढ़ियों को नष्ट करने की कामना भी । नवीन जी की क्रान्ति आवाहिका कविताओं के स्वरों में शोले बरस रहे हैं । उनमें विद्रोह की आग है, विप्लव की गर्जना है और उस गर्जना से पर्वत तथा सागर तक दहल उठते हैं ।

"दुर्लभ रणचण्डी चेत उठे,
कर महाप्रलय संकेत उठे ।
सर्वस्व नाश का रुद्र रूप,
नव नव निर्माण समेट उठे ।"[१]

नवीन जी की इन्हीं उग्रवादी कविताओं के आधार पर आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने 'दु:स्साहसिकता'[२] तथा लक्ष्मीकांत वर्मा ने अतिसाहसिकता[३] विशेषण से उन्हें विभूषित किया है । नवीन जी की ये कवितायें द्विवेदी की 'विप्लव गीत' शीर्षक कविता के समकक्ष रखी जा सकती है -

"रवि गिरने दे, शशि गिरने दे,
गिरने दे, तारक सारे,
अचल हिमांचल चल होने दे,
जलधि खौलकर फूंकारे ।"[४]

द्विवेदी जी ने सूर्य और चन्द्रमा को पृथ्वी पर उतर आने की धमकी दी है । नवीन जी की कविता 'विप्लव गायन' जो प्रलयंकर तथा कुंकुम दोनों में संग्रहीत है । द्विवेदी की कविता की तरह बहुचर्चित है । तात्पर्य यह है कि क्रान्ति गीतों की स्वतन्त्र रचना में कवि द्वय समर्थ एवं सफल है । अपने युग के युवा वर्ग की विद्रोहाग्नि से दोनों की कवितायें भरी पड़ी हैं ।

स्वातंत्र्योत्तर युगीन काव्य - रचना में द्विवेदी की तरह नवीन जी भी विश्व मानवतावाद से प्रभावित हुये हैं ।

१- प्रलयंकर गरजे मेरे सागर पहाड़- शी कविता ।
२- आचार्य चतुरसेन शास्त्री - हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास, पृ०सं०६६६ ।
३- डा०लक्ष्मीकान्त वर्मा-हिन्दी कविता के प्रतिमान प्रथम खण्ड-ऐतिहासिक,पृष्ठ भूमि,१५।
४- भैरवी सं० चतुर्थ, पृ०सं० १३० ।

डा० नगेन्द्र ने इस सम्बन्ध में अपना अभिमत व्यक्त करते हुये लिखा है - ''हिन्दी के इस विषय (विश्व-मैत्री) पर अनेक कवियों ने अनेक रचनायें की हैं जिनमें सबसे प्रबल स्वर पंत, सियारामशरण गुप्त, नवीन और दिनकर का रहा है। पंत और सियारामशरण में जहां देश की मुक्त आत्मा का पवित्र उल्लास है वहीं नवीन और दिनकर में उसका सात्विक ओज है।[१] नवीन ने अपनी अनेक कविताओं में विश्व प्रेम-भाव व्यंजित किया है।[२] जिस प्रकार द्विवेदी जी ने पंचशील, सह-अस्तित्व आदि से प्रभावित होकर विश्व मानवतावाद की सृष्टि अपनी रचनाओं में की है। उसी प्रकार नवीन जी की काव्य कृतियों पर भी विश्व मानवतावाद का स्पष्ट प्रभाव दिखायी पड़ता है।

यह निष्कर्ष निकलता है कि कवि द्वय युग यथार्थ के प्रति जागरुक रहे हैं। युग के प्रति ईमानदार रहकर दोनों ने काव्य सृष्टि की है। पं० माखन लाल चतुर्वेदी के शब्दों में ''युग का गायक युग के परिवर्तनों से आंखें बंद कर अपनी कला को पुरुषार्थ -मयी नहीं रख सकता।''[३]

विभिन्न राष्ट्रीय काव्य धारा के कवियों से द्विवेदी जी की तुलना करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि द्विवेदी जी का युग-स्वर किसी भी अन्य युग कवि की अपेक्षा अशक्त नहीं है। यह सच है कि वे स्वतन्त्रता संग्राम के सक्रिय कार्य कर्ता नहीं रहे, यह भी सच है कि इनके काव्य में भावुकता का उद्वेग अपेक्षाकृत अधिक है, विध्वंस का राग और आक्रोश की प्रधानता अधिक है किन्तु यह भी सच है कि इन्हीं स्वरों में युग-चेतना का सम्यक प्रतिनिधित्व जितना द्विवेदी के काव्य में हुआ है अन्य कवियों के काव्य में नहीं। युग ने अपने समस्त वैभव के साथ इनके काव्य में निखार

१- डा० नगेन्द्र के श्रेष्ठ निबन्ध - स्वतन्त्रता के पश्चात हिन्दी साहित्य, पृ०सं०८६।
२- आजकल - हे ज्योतिर्मय : पृ०- २, फरवरी, १९५६।
३- हिमकिरीटनी : आत्म निवेदन : पृ०सं० २।

पाया है । द्विवेदी- काव्य में जो सुस्पष्ट एवं सुदृढ़ विचार श्रृंखला का अभाव पाया जाता है , उसका भी यही रहस्य है । युग - चेतना का वाणी विधान करना इनका कवि -धर्म है । युग परिवर्तनशील होता है । फलत: इनके काव्यभाव भी परिवर्तित होते जाते हैं । साथ ही वे किसी पूर्व योजना के अनुसार कविता नहीं लिखते । इन काव्य की प्रेरणा भूमि 'युग-पटल' पर जैसे जैसे परिवर्तन नर्तन करता है ठीक उसी के अनुरुप इनकी सरस्वती के स्वर बदल जाते हैं । यही कारण है कि इनके काव्य में यत्र तत्र स्व-खण्डन की प्रवृत्ति भी मिल जाती है । किन्तु यह तो कवि का काव्य दर्शन है, उनके काव्य का लक्ष्य है । अस्तु युग-चेतना का इतना सशक्त और सफल कलाकार हिन्दी काव्य में विरला ही देखा जा सकता है ।

अध्याय - अष्टम

द्विवेदी जी का हिन्दी साहित्य में स्थान

लोकप्रियता के आधार

द्विवेदी जी आधुनिक हिन्दी साहित्य के लब्धप्रतिष्ठ कवि हैं। उनका काव्य स्वस्थ संतुलित जीवन दर्शन से अनुस्यूत होने के कारण हिन्दी-साहित्य की अक्षय निधि है। काव्य सृजन के आरम्भ से ही उनकी तत्वान्वेषिणी प्रज्ञा जीवन एवं जगत की सार्वकालिक, सार्वदेशिक, सार्वभौमिक एवं समसामयिक समस्याओं और प्रश्नों का निदान खोजने में निरत रही है। उनके काव्य में कहीं भी केवल शास्त्र सम्पुट दार्शनिक अवधारणाओं पर आश्रित जीवन -दर्शन की स्थापना नहीं हुई है। कवि ने युग एवं जीवन की यथार्थताओं तथा अपने अनुभवों के आधार पर विविध समस्याओं और प्रश्नों की अतल गहराई में अवगाहन किया है और उनका समुचित समाधान खोलकर युगानुकूल जीवन-दर्शन का प्रतिपादन किया है। चिन्तन-शील प्रवृत्ति के कारण उनके जीवनदर्शन में यत्किंचित, परिवर्तन एवं परिष्करण भी होता रहा है।

द्विवेदी जी का काव्य आदि से अन्त तक प्राय: मानवता वादी जीवन-दर्शन से स्पन्दित है। उनकी चेतना में मानव-हित सर्वोपरि रहा है। अपनी प्रारम्भिक कृतियों में सर्वत्र जीवन के प्रति आशावादी दृष्टिकोण अपनाया है।'वासवदत्ता' में जीवन एवं जगत के प्रति कवि का दृष्टिकोण प्राय: निराशामूलक चेतना से ग्रस्त रहा है। यहां जीवन की अनित्यता का बोध उनकी चेतना को विषादयुक्त एवं स्वस्थ नहीं होने देता जीवन के प्रति कवि के इस अस्वस्थ दृष्टिकोण का उनके मूल जीवन-दर्शन में कोई स्थान नहीं दिया जा सकता। वह तो जीवन की विषमताओं एवं प्रतिकूल परिस्थितियों से आहत की विफल प्रतिक्रियामात्र है। यदि वह असंतुलित जीवन-

दृष्टि कवि जीवन की विसंगतियों का प्रतिफलन न होती तो शीघ्र ही वे जीवन मृत्यु के द्वन्द्वों से मुक्त होकर जीवन की ओर प्रवृत्त होते दृष्टिगत न होते। 'वासवदत्ता' के अनन्तर उनके इस निराशा मूलक अस्वस्थ जीवन-दर्शन में परिष्कार होने लगता है। 'वासन्ती' में आकर उनकी अनित्यता वादी धारणा का पूर्णत: निराकरण हो जाता है। वे जीवन के प्रति प्राय: स्वस्थ आशावादी दृष्टिकोण अपना लेते हैं। यह दृष्टिकोण उनके मानवतावादी जीवन-दर्शन को ही परिपुष्ट करता है।

द्विवेदी जी ने 'वासवदत्ता' को छोड़कर शेष सभी खण्ड काव्यों में निवृत्ति का प्रबल खण्डन तथा प्रवृत्ति का सशक्त शब्दों में मण्डन किया है। मानवता वादी जीवन-दर्शन एवं खादी-दर्शन के प्रतिपादक कवि द्विवेदी इस तथ्य से पूर्णत: भिज्ञ हैं कि निवृत्ति मानव-उन्नयन के मार्ग का व्यवधान है। वे मानव-चेतना को निवृत्ति मूलक दृष्टिकोण से मुक्त करने को कृत संकल्प हैं। निवृत्ति को धर्म के प्रतिकूल, जीवन के पतन का मूल कारण, मनुष्य की कर्तव्यविमुखता जीवन में उसकी पराजय की पराकाष्ठा घोषित कर कवि ने प्रकारान्तर से उदात्त व्यावहारिक प्रवृत्ति मूलक जीवन-दर्शन की स्थापना की है। यह उनके मानवतावादी जीवन-दर्शन का एक प्रमुख पक्ष है। इसके मूल में कवि का मानव-मात्र की कल्याण कामना का उद्देश्य निहित है। प्रवृत्ति की ओर उन्मुख कर कवि ने मनुष्य को स्वस्थ एवं कर्मण्य जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा दी है। प्रवृत्ति का पक्ष ग्रहण करते हुये वे कहीं भी भोग की अतिवादिता का समर्थन करते प्रतीत नहीं होते। उन्होंने निवृत्ति और प्रवृत्ति दोनों को जीवन के लिये अमंगलकारी मानते हुए जीवन में दोनों के सामंजस्य पर बल दिया है। संक्षेपत: द्विवेदी जी का निवृत्ति एवं प्रवृत्ति समन्वित जीवन-दर्शन मानव-मात्र की कल्याण कामना से अभिषिक्त है। वह स्वस्थ एवं सन्तुलित है। इसी अर्थ में उसका

कवि के मानवता वादी जीवन - दर्शन के परिपार्श्व मे ही प्रतिफलित हुआ है ।

द्विवेदी जी का साहित्य जन मानस के आनंदित एवं मार्ग - दर्शक के रूप मे अद्वितीय रहा है। उनका बाल - साहित्य बच्चों को एक नई दिशा मे ले जाता है । अन्य कवियों का साहित्य क्लिष्ट होने के कारण सर्व - साधारण की समझ से परे होने के कारण अधिक लोकप्रिय नही हो सका । लोकप्रिय - साहित्याकाश मे आपका स्थान सर्वोपरि है । ' श्री सूर्य नारायण व्यास ' ने इनके साहित्य की लोकप्रियता का इस प्रकार उल्लेख किया है । भैरवी का कवि सफल है । उसकी कविता में सहस्त्रो कण्ठो से गूंजती है सन् १६३० की बात है, मैं एक प्रभात फेरी में खादी के धागे धागे मे अपनेपन का अभिमान भरा आदि गीत उष-काल के मधुर क्षणों मे अपने संगी - साथियों के साथ गाता था ।

मैं स्वयं उसके साथ आनन्द विभोर हो उठता था । उज्जैन की कितनी ही ' भैरियों ' से यह गीत लोकप्रिय हो रहा था और जहां - जहां मै गया मुझे उसको सहस्त्रो कंठो से सुनने का अवसर मिला ।

ऐसे मधुर लोकप्रिय , राष्ट्रीय गीतो की इस भैरवी को पाकर पढ़कर मैं धन्य हुआ हूं ।'' [१]

मालवीय जी महाराज के शब्दो मे -

'' मैं चाहता हूं ऐसी कविता का देश के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक प्रचार हो । [२]''

आचार्य राम चन्द्र शुक्ल के शब्दो में -

''वर्तमान कविता के क्षेत्र मे पंडित सोहन लाल द्विवेदी का विशेष स्थान है, और वह उल्लेखनीय है। इनकी कविता सीधे हृदय से निकलती हुई हमारे मर्म को स्पर्श करती है, और चिरस्थायी प्रभाव उत्पन्न करती है । श्री द्विवेदी जी

१- भैरवी सम्मतियां पृष्ठ सं० १४

२- भैरवी सम्मतियां पृ० सं० १३

को जीवन के मर्मस्पर्शी पक्ष की पूरी परख है उनकी सफलता का सबसे बड़ा कारण यही है। वे अपनी कविता - द्वारा जनता को रसमग्न करते रहे, यही मेरी मंगल कामना है।'' [3]

८-ब- साहित्य के विकास मे योगदान के आधार पर साहित्य का विकास अपनी संस्कृति को जीवित करने तथा राष्ट्रीयता को समृद्ध करने मे है। साहित्य के स्थाई मूल्य करुणा, शान्ति प्रेम है। इन्ही मूल्यों को मानव - जीवन मे प्रतिष्ठित करना ही साहित्य की मूल चिन्ता है। साहित्य के विकास से यह भी आशय ग्रहण किया जाना चाहिये कि मनुष्यता के विकास मे साहित्य ने कितना योगदान दिया। जीवन के उदात्त मूल्यों का सम्बर्द्धन ही जीवन का विकास है। साहित्य से अपेक्षा की जाती है कि वह व्यक्ति और समाज के मूल्यों को उदात्त मूल्यों से अलंकृत करे।

द्विवेदी जी के साहित्य ने गांधी-वादी चेतना के माध्यम से जीवन के इन्हीं महान उदात्त मूल्यों को सम्वर्द्धित किया है। उनका साहित्य अहिंसा, करुणा दया पर बल देता है। वस्तुतः गांधी एक व्यक्ति मात्र नही समूची संस्कृति के प्रतिनिधि थे इसीलिये द्विवेदीजी के काव्य में साहित्य को विकसित करने की पूर्ण क्षमता पाई जाती है।

द्विवेदी जी आस्था के कवि हैं। वे कहीं अव्यक्त सत्ता के प्रति जिज्ञासा-जन्य विस्मय एवं अशेष निष्ठा व्यक्त करते हैं। तथा कहीं उसके अन्धान मे निरत दिखाई देते हैं। उनकी दृष्टि मे मानव - सुख सर्वोपरि है। मानव- सृष्टि मे समस्त सुख - सन्तोष उपलब्ध न होने के लिये वे ईश्वर को उत्तरदायी समझते हैं। अतएव कहीं-कहीं ईश्वर के प्रति उनकी अनास्था के स्वर रोष, आक्रोश एवं उपालम्भ मे परिणत हो जाते हैं। निश्चय ही ऐसे स्थलों पर कवि का उदात्त मानवता वादी जीवन-दर्शन ही मुखरित हुआ है।

३-वही पृष्ठ - १३

द्विवेदी जी का क्रान्ति मूलक जीवन - दर्शन भी उनके मानवतावादी जीवन- दर्शन से संपृक्त है । उन्होंने निरुद्देश्य विध्वंस के कुत्सित लक्ष्य को दृष्टि पथ में रखकर क्रान्ति का समर्थन कहीं नहीं किया है । वे मानव मात्र को राजनीतिक अत्याचार, आर्थिक एवं सामाजिक वैषम्य के क्रूर पंजों से मुक्त करने के लिये क्रान्ति मूलक जीवन - दर्शन का प्रतिपादन करते हैं । निस्संदेह कवि ने स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व परतंत्र्य की श्रृंखलाओं को विच्छिन्न करने के लिए तथा स्वातंत्र्य - प्राप्ति के अनन्तर समाज में न्याय और समत्व की प्रतिष्ठा के मानवतावादी उद्देश्य से अनुप्रेरित होकर ही क्रान्ति का जयघोष किया है ।

द्विवेदी जी का जीवन- दर्शन गांधी- वाद एवं मार्क्सवाद दोनों की भावना से सुवासित है। उसमें गांधी जी के क्षमा, करुणा, विश्व- प्रेम, विश्व - बन्धुत्व, विश्व- शान्ति आदि महान जीवनादर्शों एवं उदात्त व्यावहारिक मानव- मूल्यों का अद्भुत समाहार है। गांधी जी के प्रबल पक्षधर होते हुये भी वे मानव -हित के सन्दर्भ में अहिंसा का अन्ध समर्थन नहीं करते । किन्तु हिंसा का समर्थन भी उन्होंने आपद्धर्म के रुप में किया है। मार्क्सवाद के समान वे भी सामाजिक वैषम्य को दूर करने के लिये हिंसात्मक क्रान्ति को स्वीकृति प्रदान करते हैं । मार्क्स के नितान्त भौतिकवादी साम्य को पूर्ण न मानकर ऐसे साम्यवाद को श्रेयस्कर समझते हैं जिसमें भौतिकता एवं आध्यात्मिकता दोनों का समन्वय किया गया हो। निश्चय ही उनके काव्य में प्रतिपादित साम्यवाद मार्क्सवाद की अपेक्षा गांधी-वाद के अधिक समीप है। कवि ने मार्क्सवादी साम्यवाद के उदार व्यापक दृष्टिकोण को ही स्वीकार किया है, अनुदार संकीर्ण रुप को नहीं । वस्तुत: वे गांधी जी के मानवीय जीवन - मूल्यों एवं भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में ही मार्क्स- समर्थित समत्वविधायक वर्गहीन समाज की स्थापना करना चाहते हैं । मार्क्सवाद तथा गांधी-वाद के प्रसंग में

यही उनका जीवन - दर्शन है , जो उदात्त मानवतावादी भावनाओं से ओत - प्रोत है ।

द्विवेदी जी के काव्य में भारत को स्वतन्त्रताप्राप्ति कराने के रूप में उभरा है । कवि ने मानवीय जीवन मूल्यों के सन्दर्भ में युद्ध का समुचित निदान खोजने का प्रयास किया है । युद्ध को कहीं भी उन्होंने साध्य नहीं माना है , उसे आपद्धर्म के रूप में ही स्वीकार किया है । आपद्धर्म के रूप में वे युद्ध को पाप-पुण्य, औचित्य-अनौचित्य की सीमाओं से परे मानते हैं किन्तु युद्ध में धर्म और न्याय के पथ से विचलित होकर विजय प्राप्ति को वरेण्य नहीं समझते हैं । सच तो यह है कि कवि ने युद्ध दर्शन के परिप्रेक्ष्य में युद्ध भावना का परिशमन कर विश्व में मानवता वादी जीवनदर्शन की स्थापना पर बल दिया है । अपने इसी जीवनदर्शन के फलस्वरूप वे विश्व शान्ति, विश्व-प्रेम, करुणा, अहिंसा तथा सामाजिक न्याय समानता में ही युद्ध का निदान खोजने का प्रयास करते हैं । द्विवेदी जी की व्यष्टि और समष्टि विषयक धारणा भी उनके व्यावहारिक मानवतावादी जीवन-दर्शन से अनुप्राणित है । काव्य में कुछ ही स्थलों पर उनकी व्यष्टिगत भावनाओं को अभिव्यक्ति मिली है, अन्यथा सर्वत्र समष्टिगत जीवन-दर्शन की पृष्ठभूमि में उन्होंने व्यक्ति को समाज तथा मानव मात्र के कल्याण की दिशा में प्रवृत्त होने की प्रबल प्रेरणा दी है । इन्होंने साहित्य के विकास में अपना पूरा योगदान किया इनके साहित्य से साहित्य की अभूतपूर्व प्रगति हुई जो स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने योग्य है । साहित्य के विकास में योगदान के आधार पर इनका हिन्दी साहित्य में अपना महत्वपूर्ण स्थान है ।

८-४- साहित्य के इतिहास के कालक्रम के आधार पर :

द्विवेदी जी का साहित्य के इतिहास के कालक्रम के आधारपरस्थान निश्चित करते समय हिन्दी के कवि एवं समालोचक ''डा० चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित' ने कहा है कि -

''मूल्यांकन करता कैसे इतिहास तुम्हारा,
तुम विराट ,
इतिहास काल की कुंठित कारा ।
काल खण्ड में कवि कैसे बन्दी हो पाते ।
प्राणों में जब,
प्रवहमान करुणा की धारा ।
करुणा का विस्तार राष्ट्र-कवि की वाणी में ,
विश्व चेतना में वो व्याप्त,
क्षितिज को बांधे ,
वह कालन्जय ज्वार राष्ट्र कवि की वाणी में ।''[१]

इतिहास की आवश्यकता के अनुसार द्विवेदी जी के काव्य में उनकी राष्ट्रीय भावना एवं राजनीतिक दृष्टिकोण का निर्धारण उनके मानवतावादी जीवनदर्शन के परिपार्श्व में ही होता है । प्रजातंत्र में कवि की अटूट निष्ठा एवं उसके सिद्धान्तों में दृढ़ आस्था उनके इसी जीवन-दर्शन का द्योतक है । यह दृष्टिकोण भी शाश्वत मानवता हित की कामना से सम्पुष्ट है । मानव कल्याण की दृष्टि से वे सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त साम्राज्यवाद की जड़ों का उच्छेदन करने के लिये भीषण विद्रोह करने की प्रेरणा देते हैं । स्वराज्य प्राप्ति के निमित्त हिंसात्मक क्रान्ति की स्वीकृति में भी मानव की कल्याण कामना ही निहित है । मानव हित के महद् उद्देश्य से प्रेरित क्रान्ति को कवि मानव की संहारकारिणी नहीं, वरन मंगलविधायनी मानता है । वस्तुत: द्विवेदी जी के काव्य में मानव तथा मानवता के कल्याण के

१- डा० चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित' की ६-६-८१ के डायरी के पृष्ठ से ।

सन्दर्भ में ही क्रान्ति एवं हिंसा को स्वीकृति मिली है। इस दिशा का प्रत्येक पक्ष उनके उदात्त, व्यावहारिक मानवता वादी जीवन- दर्शन से अनुप्रेरित है। निश्चय ही आपद्धर्म के रूप में कवि ने जिस हिंसा अथवा प्रतिशोध को स्वीकार किया है वह विश्व शान्ति और विश्व बन्धुत्व जैसे मानवता वादी जीवन -दर्शन की स्थापना में साधक है। सीमित राष्ट्रीयता के स्थान पर अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना भी कवि के मानवतावादी जीवन - दर्शन की ही परिचायक है।

द्विवेदी जी के सामाजिक एवं आर्थिक जीवन के प्रति दृष्टिकोण के मूल में भी उनका व्यावहारिक मानवतावादी जीवनदर्शन ही सक्रिय है। समत्व-विधायक समाज की स्थापना के महद् लक्ष्य की प्राप्ति के लिये वे पूंजी वादी अर्थ-व्यवस्था से उत्पन्न वर्ग वैषम्य पर कठोर प्रहार करते हैं। उसे प्रश्रय देने वाली समाज -व्यवस्था के विरुद्ध वे विद्रोह और क्रान्ति का आह्वान करते हैं। कवि की मानवता वादी जीवन-दर्शन से अभिषिक्त सामाजिक एवं आर्थिक चेतना का परिणाम है कि वे जातिगत भेद-भाव, वर्णभेद , छुआछूत एवं साम्प्रदायिकता का पूर्ण परिहार कर समाज में एकता और समत्व की स्थापना पर बल देते हैं। निस्संदेह कवि के सामाजिक एवं आर्थिक जीवन के मूल में ऐसे समाज की कामना निहित है जिसमें समता न्याय प्रेम आदि मानवीय जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा है।

द्विवेदी जी का धार्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण भी उदात्त जीवन मूल्यों पर आधारित है। उन्होंने धार्मिक संकीर्णता, अन्धविश्वास एवं बाह्याडम्बरों का पूर्ण रूपेण विरोध किया है। धर्म में युगानुकूल परिवर्तन के वे प्रबल समर्थक हैं। धर्म को जीवन की पद्धति मानते हुये वे समाज के आचार-विचार की शुद्धता पर बल देते हैं। स्पष्टतः द्विवेदी जी का धर्म विषयक दृष्टिकोण अत्यन्त व्यापक, उदार मानवतावादी जीवन- दर्शन पर अवलम्बित है। उन्हें करुणा, त्याग, विश्व-मैत्री, विश्व-बन्धुत्व एवं विश्व-शान्ति में वास्तविक धर्म के दर्शन होते हैं। उनका सांस्कृतिक दृष्टिकोण भी भारतीय संस्कृति के उच्च नैतिक आदर्शों, परम्पराओं और मानवतावादी

जीवनदर्शन का संवाहक है। कविने साहित्य के इतिहास को आगे बढ़ाने में जो योगदान दिया है वह हिन्दी साहित्य के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगा।

समसामयिक के आधार पर :

द्विवेदी जी का युग स्वाधीन-चेतना के आन्दोलन का युग था। पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ देश अपनी स्वतन्त्र चेतना को खोकर अस्तित्व विहीन हो रहा था ऐसे युग में साहित्यकार का प्रथम कर्तव्य होता है कि वह राष्ट्रीयता को सर्वोच्च महत्व दे। अपने युग-धर्म को पहचाने द्विवेदी जी न तो छायावादी कवियों की भांति कलात्मक अलंकरण में खो जाते हैं और न ही स्वच्छतावादी कवियों की भांति स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों का पोषण करते हैं वे हालावादी कवियों की भांति सूफयानी प्रेम में भी बंध कर नहीं चलते वे राजनीति के स्तर पर जो आन्दोलन देश में छिड़ा हुआ है उसी को साहित्य में स्वर देते हैं। सम सामयिक मूल्यों की दृष्टि से द्विवेदी जी का महत्व और भी बढ़ जाता है क्योंकि वे सीधे राष्ट्रीय स्वाधीनता के कवि के रूप में अपने समय को रेखांकित करते हैं, दिशा देते हैं और राष्ट्रीय जागरण के महापर्व में 'भैरवी' का राग अलापते हैं तथा द्विवेदी जी की साहित्य कला एवं विज्ञान -विषयक मान्यतायें भी उनके मानवतावादी जीवन दर्शन को अभिव्यक्त करती हैं। साहित्य और कला के क्षेत्र में वे मानवतावादी जीवन-मूल्यों की प्रतिष्ठा पर सर्वत्र बल देते हैं। वे कला की महत्शक्ति और उसकी व्यापकता के उन्मुक्त गायक हैं। निश्चित रूप से उनकी ये मान्यतायें मानवीय मूल्यों से सुशोभित हैं। विज्ञान -विषयक विवेचन के अन्तर्गत भी कवि का उदात्त व्यावहारिक मानवतावादी जीवन-दर्शन ही उद्घाटित होता है। इसीलिये वे विज्ञान के लोक संहारक रूप का प्रतिवाद तथा उसके लोक मंगलकारी रूप का समर्थन करते हैं।

नारी के प्रति कवि का दृष्टिकोण मानवीय भावनाओं एवं भारतीय चेतना के संस्पर्श में स्पन्दित है। उन्होंने सर्वत्र भारत के सामाजिक परिवेश, लोकादर्शों

एवं जीवन-मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में ही नारी का चित्रांकन किया है। नारी के प्रति अपने उदार मानवीय दृष्टिकोण के फलस्वरूप ही वे पुरुषों द्वारा की जाने वाली नारी की उपेक्षा के विरुद्ध तीव्र आक्रोश व्यक्त करते हैं। अविवाहित मातृत्व से अभिशप्त नारी के प्रति भी उनका दृष्टिकोण अत्यन्त उदार, करुणामय एवं सहानुभूति पूर्ण रहा है। यह सच है कि उन्होंने कहीं भी नारी के प्रति संकीर्ण दृष्टिकोण का परिचय नहीं दिया है। उसे सर्वत्र श्रद्धा एवं सम्मान की दृष्टि से देखा है, उसकी महिमा का मुक्त कंठ से गान किया है। उसे आनन्द , उल्लास एवं कल्याण की अजस्त्र स्त्रोतस्विनी माना है। वस्तुत: द्विवेदी जी राष्ट्रीय काव्यधारा के कवि हैं, उनकी चेतना में राष्ट्र प्रधान रहा है। कवि की श्रृंगार चेतना भी इसका अपवाद नहीं है। उन्होंने अपने काव्य में राष्ट्रीय समस्याओं का विवेचन किया है। तथा एक नई दिशा प्रदान की है।

आधुनिक युग में मनुष्य काम और अकाम के अन्तर्द्वन्द से बुरी तरह ग्रस्त है। मानव की शाश्वत समस्या के रूप में कवि ने उस द्वन्द को काव्य और मानव-जीवन के विस्तृत फलक पर पूरी शक्ति से उभारा है। मानव-चेतना को इस द्वन्द से मुक्त करने के लिये वे काम की आध्यात्मिकता अथवा कामाध्यात्म की धारणा को प्रतिपादित करते हैं। उनके विचार से काम के ऐन्द्रिय धरातल से अतीन्द्रिय धरातल का स्पर्श ही काम आध्यात्मिकता अथवा कामाध्यात्म है। इसी में मानव जीवन और समाज का उत्कर्ष निहित है।

समसामयिक के आधार पर द्विवेदी जी का मूल्यांकन करते हुये आचार्य प्रवर पं० दीनदयाल दीक्षित ने स्पष्ट रूप से कहा है कि -

''संजीवनी जीवस्द राष्ट्रं ,
'भैरवी'. काल - भैरवम् ।
शिवस्य भूषणं कविता,
कविराष्ट्रस्य गौरवम् ।।[१]

१- आचार्य प्रवर पं० दीनदयाल दीक्षित दिनांक ११-११-८६ स्थान-चन्द दास साहित्य शोध संस्थान रात्रि १० बजे।

यह कहा जा सकता है कि जीवन के व्यापक उदात्त एवं उदार मूल्यों के प्रति अगाध आस्था के फलस्वरूप द्विवेदी जी का काव्य आद्योपान्त भारतीयता के संस्पर्श से आलोकित तथा मानवतावादी जीवन-दर्शन से अनुस्यूत रहा है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वे मानवतावादी उदात्त जीवनादर्शों के प्रतिष्ठापक हैं।

यदि एक वाक्य में कहना चाहें तो कह सकते हैं कि द्विवेदी जी के काव्य का मूल जीवन-दर्शन है मानवतावाद और राष्ट्रीय एकता। उसी की अजस्रधारा में अवगाहन कर सम्पूर्ण काव्य शाश्वत हो उठा है। अस्तु समसामयिक कवियों में ये श्रेष्ठ स्थान प्राप्त करने के अधिकारी हैं।

द्विवेदी जी का साहित्य राजकीय शिक्षण संस्थानों एवं व्यक्तिगत शिक्षण संस्थानों के पाठ्य क्रमों में प्रारम्भिक कक्षाओं से लेकर विश्वविद्यालयीय स्तर तक पढ़ाया जाता है जिसके फलस्वरूप इनका स्थान सर्वोपरि हो जाता है।

राष्ट्रीय धारा के प्रमुख कवि द्विवेदी जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालने वाली कतिपय महत्वपूर्ण सम्मतियां इस प्रकार हैं :-

पं० जवाहर लाल नेहरु के शब्दों में -

'' श्री सोहन लाल द्विवेदी की लिखी हुई रचनायें मैंने सुनीं। वे मुझे बहुत पसन्द आईं। इनसे जनता में अच्छे भाव पैदा होंगे।''[१]

श्री श्यामसुन्दर दास के शब्दों में -

''श्री सोहन लाल द्विवेदी को मुझे निकट से जानने का अवसर मिला है, और मैं उनके सम्बन्ध में कुछ निश्चित रूप से कह सकता हूं उन्होंने अपनी रचनाओं से हिन्दी- साहित्य की श्री अभिवृद्धि की है, इसमें सन्देह नहीं।''[२]

डा० बड़थ्वाल, एम०ए०, एल-एल०बी०, डी०लिट० के शब्दों में

''राष्ट्रीय चेतना को आपने काव्य को सच्चा रूप दिया है।''[३]

---

१ -- ३ तक भैरवी - सम्मतियां पृष्ठ सं० २३।

घनश्याम दास बिड़ला के शब्दों में -

प्रिय द्विवेदी जी,

भैरवी मुझे दिल्ली में मिली ।

भाई महादेव देसाई और वियोगी हरि जी दोनों उस समय पास थे ।
वियोगी जी ने कुछ कवितायें पढ़कर सुनाईं । मुझे तो अच्छी लगीं ही किन्तु वियोगी
जी स्वयं कवि हैं , उन्होंने आपकी कविताओं की अच्छी प्रशंसा की ।

महादेव भाई को भी कई कवितायें बहुत पसंद आईं और वह पुस्तक
भी महादेव भाई ले गये । यह सब जानकर आपको प्रसन्नता होगी, इसलिये लिख
रहा हूं ।

डायरी के कुछ पन्ने भिजवा रहा हूं ।''[१]

हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में -

''भैरवी में जो वर्णन की प्रसन्न शैली है, श्रद्धा और भक्ति का सहज
सरल (अन साफिस्टिकेटेड) वेग, जो झरने के समान प्रसन्न है, तूफान के समान
उद्दाम नहीं, वह मुझे बड़ा आकर्षक जान पड़ता है । खादी-गीत, बापू और
मालवीय जी आदि के सम्बन्ध में जो रचनायें हैं, उनमें कविता का वास्तविक रूप
प्रकट हुआ है । वहां कविता खिले हुये फूल के समान सुन्दर है ।''[२]

जैनेन्द्र कुमार के शब्दों में -

''भैरवी की कवितायें भारतीय राष्ट्रीयता की गति के ताल पर रची
गई हैं । उनमें सामयिकता है । व्यथा जगाने से ऊपर वे प्रभाव भी देना जानती हैं ।
आत्म संस्कार से अधिक प्रवृत्ति जागरण उनका लक्ष्य है । वह कुछ कराना चाहती है ।
उनमें आदेश का स्वर है ।
एक प्रबल आत्म विश्वास के साथ वह आदेश का स्वर उन कविताओं में फूंका गया है ।

१- भैरवी,सम्मतियां , पृ०सं० १४ ।

२- भैरवी,सम्मतियां , पृ०सं० १५ ।

यह बड़ी बात और कुछ खतरे की बात है।

खतरा सब नहीं उठाते।

आप हिन्दी पाठक की कृतज्ञ प्रशंसा और आलोचना की शुभचिन्ता के पात्र हैं।''[1]

'सियाराम शरण के शब्दों में :

''भैरवी ''हाथ में लेते ही मुझे ''साकेत'' की ये पंक्तियां याद आ गईं -

''कौन भैरव राग है यह,

श्रुति पुटों से प्राण पीते हैं जिसे ?''

और मुझे सन्तोष है कि मेरा अनुमान सत्य निकला। मेरा विश्वास है आपका यह सन्देश दूर-दूर तक फैलेगा और इस जागरण काल में उससे पवित्रता का, उत्साह का, नवजीवन का प्रसार होगा।''[2]

काका कालेलकर के शब्दों में -

''राष्ट्रकवि सोहन लाल द्विवेदी हमारे जमाने के कवि हैं। वह जमाना आज न रहा लेकिन, उस जमाने की भक्ति लुप्त नहीं हुई। इसलिये आज भी उनकी कविता पढ़ते वही आनन्द मिलता है, जो उस जमाने का था। मैं तो चाहूंगा, सोहन लाल जी की कविता में से चयन करके एक संग्रह प्रकाशित किया जाये और आज उसे युवक-युवतियों के हाथ में दिया जाये, उसके द्वारा उन्हें गान्धी-युग की भावनाओं का परिचय होगा।''[3]

हरिभाऊ उपाध्याय के शब्दों में -

''द्विवेदी जी का कवि युग के लिये वफादार है। जो कवि अपने आपके प्रति सच रहता है वह सबके प्रति सच्चा रहता है। सोहन लाल जी को मैं युग-कवि

१- भैरवी, सम्मतियां, पृ०सं० १५।
२- भैरवी, सम्मतियां पृ०सं० १५।
३- गान्धायन प्रस्तावना, पृ०सं० ३।

मानता हूँ।

महादेवी, नवीन, प्रेमी की पीड़ा और व्यथा व्यक्ति में से जन्म पाकर सामाजिक बनती है, अतएव उसमें एक व्यक्तिगत व रागात्मक अपील रहती है। सोहन लाल जी की व्यथा का उद्गम राष्ट्र से होता है उसकी अभिव्यक्ति भावात्मक तथा विधायक होती है।

यदि प्रसन्नता, सजीवता, प्रभावोत्पादकता कविता का प्रधान हो, तो सोहन लाल जी इसमें लाजवाब हैं।''[१]

''वासवदत्ता की कविताओं के बाह्य रूप पर ही यहां विचार किया है। उसके वह वर्ण्य विषय के सम्बन्ध में केवल इतना ही कहूंगा कि भारतीय संस्कृति की महत्ता प्रतिपादित करने के विचार से भारतीय इतिहास और प्राचीन महाकाव्यों से कुछ व्यक्ति लेकर कवि ने उनके चरित्र का दिग्दर्शन कराया है। अपने इस कार्य में उसे पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।''[२]

'कर्मवीर'

इसमें सन्देह नहीं, कवि ने अमूल्य कथानकों में अपनी भाषा और स्थल-स्थल में कल्पना का मोहक रंग भरा है, जहां वासवदत्ता, उर्वशी और कुणाल में कवि ने नारी को पुरुष के प्रति आधीन होते हुए बतलाया वहां सरदार चूड़ावत में पुरुष को स्त्री के प्रति विवश होते हुए दिखलाया है। साथ ही स्त्री का चरम आदर्श भी प्रस्तुत किया गया है। 'वासवदत्ता' की रचनाओं में चित्रात्मकता, ओजस्विता, गतिशीलता और प्रौढ़ता है। हमारा विश्वास है, काव्य जगत में उसका समुचित सम्मान होगा।''[३]

'विशाल भारत'

१- पूजागीत - परिचय, पृ०सं० २।
२- ३ तक, भैरवी सम्मतियां, पृ०सं० १८।

प रि शि ष्ट

बापू का आशीर्वाद

सेवाग्राम

भाई सोहनलालजी,

आपकी कृति के गुण-दोष बारे में मैं क्या कहूं? काव्यों की परीक्षा करने की मेरे में कोई योग्यता नहीं पाता। मेरी स्तुति में जो काव्य लिखे गए हैं, उस बारे में मैं क्या कह सकता हूं? हां, इतना मैं कह सकता हूं सही, आपने परिश्रम काफी उठाया है। कोई भी शुभ परिश्रम व्यर्थ नहीं जाता है।

बापू के आशीर्वाद

१९—१०—४४

पूज्य महात्मा गांधी हमारे देश की अनुपम विभूति हैं। उनको पाकर हम अपनी दरिद्रता में भी भाग्यवान हैं। उनकी आयु के ७५ वर्ष होने वाले हैं। देश के – हिन्दू और मुसलमान के, ब्राह्मण और हरिजन के, बड़े छोटे सब अंशों के – वह वास्तविक स्नेहपुंज बापू हैं। साधारण रीति से ७५ वर्ष की आयु में मनुष्य क्षीणशक्ति समझा जाता है। किन्तु अपने बापू की कल्पना हम सशक्त महारथी के रूप में करते हैं। उनकी हमें बहुत आवश्यकता है। उनकी इस आयु से हमें संतोष नहीं। उनके १०० वर्ष पूरे होने की लालसा हमारे हृदय में भरी है।

'गांधी अभिनन्दन ग्रन्थ' हमारी इस लालसा का प्रतीक होगा। मेरा हृदय इसी भावना से मोहनलाल द्विवेदी जी की कवि-कल्पना का स्वागत करता है। मोहनलाल जी राष्ट्रभाषा हिन्दी के ऊंचे आले कवि हैं। राष्ट्रनायक का अभिनन्दन राष्ट्रकवि द्वारा – सर्वोचित होना है। मोहनलाल जी की यह संकलित कृति हिन्दी साहित्य की मूल्यवान सम्पत्ति होगी।

पुरुषोत्तमदास टंडन

२८।५।२००१

45/47 APOLLO STREET,
FORT, BOMBAY.

१५-१-४३.

प्रिय द्विवेदीजी,

आपका पत्र मिला और कवितायें भी। धन्यवाद। आपके सम्बंध में कुछ अधिक जानने की इच्छा होती है।

तुलसीदासजी ने रामायण लिख कर न केवल अपनी स्मृति छोड़ी। किन्तु दिमागी और बेदिमागी दोनों तरह की जनता के लिये उन्होंने सुस्वादु भोजन भी छोड़ा। और इस भोजन को खाकर लोगों में जीवन आया और सत्य आया। श्री राम के गुणों की उन्होंने जनता के हृदय पटल पर छाप लगा दी।

तुलसीदासजी के बाद कवि सम्राट रविंद्रनाथ हुये सही, पर उनकी कृति केवल कला-प्रिय लोगों का भोजन है। तो भी उन्होंने देश की काफी सेवा की। पर जो चीज तुलसीदासजी ने दी उसकी तुलना में उनकी देन कुछ मंद मालूम होती है।

मैं कभी-कभी सोचता हूं कि क्या आज के हिंदी कवि अपनी व्यापकता नहीं बढ़ा सकते। गुलाब में यदि सूंघने की शक्ति होती तो वह अपनी सुगंध को स्वयं सूंघ सूंघ कर भी मस्त रह सकता था। पर उससे जनता का क्या सरता। इसलिये लोगों को सुगंध देकर पुष्प उन्माद पैदा करते हैं। यही उनकी स्तुति है। कवि का भी तो यही महात्म्य होना चाहिये।

इस समय देश की भूख जबर्दस्त है। और उसे ऐसे भोजन की जरूरत है जिससे जनता में कर्मण्यता आवे, एकता हो, सेवा में वृत्ति हो, सुस्ती दूर हो, अपनी चीजों की तरफ उनकी निगाह पड़े, अपनी चीजों के लिये कदरदानी हो। वे उठें और जीवें।

48/52 APOLLO STREET,
FORT, BOMBAY

महापुरुषों के जीवन का गुण गान करके आप काफी सेवा कर रहे हैं, पर क्या इस सेवा को चुकाया नहीं जा सकता।

सहज अपने संकल्प-विकल्प आपको सुना रहा हूं।

शेष जब कभी मिलेंगे तब बात करेंगे। पर कोई बड़ी छलांग लगाइये।

आपका,
घनश्यामदास

श्री मोहनलाल जी त्रिवेदी,
बि.का।

~~8, Royal Exchange Place~~
वर्धा — १० जुलाई ४१.

प्रिय द्विवेदीजी,

आपका पत्र मिला।

"मैत्री" मुझे दिल्ली में मिली थी। महादेवभाई देसाई और वियोगी हरिजी दोनों उस समय पास में थे। वियोगीजी ने कुछ कविताएं पढ़कर सुनाईं। मुझे तो अच्छी लगी ही, किन्तु वियोगीजी स्वयं कवि हैं उन्होंने आपकी कविताओं की अच्छी प्रशंसा की। महादेवभाई को भी कई कविताएं बहुत पसन्द आईं और वह पुस्तक भी महादेवभाई ले गए। यह सब जानकर आपको प्रसन्नता होगी इसलिए लिख रहा हूं।

मैं इस समय वर्धा आया हुआ हूं, दो तीन दिन यहां ठहर कर बम्बई की तरफ चला जाऊंगा। आप कभी कलकत्ते आवें तो अवश्य मिलें।

"डायरी के कुछ पन्ने" भिजवा रहा हूं।

आपका
घनश्यामदास बिड़ला

श्री सोहनलालजी द्विवेदी,
बिन्दकी (यू.पी.)

Phone : 274592
KAKASAHEB KALELKAR
'SANNIDHI', RAJGHAT
NEW DELHI-1

फोन : २७४५९२
काकासाहेब कालेलकर
'सन्निधि', राजघाट
नयी दिल्ली-१

। ॐ ।

राष्ट्रकवि श्री सोहनलाल द्विवेदी हमारे ज़माने के कवि हैं। मैं एक दफे 'गान्धायन' में उनका स्वागत कर चुका हूँ। मैं अपने इस राष्ट्रकवि का, जनता की ओर से अभिनंदन करता हूँ और उत्तरोत्तर उत्कर्ष के लिये प्रार्थना करता हूँ। राष्ट्रीय स्तर पर उनका सन्मान होना ही चाहिये।

काका कालेलकर
21-3-1976